नैषधे-चन्द्रोदय

(नवाँ भाग)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी

प्रकाशक—

चन्द्रराज भण्डारी

ज्ञानमन्दिर—भानपुरा

मूल्य प्रतिभाग—
अजिल्द ४)
सजिल्द ५)

प्रकाशक—
चन्द्रराज भण्डारी
ज्ञान-मन्दिर भानपुरा

भूल सुधार

पृष्ठ २२०५ से २२१२ तक नम्बर दो २ बार छप गये हैं। और इससे सारी पुस्तक की पृष्ठ संख्या में ८ नं० गड़बड़ी पड़ गई है अतः पाठक इस भूल को सुधार लें विषय सूची में भी उन आठ पृष्ठों के पेज नं० २ दो २ बार दिये गये हैं।

—लेखक

मुद्रक—
श्रीनाथदास अग्रवाल
टाइम टेबुल प्रेस,
बनारस।

स्मृति
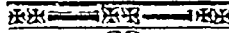
स्वर्गीय सेठ कमलापतजी सिंहानिया की पवित्र स्मृति में:—

PATRONS.

RULERS

1—His Highness Maharajadhiraj Sir George Jiwaji Rao Scindia Alijah Bahadur G. C. I. E. Gwalior.

2—Late Colonel His Highness Maharao Sir Ummed Singh Bahadur G. C. S. I., G. C. I. E., G. B. E., L-L. D., Kotah.

3—Lieutenant His Highness Maharaja Krishna Kumar Singh Bahadur Bhawnagar.

4—Lieutenant colonel His Highness Maharaja Jam Sahab Sir Digvijay Singh Bahadur K. C. S. I., Nawanagar.

5—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Lokendra Sir Govind Singh Bahadur G. C. S. I., K. C. S. I., Datia.

6—Lieutenant His Highness Maharaj Rana Rajendra Singh Bahadur Jhalawar.

7—Captain His Highness Maharaja Mahendra Sir Yadvendra Singh Bahadur K. C. S. I., K. C. I. E., Panna.

8—Rai Bahadur Devi Singh Diwan Rajgarh State, Rajgarh.

BANKERS.

9—Sir Lala Padampatiji Singhania, Cawnpore.

10—Seth Magni Ramji Ram Kumarji Bangar, Didwana.

11—Rai Bahadur Rajya Bhushan Danbir Seth Hiralalji Kashliwal Indore

12—Seth Sohanlalji Shubhakaranji Ratanlalji Dugar Fatehpur.

13—Seth Chunilal Bhaichand Mehta, Bombay.
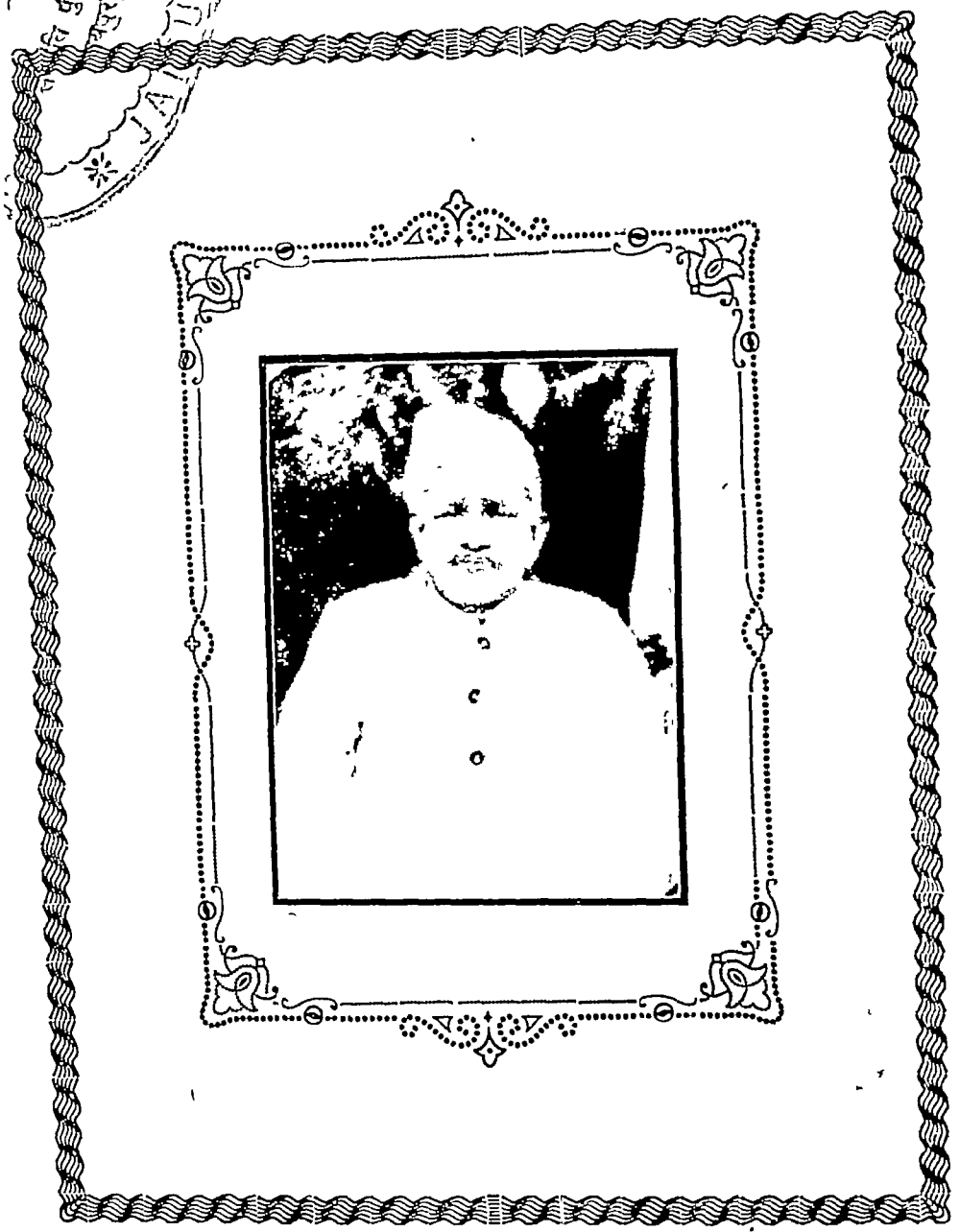
स्वर्गीय सेठ सागरमलजी लूंकड़ जलगांव।

स्व. सेठ सागरमलजी लूँकड़, जलगाँव

(संक्षिप्त परिचय)

भारतवर्ष के ओसवाल समाज में जिन लोगों ने अपने प्रबल व्यक्तित्व के बल से व्यापारिक, सामाजिक और धार्मिक सफलताएँ प्राप्त की हैं, जिन लोगों ने अपनी प्रतिभा, अपने अध्यवसाय और अपनी सज्जनता द्वारा लाखों रुपये की सम्पत्ति उपार्जित की तथा उस सम्पत्ति का जाति सेवा, धर्म सेवा, शिक्षा प्रचार इत्यादि उत्तम और आवश्यक कार्य्यों में सदुपयोग किया है, जो लोग जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ से सफलता पूर्वक पार होकर समाज में यशस्वी हुए हैं, उन्हीं में जलगाँव के सेठ सागरमलजी लूंकड़ भी एक हैं

सेठ सागरमलजी ने जिस समय अपनी फर्म के कारोबार को सम्हाला उस समय यद्यपि आपकी आर्थिक अवस्था बहुत उच्चकोटि की न थी तथापि वे सब गुण जो मनुष्य को साधारण स्थिति से उच्च स्थिति में ले जाते हैं आपमें दिखलाई देते थे। अपनी प्रतिभा और व्यवसाय-कौशल के बल पर आप क्रमशः अपनी व्यापारिक स्थिति को बढ़ाते गये। आपकी कर्मशीलता को देखकर आपकी भाग्यलक्ष्मी भी आप पर प्रसन्न होने लगी। क्रमशः आपने अपनी व्यावसायिक स्थिति को बहुत उन्नत बना लिया।

व्यापारिक सफलता के साथही आपमें धर्म-सेवा और जातिसेवा की लगन भी क्रमशः बढ़ती गई। जिसके परिणाम-स्वरूप आप जलगाँव के "श्रीकानजी शिवजी ओसवाल जैन बोर्डिङ्ग" के जनरल सेक्रेटरी भी नियुक्त हुए। इस संस्था के जन्मदाताओं में से आप भी एक थे तथा संस्था के जन्म से लेकर अपने जीवन पर्य्यंत आप संस्थाके जनरल सेक्रेटरी रहे, आपके तत्वावधान में ही इस संस्था ने पूर्ण गौरव और स्थायित्व प्राप्त किया है।

जलगाँव की पांजरापोल नामक संस्था के भी आप पिछले कई वर्षों से जनरल सेक्रेटरी थे तथा पांजरापोल का सब व्यवस्था कार्य्य आपही की देख-रेख में कई वर्षों से चल रहा था। आपकी व्यवस्था में पांजरापोल ने भी काफी उन्नति की।

जलगाँव के अन्दर औषधि-दान के निमित्त २८०००) का दान निकालकर आपने श्री सागर धर्मार्थ औषधालय की स्थापना की। इस औषधालय के द्वारा जलगाँव की जनता को प्रचुर मात्रा में बिना मूल्य औषधियाँ प्राप्त होती हैं। आज भी यह औषधालय आपकी कीर्त्ति को अमर करता हुआ, आपके सुयोग्य पुत्रों के तत्वावधान में चल रहा है।

जलगाँव में जातीय और सामाजिक दृष्टि से तो आपका प्रमुख स्थान था ही, मगर धार्मिक क्षेत्र में भी आपका उतना ही प्राधान्य था। आपके धार्मिक विचार बहुत उदार और पक्षपात रहित थे। जलगाँव में मारवाड़ी जनता की इतनी बड़ी बस्ती होते हुए भी कोई ऐसा मकान समाज के पास नहीं था, जा संघकी एकता का प्रतीक हो तथा जहाँ सार्वजनिक एवं धार्मिक कार्य्य सम्मिलित रूप में किये जा सकें। इस कमी को पूर्ण करने के लिए आपने १५०००) की लागत से 'सागर भवन' के नाम से एक भवन बना कर भी संघ को अर्पित कर दिया।

स्त्री-शिक्षा की ओर भी आपका बहुत काफी लक्ष्य था और इसी लक्ष्य को चरितार्थ करने के निमित्त आपने इन्दौर के समान विशाल क्षेत्र में अपनी ओर से एक कन्या पाठशाला का उद्घाटन करके इस क्षेत्र में एक अनुकरणीय कदम बढ़ाया। इसी प्रकार बाल-शिक्षण में भी आप पूर्ण दिलचस्पी रखते थे एवं समय-समय पर जैन संस्थाओं को विविध भेंट प्रदान किया करते थे। अपने अन्तिम समय में आपने ५०००) विविध जैन और अजैन संस्थाओं को दान किये।

जनता के शारीरिक स्वास्थ्य की तरफ भी आपका काफी लक्ष्य था। इसके फल-स्वरूप आपने एक व्यायामशाला की भी स्थापना की, जिसमें कई नवयुवक अपने शरीर-गठन को उन्नत करते हैं।

इस प्रकार कीर्त्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए, और अपनी कर्मशीलता और दानशीलता से समाज में एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित करके सेठ सागरमलजी ता० १९—१—४३ को स्वर्गवासी हुए।

आपके इस समय चार पुत्र हैं जो अपने पिताश्री के बतलाये पथ निर्देश पर चलते हुए अपनी फर्म को तथा सार्वजनिक संस्थाओं को सफलता के साथ संचालित कर रहे हैं।

विषय-सूची नं० १

(हिन्दी नाम)

विषय-सूची नं० २

(संस्कृत नाम)

विषय–सूची नं० ३

बंगाली

विषय–सूची नं० ४

मराठी

विषय-सूची नं० ५

गुजराती

INDEX No. 6

(*Latin Names*)

विषय-सूची नं० १

(रोगानुक्रम से)

विशेष प्रभावशाली औषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं।

ज्वर

अतिसार

अन्य उदर रोग

चर्म रोग और रक्त रोग

पुरुष जननेन्द्रिय संबंधी रोग

स्त्री रोग

वक्ष रोग

खाँसी

दमा

ववासीर

हैजा

मस्तिष्क सम्बन्धी रोग

वातव्याधियाँ

क्षय या राजयक्ष्मा

नेत्र रोग

कर्ण रोग

दन्त रोग

विष विकार

बनौषधि चन्द्रोदय

(नवाँ भाग)

बनौषधि चन्द्रोदय

(नवाँ भाग)

राई

नामः—

संस्कृत—राजिका, राजी, आसुरी, तीक्ष्णगंधा । हिन्दी—राई । ~~गुजराती—राई~~ । मराठी—मोहरी । बंगाल—राइसरिशा । काश्मीर—असुर । तामील—काडुबू । फारसी—सरशफ । इंग्लिश—Indian Mustard । लेटिन—Brassica Juncea, B. Integrifolia (ब्रेसिका जुंसिया और ब्रेसिका इंटेग्रीफोलिया) ।

वर्णन—राई हिन्दुस्तान में सब दूर मसाले के अन्दर डालने के काम में ली जाती है । इसको सभी कोई जानते हैं । इसका पौधा २ से लेकर ४ फीटतक ऊँचा होता है । इसके फूल पीले रंग के होते हैं । इसके पत्तों की शाग बनाकर खाई जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से राई उष्ण, अत्यंत तीक्ष्ण, चरपरी, कड़वी, कुछ रुक्ष, अग्नि-वर्द्धक तथा कंडू, कुष्ठ, उदररोग और कृमिरोग को दूर करती है । राई के पत्तों का शाग चरपरा, गरम, बलकारक, स्वादिष्ट, पित्तकारक, कृमिनाशक, वात-कफनाशक और कण्ठ रोगको दूर करनेवाला होता है ।

इसके बीज गरम, पसीना लानेवाले और पाचनशक्ति को सहायता देनेवाले होते हैं । ये शरीरके अंदर होनेवाले रक्त संचय की वजह से होनेवाले आक्षेप, स्नायु सम्बन्धी विकृति और संधिवात में बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं । मस्तिष्क की सुषुम्ना नाड़ी की अस्वस्थता में भी इनका उपयोग होता है ।

राई के अंदर एक प्रकार का तेल भी निकलता है । यह चमड़े की जलन और व्रणों के ऊपर लगाने के काम में आता है ।

शरीर के ऊपर राई की क्रिया तिलपर्णी की क्रिया के समान होती है । यह छोटी मात्रा में दीपन, पाचन, उत्तेजक और पसीना लानेवाली होती है । बड़ी मात्रा में यह वामक होती है । इसको बड़ी मात्रा में लेने से तुरन्त वमन होती है मगर यह वमन घातक नहीं होती ।

वाह्योपचार में राई का लेप चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक बहुत मशहूर वस्तु है। जिस स्थानपर यह लेप किया जाता है वहाँकी त्वचा लाल हो जाती है और त्वचा के अन्दर की रक्तवाहिनियाँ उत्तेजित हो जाती हैं जिससे उस भाग में शून्यता पैदा हो जाती है। इस लेप को अधिक समय तक रखने से उस स्थान पर छाला हो जाता है। जिस स्थान पर यह लेप लगाया जाता है उस स्थान के साथ शरीर के जिन-जिन हिस्सों का सम्बन्ध होता है उन हिस्सों की रक्ताभिसरण क्रिया को मज्जातंतुओं के द्वारा उत्तेजना मिलती है। जिससे उनकी विनिमय क्रिया सुधरती है। राई को गरम पानी में डालकर उस पानी से स्नान करने से त्वचा की रक्तवाहिनियों का विकास होता है। जिससे रक्त का दबाव कम पड़ता है। रक्त का दबाव कम होने से सूजन की कमी होती है। इसीसे राई का लेप शोथनाशक माना जाता है।

जिन रोगों के साथ सूजन रहती है तथा जिसमें शरीर के अन्दर अन्तर्दाह रहती है ऐसे रोगों में राई का लेप किया जाता है। फुफ्फुस की सूजन, फुफ्फुस कोष की सूजन, यकृतकोष की सूजन, श्वासनलिका की सूजन, वीजकोषों की सूजन, मस्तिष्क-कोषों की सूजन इत्यादि रोगों में राई का लेप बहुत लाभ पहुँचाता है। ज्वर के अन्दर भ्रम को दूर करने के लिये ललाट के ऊपर राई का लेप किया जाता है। हृदय के कमजोर होने पर हाथ पाँव और हृदय के ऊपर राई का लेप किया जाता है।

हैजे में जब रोगी को बहुत उल्टी, दस्त होते हों और उसके शरीर में बांयठे चलते हों, अङ्गों में शिथिलता पैदा हो रही हो ऐसी स्थिति में राई का लेप करने से बहुत लाभ होता है। हैजे के अतिरिक्त भी जो दस्त, उल्टी होते है वे अगर किसी दूसरी औषधि से न रुकते हों तो राई का लेप करने से रुक जाते हैं।

राई के लेप की विधि--राई को ठण्डे पानी के साथ सिल पर महीन पीसकर उसका साफ मलमल के कपड़े के ऊपर पतला-पतला लेप कर देना चाहिये। फिर उस कपड़े को जिधर राई लगी हुई हो उसकी दूसरी तरफ से जिस जगह लेप लगाना हो उस जगह रख देना चाहिये। राई के लेप को चमड़े की तरफ रखने से उसका प्रभाव यद्यपि जल्दी होता है पर उससे चमड़े पर फुन्सियाँ पड़ने का डर रहता है। इसलिये जब तक विशेष जरूरत न पड़े तबतक इसका लेप कपड़े के ऊपर के बाजू ही रखना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार राई का पुल्टिस भारतवर्ष की चिकित्सा पद्धति के अन्दर बहुत उपयोग में लिया जाता है। राई को ठण्डे पानी में पीसकर तैयार किया हुआ लेप अनेक प्रकार की सूजन सम्बन्धी, स्नायु सम्बन्धी तथा कालिक उदरशूल और दुस्साध्य वमन को रोकने के लिये एक आश्चर्यजनक वस्तु है। इस प्लास्टर को किसी भी हालत में १० मिनट से अधिक चमड़े के साथ सम्बन्धित नहीं रखना चाहिये। विष विकार सम्बन्धी केसों में राई के चूर्ण को १ से २ चम्मच तक की मात्रा में पानी के साथ देने से जोरदार वमन होकर जहर का प्रभाव कम हो जाता है।

उपयोग—

वहिरापन—राई के तेल को कान में डालने से कान का बहिरापन और फोड़े-फुन्सी मिटते हैं।

गठिया—गठिया की सूजन पर राई का लेप बहुत उपकारी होता है।

रुधिर का जमाव—अरंडी के पत्तों पर राई का तेल चुपड़ कर उनको गरम करके बाँधने से शरीर में जमा हुआ रुधिर बिखर जाता है।

मिरगी—राई को पीसकर सुंघाने से मिरगी की मूर्छा दूर हो जाती है।

जुक़ाम—राई को शहद में मिलाकर रखने से जुकाम मिटता है।

बगल का फोड़ा—राई और काँच को पानी में खूब बारीक पीसकर उसकी लुग्दी बगल के फोड़े पर बाँधने से वह फोड़ा जल्दी फूट जाता है।

राई काली

नामः—

संस्कृत—कृष्णराजिका, कृष्णिका, कृमिका, ज्वलंती, क्षुधाभिजनन, क्षुजनिका इत्यादि। हिन्दी—काली राई, मकराई, बनारसी राई, तरमिरा, तीरा। बंगाल—राइसरिश। गुजराती—काली राई। कोकण—सनसोनव। फ़ारसी—सरशाफ़। अरबी—खरदल। तामील—कदुगु। तेलगू—अवालू। उर्दू—राई। इंग्लिश—Black Mustard। लेटिन—Brassica Nigra (ब्रेसिका नायग्रा)।

वर्णन—यह राई की ही एक काली जाति होती है। इसका पौधा पत्ते, फूल वगैरह सब राई के पौधे के ही समान होते हैं। सिर्फ इसके बीज काले रंग के होते हैं जब कि दूसरी राई के बीज लाल रंग के होते हैं। यह काली राई लाल राई की अपेक्षा गुण धर्म में बहुत उग्र होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से काली राई के पत्ते गरम, तीक्ष्ण, और सुस्वादु होते हैं। शरीर को शक्ति देते हैं। पित्त को बढ़ाते हैं। कृमियों को नष्ट करते हैं और गले की शिकायतों में लाभ पहुँचाते हैं। इसके बीज गरम, तीक्ष्ण और कड़वे होते हैं। ये वात को नष्ट करते हैं। बढ़ी हुई तिल्ली को दुरुस्त करते हैं। ज्वर को दूर करते हैं। शरीर में दाह उत्पन्न करते हैं। कफ से पैदा हुए अर्बुद में लाभ पहुँचाते हैं। कृमियों को नष्ट करते हैं। भूख बढ़ाते हैं। चर्म रोग और खुजली में लाभ पहुँचाते हैं और परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करते हैं।

यूनानीमत—यूनानी मत से राई के बीज सफेद, काले और लाल तीन तरह के होते हैं। ये स्वाद में चरपरे, मृदु विरेचक, भूख बढ़ानेवाले, अग्निवर्द्धक, शुद्ध डकार लगानेवाली और खाँसी को दूर करनेवाले होते हैं। यह शरीर की सूजन को दूर करते हैं तथा तिल्ली की सूजन, विस्फोटक की सूजन और संधियों की सूजन में लाभ पहुँचाते हैं। नाक, कान, आँख व दांतों के रोग में यह उपयोगी होते हैं। बाहर रहनेवाले परोपजीवी कीटाणुओं को ये नष्ट करते हैं और इनका धुआँ मक्खी और मच्छरों को नष्ट करता है।

इसके बीजों का पुल्टिस एक बहुत उपयोगी और तेज चर्मदाहक और फफोला उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। ज्वर, दूखनवाले रोग, आक्षेप, स्नायुशूल, संधियों की सूजन, गठिया और भीतरी रक्त संचय में इसका पुल्टिस एक बहुत उत्तम और हाजिर जवाब वस्तु है। राई के आटे को पानी में मिला कर देने से यह एक बहुत सुरक्षित वमनकारक वस्तु का काम करता है। इसके बीज अगर बहुत थोड़ी मात्रा में लिये जावें तो वे एक पाचक चटनी का काम करते हैं, अगर ये सारे ही निगले जायँ तो मृदु विरेचक द्रव्य का काम करते हैं। अजीर्ण रोग और आंतों की जड़ता सम्बन्धी दूसरी शिकायतों में भी इनको देने से लाभ होता है।

इन बीजों का विशुद्ध और ताजा तेल उत्तेजक और हलका चर्मदाहक होता है। यह गले के हलके व्रणों पर लगाने से बहुत लाभ पहुँचाता है। अन्तरंग रक्त संचय और प्राचीन मांसपेशियों की अकड़न में यह एक बहुत लाभदायक वस्तु है।

महर्षि चरक के मतानुसार राई के बीजों को दूसरी औषधियों के साथ सर्पविष को दूर करने के उपचार में लेते हैं मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वस्तु सर्प विष के उपचार में निरुपयोगी है।

राई के बीजों में सिनापिन नामक एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें एल्व्यूमिन्स, मायरोसिन, सिनिग्रीन, गोंद और कुछ रंगनेवाले द्रव्य भी पाये जाते हैं।

उपयोग—

पित्तशोथ—पित्त की सूजन पर राई का पुल्टिस बांधने से बहुत जल्दी लाभ होता है। परन्तु-चमड़ी लाल हो जाने के पश्चात् इस पुल्टिस को उतार लेना चाहिये नहीं तो वहांपर कष्टप्रद छाले हो जाते हैं।

गठिया—राई का प्लास्टर करने से गठिया की वेदना फौरन मिट जाती है। इसके तेल में कपूर मिला कर उसकी मालिश करने से गठिया में बहुत लाभ होता है।

वमन—राई के आटे को पानी में घोल कर पिलाने से बहुत शीघ्र और निरुपद्रव वमन होती है और राई के प्लास्टर को पेट पर और कलेजे पर लगाने से भयंकर और हठीले वमन भी बन्द हो जाते हैं।

मंदाग्नि—राई की फक्की देने से कब्जियत की वजह से पैदा हुई मन्दाग्नि मिट जाती है।

आलस्य—इसके ताजे और शुद्ध तेल का मालिश करने से शरीर का आलस्य मिटता है।

गले की सूजन—गले की हलकी सूजन पर इसके तेल की मालिश करने से लाभ होता है।

रुधिर का जमाव—शरीर के भीतर अगर कहीं रुधिर का जमाव हो जाय तो वहां इसके तेल का मालिश करके सेंक कर देने से वह जमाव बिखर जाता है।

पट्ठों की सूजन—राई के तेल की मालिश करने से पट्ठों की पुरानी सूजन उतर जाती है।

जुकाम—राई के तेल का पैरों और पैरों के तलवों पर तथा नाक के ऊपर मालिश करने से मस्तक

की सरदी और जुकाम एक रात में मिट जाते हैं। नाक पर इस तेल की मालिश करने से नाक का बहना तुरन्त बन्द हो जाता है।

बच्चों की खांसी—बच्चों की छातीपर राई के तेल की मालिश करने से उनकी खांसी मिट जाती है।

बिच्छू का विष—कपास के पत्ते और राई को पीस कर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

मृतगर्भ—राई और हींग के चूर्ण की फक्की देने से मरा हुआ बालक गर्भ में से बाहर निकल जाता है।

वातशूल—राई और सहंजने की छाल को गाय के मट्ठे के साथ पीस कर लेप करने से वातशूल मिटती है।

सर्प का विष—सांप के काटे हुये को बड़ी मात्रा में राई खिलाने से वमन हो कर विष हलका पड़ जाता है।

आधा शीशी—राई और कबूतर की बीट को पीस कर लेप करने से आधा शीशी मिटती है।

दाद—राई को सिरके के साथ पीस कर लेप करने से दाद मिटता है।

कांखबलाई—राई को गरम जल के साथ पीस कर लेप करने से बगल के भीतर होनेवाली विद्रधि मिट जाती है।

बदगाँठ—राई का लेप करने से बदगाँठ बिखर जाती है।

सिर की गंज—आधी कच्ची और आधी सेकी हुई राई को पीस कर कड़वे तेल में मिला कर लगाने से सिर की गंज मिटती है।

राजगिरा

नामः—

संस्कृत—राजाद्रि, राजगिरी, राजशाकिनी। हिन्दी–राजगिरा। गुजराती—राजगरो। मराठी—राजगिरा। बंगाल–राजशाक, चुको, बथु। बम्बई—करोल भाजी। काश्मीर—बस्तनाफुरोज। फ़ारसी—बुस्तनाफुरोज। लेटिन—Amaranthus Paniculatus (एमेरेन्थस पेनिक्यूलेटस)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा खुबसूरत और करीब ५ फीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते मांसल, अण्डाकार और बरछी के आकार के होते हैं। इनकी लंबाई २ से लगाकर ६ इंच तक और चौड़ाई १ से ३ इंच तक होती है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं इसकी फली लम्बी और गोलाकार रहती है। इसके बीज छोटे-छोटे गोल-गोल राई से कुछ बड़े होते हैं। यह वस्तु हिन्दुओं के उपवास के दिनों में फलाहार के काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार इसके पत्ते और बीज कफकारक, भारी, सारक, निद्रा लानेवाले, शीतल कब्जियत करनेवाले, रुचिकारक, भारी और पित्तनाशक होते हैं।

यह वनस्पति रक्त को शुद्ध करनेवाली होती है। बवासीर में इसके सेवन से लाभ होता है। पथरी में इसको मूत्रल वस्तु की तरह देते हैं। गंडमाला के फोड़ों में इसके बीजों की रोटी और पत्तों की शाक करके देते हैं। पेशाब की जलन में भी इसके पत्तों का स्वरस देने से लाभ होता है।

राजबला

नाम:—

संस्कृत—राजबला। मराठी—चक्रभेंड। गुजराती—खपाट। लेटिन—Abutilon Tomentosum (एब्यूटिलन टोमेंटोसम)।

वर्णन—यह अतिबला की ही एक उपजाति होती है। इसका सारा पौधा रेशम के समान मुलायम रुओं से भरा रहता है। इसके फूल नारङ्गी रङ्ग के रहते हैं। इसका सारा पौधा अतिबला के पौधे के समान ही होता है मगर उससे कुछ बड़ा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के सब गुण धर्म अतिबला के गुणधर्म के समान ही होते हैं। इसके बीज स्नेहन, मूत्रल, पौष्टिक और कुछ कामोद्दीपक होते हैं।

रानचिमनी

नाम:—

मराठी—रानचिमनी। दक्षिण—रानचिमनी। गुजराती—कालुंकिरायतूं। लेटिन—Andrographis Echioides (एण्ड्रोग्राफिस इचिआइडस)।

वर्णन—यह कालमेघ के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा ६ से लेकर १८ इंच तक ऊँचा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के खुश्क प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

रीड मतानुसार यह वनस्पति बुखार के अन्दर उपयोगी समझी जाती है।

रानीफूल

नामः—

संथाल—रानीफूल । लेटिन—polygonum Plebejum (पोलीगोनम प्लेबीजम्) ।

वर्णन—यह एक फैली हुई शाखाओं वाली वनस्पति होती है । इसके पत्ते ४ से लेकर १७ मिलिमीटर तक लम्बे होते हैं । इसके फूल गुलाबी रङ्ग के होते हैं । इसका फल कड़े छिलके वाला, चिकना और चमकदार होता है । यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर भूतान तक ७ हजार फीट की ऊँचाई तक होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

कार्टर के मतानुसार लखीमपुर में इसके पौधे को सुखाकर उसका चूर्ण करके निमोनिया के रोगियों को औषधि के बतौर खिलाने के काम में लेते हैं ।

केम्पबेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ों को आंतों की शिकायतों के अन्दर उपयोग में लेते हैं।

रामफल

नामः—

संस्कृत—रामफलम्, अग्रिमा, कृष्णबीजम्, लवनी, मृदुफल, रक्तत्वच, वसन्त । हिन्दी—रामफल लवनी, नौना । बंबई—रामफल । बंगाल—लवनी, नौना । मराठी—रामफल । गुजराती—रामफल । संथाल—गोम । तामील–रामचिता । तेलगू—रामफलम् । इंग्लिश—Bullocks Heart । लेटिन–Annona Retlculata (एनोना रेटिक्यूलेटा) ।

वर्णन—यह सीताफलके वर्गकी एक वनस्पति होती है । इसका छोटा वृक्ष होता है । इसके पत्ते ४ से लेकर ७ इंच तक लम्बे और १ से २ इंच तक चौड़े होते हैं । इसके फल पीले रङ्ग के और पकने पर कुछ लाल हो जाते हैं । इसके बीज चिकने और काले होते हैं । इस वनस्पति की खेती भारतवर्ष में कई स्थानोंपर की जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत–आयुर्वेदिक मत से इसका फल संकोचक, मधुर और रक्तविकार को दूर करनेवाला होता है । यह पित्त और प्यास को दूर करता है और वात तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है ।

इसकी छाल एक प्रभावशाली संकोचक पदार्थ होती है । मलाया के लोग इसका पौष्टिक द्रव्य की तरह उपयोग करते हैं मध्य और दक्षिण अमेरिका के लोग इसके फल को कृमिनाशक औषधि की तरह उपयोग में लेते हैं ।

इसके फल को खिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं और आमातिसार अच्छा हो जाता है। इसके कच्चे और सूखे फल में से काला रङ्ग निकलता है और इसके ताजे पत्तों में से एक प्रकार की नील निकलती है।

रामलो

नामः—

कुमाऊँ—रामलो। नेपाल—मालटा। तामील—वुटुट्टमारा। मलयालम—उथाट्टमारा। लेटिन—Macaranga Indica (मेकेरेङ्गा इण्डिका)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके वृक्ष पूर्वी हिमालय, खासिया पहाड़ और दक्षिण पेनिनशुला में पैदा होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका गोंद फोड़े फुन्सियों के ऊपर लगाने के काम में आता है।

रामदतोन

नामः—

युक्तप्रान्त—रामदतोन। लेटिन—Smilax Prolifera (स्माइलेक्स प्रोलिफेरा)।

वर्णन—यह एक पराश्रयी लता होती है जो पश्चिमी हिमालय, कुमाऊँ, नेपाल, सिलहट, बंगाल, विहार, बरमा और दक्षिणी पेनिनशुला में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

छोटा नागपुर की मुंडाजाति के लोग इस वनस्पति की जड़ को पीसकर उसको पुरानी खाँड या जमे हुए गाय के दूध में मिलाकर पानी के साथ खूनी पेचिश और पेशाब की ऐसी शिकायतें जिनमें पेशाब काला और लाल होने लगता है को दूर करने के लिये पिलाते हैं। इसके साथ ही वे रात में महुए के सूखे फूलों को पानी में गलाकर रखते हैं। सवेरे उठते ही वे इस पानी को पीते हैं और उसके बाद इस औषधि का सेवन करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके सेवन से खूनी पेचिश और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों में बहुत लाभ होता है।

रामेठा

नाम:—

संस्कृत–दग्धा, दग्धारुहा। हिन्दी–रामेठा। मराठी–रामेठा। गुजराती–रामेठा। लेटिन–Lasiosiphon Eriocephalus (लेसियोसिफ़ोन इरियोसीफेलस)।

वर्णन—इस वनस्पति के वृक्ष दक्षिणी हिन्दुस्तान में महाबलेश्वर, माथेरान, लानोली तथा बड़े सेकी टेकरियों में और गुफाओं में पैदा होते हैं। इसका वृक्ष २ फुट से ६ फुट तक ऊँचा होता है। इसके हलके लाल रंग की अथवा बैंगनी रंग की सीधी सीधी बहुत सी डालियाँ निकलती हैं। इसके पत्ते अखंडित किनारोंवाले, दो से तीन इञ्च तक लंबे और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल शाखाओं के सिरों पर आते हैं। हर एक फूल में ४ से लेकर ५ तक पंखड़ियाँ होती हैं। इसके फूल की नली बहुत संकीर्ण होती है और उसके ऊपर सफेद अथवा पीले रुओं की पींछी लगी हुई रहती है। इसके फल बहुत छोटे होते हैं और ये फूल की नली के नीचे के हिस्से में लगते हैं। हर एक फल में एक २ बीज होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से रामेठा तीक्ष्ण, तूरा, गर्म, कफ और वात को नष्ट करनेवाला, पित्त को कुपित करनेवाला और जठराग्नि को दीपन करनेवाला होता है।

इस वनस्पति के सम्बन्ध में वैद्य समाज के अन्दर कई प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। विशेषकर गुजरात के वैद्यों में इस वनस्पति को लेकर बहुत ऊहापोह हुआ है। मगर अभी तक इस वनस्पति के निश्चित गुणों के सम्बन्ध में कोई भी विश्वसनीय बात मालूम नहीं हो सकी है और आज भी यह वनस्पति वैद्य समाज के सम्मुख उतनी ही रहस्यपूर्ण बनी हुई है। अतः इस वनस्पति के सम्बन्ध में जो भी विवेचन यहाँ किया जाता है उसको असंदिग्ध नहीं मानना चाहिये।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक इस वनस्पति का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि—

"इस वनस्पति के पत्ते और इसकी छाल भयंकर जलन पैदा करनेवाली और जहरीली होती है। अगर यह भूल से चबाने में आ जाय तो मुँह में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है। इतना ही नहीं लेकिन अगर यह कुछ अधिक मात्रा में चबाने में आजाय तो मुँह में से लार बहने लगती है। दाँत के मसूड़े सूज जाते हैं। दाँत ढीले हो जाते हैं अथवा पड़ भी जाते हैं। इसकी लकड़ी अथवा इसकी राख भी इसी प्रकार दाँतों को नष्ट करती है और इसीलिये अगर कोई डाढ़ पोली हो जाय और उसमें बार बार वेदना होती हो तो उस डाढ़ के अन्दर इस वनस्पति का चूर्ण भरने से वह डाढ़ जड़मूल से उखड़ जाती है और रोगी को शांति मिल जाती है। फिर भी इस कार्य के लिये इसका उपयोग करना बहुत खतरनाक है क्योंकि अगर डाढ़ में भरते समय दूसरे दाँतों पर भी यह वनस्पति लग गई तो वे दांत भी कमजोर हो जाते हैं।"

निमोनिया रोग और रामेठा—आगे चलकर उपरोक्त ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि:—

"इस संसार में निमोनिया के रोग को दूर करने के लिये इस वनस्पति के समान श्रेष्ठ दूसरी कोई औषधि देखने में नहीं आई। निमोनिया के रोग में इसकी ६ रत्ती छाल का रस अथवा उसका काढ़ा चावल के मांड़ में मिलाकर दांतों पर न लगे इस तरीके से पिलाना चाहिये। इससे पहिले उलटी के द्वारा और फिर दस्त के द्वारा छाती में जमा हुआ सब कफ निकल जाता है। यह एक अत्यंत उत्कृष्ट औषधि है। इसलिये इसका बार-बार उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। इसको सिर्फ एक ही बार देने से और यदि रोग बहुत भयंकर हो तो अधिक से अधिक दो बार देने पर सारा कफ निकल जाता है। भयंकर से भयंकर केसों में भी इसको दो वार से अधिक देने की जरूरत नहीं पड़ती।"

"बहुत से केसों में तो इसको एक ही बार देने से निमोनिया रोग विदा हो जाता है। परन्तु जो रोग भयानक हो और एक बार से सारा कफ बाहर न निकले तो तीन दिन के बाद इसकी दूसरी खुराक देनी चाहिये। जिससे कफ का रहा-सहा अंश भी निकल जाता है और निमोनिया से पूर्ण छुटकारा हो जाता है।"

"यह औषधि बहुत तीव्र होती है। इसलिये छोटे बालकों और कोमल प्रकृति के मनुष्यों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। अगर किया भी जाय तो कुशल वैद्य के द्वारा बहुत छोटी मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये।"

"इसकी सूखी छाल की अपेक्षा हरी छाल विशेष गुणदायक होती है। छ-सात रत्ती ताजी छाल को कूट कर उसका रस निकाल कर चावल के मांड में मिलाकर देना उत्तम होता है। मगर यदि ताजी छाल न मिले तो इसकी सूखी छाल को छ-सात रत्ती की मात्रा में लेकर उसका काढ़ा बनाकर उस काढ़े को चावल के मांड में मिलाकर निमोनिया के रोगी को पिलाना चाहिये। जिससे पहिले रोगी को वमन होगी। उस वमन से बहुत सा कफ निकलेगा उसके पश्चात रोगी को दस्त होगा और उस दस्त में भी बहुत सा कफ निकलेगा। इस औषधि से शरीर में पित्त का प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। इसलिये वमन विरेचन के पश्चात् रोगी को शांति मिलने के लिये मोती की भस्म, शीतोपलादि चूर्ण, अभ्रक भस्म, इत्यादि पौष्टिक, हृदयोत्तेजक, बलवर्द्धक और पित्त-शामक औषधियों का रोगी को कुछ दिनों तक सेवन कराना चाहिये।'

'इसकी ताजी छाल का रस अगर आँखों में लग जाय तो अन्धा होने का भय रहता है और यदि चमड़ी पर लग जाय तो दाह और सूजन हो जाती है। इसलिये इस वनस्पति का व्यवहार बहुत सावधानी से करना चाहिये। इतने पर भी यदि इसका कहीं अपव्यवहार हो जाय तो इसके दर्प को नष्ट करने के लिये मक्खन और घी का प्रयोग करना चाहिये।'

'भूमंडल पर अस्तित्व में आये हुए किसी भी चिकित्सा शास्त्र में अभी तक ऐसी औषधि कि खोज नहीं हुई है जिसकी सिर्फ एक या दो मात्रा लेने से ही भयानक निमोनिया का रोग नष्ट हो जाय। परन्तु परमात्मा की कृपा से अभी ही यह औषधि हाथ लगी है और इसका प्रयोग करने पर यह अक्सीर मालूम हुई है।'

ऊपर हमने रामेठा नामक वनस्पति के सम्बन्ध में जंगलनी जड़ी बूटी नामक ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। इसी प्रकार सन् १९१५ के वैद्य कल्पतरु में भी इस वनस्पति के सम्बन्ध में कुछ चर्चा हुई थी। बम्बई की वैद्य सभा के समक्ष जामनगर के प्रोफेसर हीरजी माधवजीने भी इस वनस्पति का विवेचन करते हुए बतलाया था कि इस वनस्पति की शाखाएँ झीपटे के समान होती है। अपामार्ग की डाली में जैसी गठानें होती हैं वैसी गठानें इसकी शाखाओं में भी होती हैं। यह वनस्पति दक्षिण प्रान्त में बहुत अधिक होती है। इस वनस्पति का दतोन करने से दांत की सारी बत्तीसी ढीली होकर गिर जाती है। अगर किसी को कोई दाँत गिराना हो तो उस दांत के पास उतने ही भाग में इस वनस्पति की डाली को सावधानी के साथ घिसने से वह दांत बिना किसी प्रकार की तकलीफ के बाहर निकल आता है। इसी प्रकार अगर इस वनस्पति को जलाकर इसकी राख भी दांत पर लगाई जाय तो भी उससे दांत निकल आते हैं।

इसके पश्चात् सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इंद्रजी ने भी वैद्य कल्पतरु में इस वनस्पति के संबंध में कुछ चर्चा की थी। उन्होंने लिखा था कि:—

'वनस्पति शास्त्र के अनुसार रामेठा थाईमिलेसी (Thymelaceae) नामक वर्ग की वनस्पति है। इस वनस्पति का लेटिन नाम लेसियोसायफल इरियोसिफेलस है। इस वर्ग में करीब ३६० भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। इनमें से करीब २० जातियाँ भारतवर्ष में भी पैदा होती हैं।।'

'सिद्ध मंत्र निघंटु में इस वनस्पति का संस्कृत नाम दग्धा, दग्धरुहा, दग्धिका, रोमशा, कर्कशदला, इत्यादि लिखे हैं।'

'यह वनस्पति दाँतों को गिराती है या नहीं इस विषय का प्रत्यक्ष अनुभव हमको नहीं है। पर कांगरा-गझेटियर में लिखा है कि इसकी लकड़ी और इसकी राख दांतों का नाश कर देती है। इसी भय से यहाँ के देशी लोग इसका उपयोग करने में बहुत डरते हैं।'

सर जे० पेक्स्टन कहते हैं कि इस वर्ग की वनस्पतियों की छाल इतनी दाहक (Cawstic) होती है कि अगर इसको दांतों के नीचे चाबा जाये तो बहुत वेदना उत्पन्न होती है।

डॉक्टर बेंटली का कथन है कि इस वर्ग की वनस्पतियाँ उसकी छाल की मजबूती और दाहक गुण के लिये प्रसिद्ध है। वनस्पतियों का यह वर्ग जहरीला होता है। इस वर्ग की वनस्पति डेफनी मझेरियम ब्रिटिश फरमाकोपिया में सम्मत मानी गई है। मझेरीयून की छाल छाला उठाने के लिये और दांतों के रोग में लार बहाने के लिये चबाने के काम में ली जाती है। इसके अतिरिक्त एक उत्तेजक द्रव्य की तरह पसीना लाने और मूत्र बढ़ाने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके ये सब गुण इसमें पाई जानेवाली एक दाहक राल और एक दाहक उड़नशील तेल के ऊपर निर्भर है।

डॉक्टर खोरी का कथन है कि रामेठा की छाल का उपयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये क्योंकि अगर इसकी छाल को अधिक चबाया जाय तो दांत की जड़ें ढीली पड़कर सूज जाती है और दांत गिरने का धोखा रहता है।

उपरोक्त सारे विवेचनसे यह मालूम होता है कि रामेठा और रामेठाके वर्गकी तमाम बनस्पतियां दाहक और जहरी होती हैं। इसका उपयोग करनेमें बहुत सावधानी की जरूरत होती है।

उपरोक्त अवतरणोंके होते हुए भी इस वनस्पतिके सम्बन्ध में अभी तक सन्देह बना ही हुआ है। लेफ्टनेंट कर्नल कीर्तिकर और मेजर बसु इंडियन मेडिसिनल प्लांट्समें लिखते हैं कि यह वनस्पति एक शक्तिशाली चर्मदाहक पदार्थ है। लेकिन मनुष्य शरीर पर इसके क्या प्रभाव होते हैं यह बात बिलकुल अनिश्चित है। इसकी छाल मछलियोंके लिये विषका काम करती है। दक्षिण में इसके पत्ते घाव, भीतरी चोट और सूजन के ऊपर लगाने के काम में आते हैं।

और भी कुछ लोगोंने इस वनस्पति के सम्बन्धमें जानने की चेष्टा की है मगर वे किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचे हैं। इसलिये इस वनस्पति का प्रयोग करनेवालों को बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये।

रायतुङ्ग

नामः—

हिन्दी—रायतुंग, तत्रक, । मारवाड़—डांसरिया । काश्मीर—समाकदाना । पंजाव—टुंगा, टुंगला । गढ़वाल–टुंगा, टुङ्गला । लेटिन—Rhus Parviflora (रुस परवीफ्लोरा)।

वर्णन—यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी हिमालय में सिंध से नेपाल तक पैदा होती है। इसके अतिरिक्त यह मध्य प्रदेशमें पचमढ़ी पहाड़ियोंपर, गोदावरी जिलों में रंपा पहाड़ियों पर और मारवाड़ में भी पैदा होती है। इसके फल उड़दके दानोंके समान छोटे और कोकम के रंग के होते हैं। हरएक फल में एक २ बीज होता है जो खट्टा और तूरा होता है। इस झाड़ के पत्ते चमड़े को रंगने के काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

रायतुङ्ग हृदय को बल देनेवाला, दीपन, ग्राही, रक्तपित्त शामक और रक्त संग्राहक होता है। यह एक बहुत मृदु स्वभाववाली वनस्पति होती है। इसकी क्रिया इमली के समान होती है।

दक्षिण में जिस प्रकार कोकम का सार उपयोग में लिया जाता है। उसी प्रकार उत्तर में रायतुंग का पत्ता काम में लिया जाता है। गर्भवती स्त्रियोंको लगनेवाले दस्त, निर्बल मनुष्योंके रक्तयुक्त आंव, पित्त प्रकोप की वजह से पैदा हुए वमन, रक्त पित्त, नेत्र रोग और ज्वर के अन्दर गर्मी और जलन को कम करनेके लिए इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

रायजामन

नामः—

संस्कृत—भ्रमरेष्टा, भृंगवल्लभा, भूमिजम्बू, जलजम्बुक, काष्टजम्बू, पिकभक्षा, ह्रस्वा, सूक्ष्मपत्रा। देहरादून–पियामान, थूथी। हिंदी–राय जामन, दुगदुगिया, पियामान। गढ़वाल–पियामान। लेटिन–Eugenia Operculata (यूगेनिया आपरक्यूलेटा)।

वर्णन–यह एक छोटा अथवा मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसकी छाल पीलापन लिये हुए भूरे रंग की खरदरी और ऊबड़खाबड़ होती है। इसकी डालियां चिकनी और हरी होती हैं। इसके पत्ते ४॥ से लेकर १० इन्च तक लम्बे और ३ से लेकर ४॥ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके, फूल सफेद, बिना डंठल के और तीन पत्तियोंवाले होते हैं। इसके फल जामुन की तरह ही होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल कड़वी, कसेली, भारी, पौष्टिक, आंतोंके लिये संकोचक, प्यास बुझानेवाली और कामोद्दीपक होती है। यह रक्तातिसार को दूर करनेवाली, रक्त रोग नाशक, पित्त शामक, व्रणपूरक और खाँसी में लाभ पहुंचानेवाली होती है।

छोटे नागपुरमें इसका फल संधिवात को दूर करने के लिये खाया जाता है और इसकी जड़ को उबाल कर उसका शरबत तैयार करके जोड़ोंपर लगाया जाता है। इसके पत्ते सेंक करने के काम में आते हैं।

टुंकिंग में इसके पत्तों को चाय के पत्तों के प्रतिनिधि रूप में काम में लेते हैं और इसके फूल युक्लपटस के पत्तों की जगह काम में लिये जाते हैं।

राम बांस

नामः—

संस्कृत—क्षुद्र केतकी। हिन्दी-रामबाँस। गुजराती—केतकी। लैटिन—Aloe Americana (एलो अमेरिकाना)

वर्णन-राम बाँसके पौधे बागऔर खेतोंकी बाड़ोंपर अधिकता से पैदा होते हैं। इसके पत्ते घीगुवारके पत्तोंके समान होते हैं। परन्तु घीगुवारके पत्तों से ये पतले होते हैं। इसके फूल लाल और सफेद रंग के गुच्छेदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से राम बाँस, चरपरा, स्वादिष्ट, कड़वा, हलका तथा विष और कफ को नष्ट करने-

वाला होता है। इसका फूल हलका, चरपरा, कड़वा, कान्तिजनक, गरम, वात कफ नाशक, केशों की दुर्गन्ध को दूर करनेवाला और ताप नाशक होता है, इसके फूल का जीरा खुजली को नष्ट करनेवाला होता है और इसका फल किञ्चित उष्ण, स्वादिष्ट तथा, वात, प्रमेह और कफ को नष्ट करनेवाला होता है।

रालवृक्ष

नामः—

संस्कृत—राल, सालनिर्यास, सर्जरस, सर्ज, देवधूप, शाल, शालवेष्ट, शालरस, इत्यादि। हिन्दी-राल, शाल। बंगाल—धूना, सलू, साल, सालवा। बंबई—साल। गुजराती—राल। मराठी—राल, सजारा। पंजाब—साल, सरेल। मध्यप्रांत—साल, रिंजल। कुमाऊ—साल, । नेपाल—सकवा। अवध—कोरोह। उर्दू—राल। फारसी—लालेमोहरी। तामील—शालम्। तैलगू—सालुवा। इङ्गलिश—Common sal। लैटिन–Shorea Robusta (शोरिया रोबुस्टा)।

वर्णन—यह बड़ा वृक्ष उत्तरी भारतवर्ष में हिमालय के अन्दर देहरादून, पालघाट, मोरंग वगैरह पहाड़ों में पैदा होता है। इसके पत्ते १० से लेकर ३० सेण्टिमीटर तक लम्बे और ५ से लेकर १८ सेण्टिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल कुछ पीले रङ्ग के होते हैं। इस वृक्ष को देहरादून में शाल कहते हैं और इसके गोंद को यू० पी० में राल धूप; बंगाल में डम्मर और दक्षिण में राल कहते हैं। राल नवीन हालत में रंगरहित और पारदर्शक होती है और पुरानी होने पर कुछ भूरे रंग की हो जाती है। इसमें किसी तरह की गन्ध और स्वाद नहीं होता। इसको धूप की तरह अग्नि पर जलाने से बहुत धुँआ और सुगन्ध पैदा होती है।

इस वृक्ष के बीजों में से एक प्रकार का गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है। यह तेल इन बीजों को पानी में औटाने से पानी के ऊपर तैरने लगता है। इस तेल को लोग घी में मिलाकर बेंचते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल और इसके पत्ते स्निग्ध, शीतल, कड़वे, कसेले, कृमिनाशक, स्तम्भक, व्रण और जखम को अच्छे करने वाले, सुजाक, खुजली और कुष्ठ में लाभ पहुँचाने वाले, रक्तशोधक, पसीने को रोकनेवाले, कांतिवर्द्धक, खांसी में लाभ पहुँचानेवाले और कान, मस्तक तथा योनिपथ के रोगों में लाभ पहुँचानेवाले होते हैं।

इसका फल मीठा, शीतल, कामोद्दीपक, संकोचक, पौष्टिक, वातकारक और पित्तनिस्सारक होता है। यह प्यास दाह, क्षयजनित व्रण और रक्त के विकारों में उपयोगी होता है।

इसका गोंद शीतल, पचने में भारी, कड़ुवा, कसेला, आँतों का संकोचन करनेवाला, रक्तशोधक, ज्वर और पसीने को दूर करनेवाला और रक्तातिसार में लाभदायक होता है। यह सब प्रकार के प्रदर में लाभ

पहुँचाता है। व्रण, जखम, अग्निदग्ध, हड्डी का टूटना, तथा खुजली इत्यादि बाह्य-व्याधियों में भी यह उपयोगी होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका गोंद खराब गंध और खराब स्वादवाला होता है। यह मस्तिष्क के लिये एक पौष्टिक वस्तु है। जलोदर, तिल्ली की वृद्धि, व्रण, जखम, अत्यधिक रजश्राव, मेदवृद्धि तथा दन्तशूल में भी यह लाभदायक होता है। इसका अंजन आँखों में करने से आँखों की जलन और आँखों के दाने अच्छे हो जाते हैं। इसके बीजों का तेल चर्म रोग, खुजली और सब प्रकार के जखमों में बहुत लाभ पहुँचाता है। इसका गोंद एक उत्तम संकोचक और शोधक पदार्थ होता है। यह अतिसार, पाचन शक्ति की कमजोरी, सुजाक, और कामशक्ति को उत्तेजित करने के लिये दिया जाता है। यह प्लास्टर और बफारा देने के लिये भी उपयोग में लिया जाता है।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार राल में उत्तम व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्तसंग्राहक और संकोचक धर्म रहते हैं। उत्तम राल विलायती पाइन रेजिन के बदले काम आ सकती है। राल के मलहम से बिना किसी प्रकार की तकलीफ हुए फोड़े फुन्सी पककर फूट जाते हैं और अच्छे हो जाते हैं। इस मलहम को जहाँ लगाया जाता है वहाँ की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है और वह हिस्सा कृमियों से रहित हो जाता है। प्रसूता के कमरे में सुगंधित द्रव्यों के साथ राल की धूप देने से वहाँ की हवा बहुत शुद्ध रहती है।

अजीर्ण और सुजाक के अन्दर भी राल को देने का रिवाज है। बच्चों के रक्तमिश्रित अतिसार में राल को शक्कर के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। हर एक स्थान की वायु को शुद्ध करने के लिये राल बहुत उपयोगी वस्तु है।

मात्रा—इसकी मात्रा १ से लेकर २ रत्ती तक होती है। छोटे बच्चों को यह जीरा और मक्खन के साथ देना चाहिये।

उपयोगः—

राल का मलहम—राल ४ भाग, मोम ४ भाग, तिल का तेल ४ भाग और घी ३ भाग। इन सब चीजों को मिलाकर गरम करके घोटने से राल का मलहम तैयार हो जाता है। यह मलहम उत्तम व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है।

गठिया—रालवृक्ष के बीजों के तेल का मालिश करने से पुरानी गठिया में लाभ होता है।

जुक़ाम—राल और बूरे को जलाकर उसका धुआं लेने से सर्दी और गर्मी का जुकाम मिटता है।

दंतरोग—राल का मंजन करने से दांतों से खून का बहना बंद हो जाता है।

कर्णरोग—इस वृक्ष की छाल के चूर्ण में कपास के फल का रस और शहद मिलाकर कान में डालने से कर्णश्राव मिटता है।

रायघनी

नामः—

हिन्दी—रायघनी । बंगाल—रक्तपित्त । बंबई—कनियेल, पापरी । अलमोड़ा—कालीवेल । देहरा-दून—कालीवेल । कुमाऊ—कालीवेल, रक्तपित्त । मराठी—सकलयेल । संथाल—बोंगाथरजोम । लेटिन—Ventilago Calyculata (व्हेंटिलेगो केलिक्यूलेटा) ।

वर्णन—यह एक बड़ी और हमेशा हरी रहनेवाली पराश्रयी लता होती है । इसके पत्ते २ से लेकर, ४ इंच तक लम्बे और १ से लेकर २॥ इंच तक चौड़े होते हैं । इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे होते हैं । यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी गरम हिस्सों में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

छोटा नागपुर में इसकी छाल का रस और इसके कोमल अंकुर मलेरिया ज्वर की वजह से होनेवाले शरीर के दर्द को दूर करने के लिये लगाये जाते हैं । इस वनस्पति की लता या तन्तु से एक अगूठी बनाई जाती है जो दंतशूल को रोकने के लिये काम में ली जाती है ।

रासना

नामः—

संस्कृत—नाकुली, सुरसा, रासना, सर्पगंधा, सुगंधा, गंधनाकुली, एलापर्णी, रसा, रसाढ्या, रसना, इत्यादि । हिन्दी—रासना, रायसन । मराठी—रासना । गुजराती—रासनो । बंगाल—रासना, नाई । लेटिन—Vanda Roxburghii (वांदा राक्स बर्गी) ।

वर्णन—रासना के विषय में वैद्य समाज के अन्दर काफी मतभेद है । भिन्न-भिन्न प्रान्तों में, भिन्न २ वैद्य, भिन्न २ वनस्पतियों को रासना मानते हैं । सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री भागीरथ स्वामी कचूरवर्ग में आने-वाली एलापर्णी को रासना मानते हैं । मगर स्वर्गीय पंडित हरिप्रपन्नजी का कथन है कि एलापर्णी का आकार निर्णीत की हुई रासना से विरुद्ध है । क्योंकि रासना शब्द रसना शब्द का पर्याय है इसलिये जीभ के समान पत्तोंवाली रासना होनी चाहिये । इसलिये एलापर्णी किसी प्रकार रासना नहीं मानी जा सकती है ।

दूसरी रासना पंजाब के स्वामी हरिशरणानन्दजी ने काबुली किसमिस (Viscum Album) को बतलाया है । यह पिस्ते वगैरह वृक्षों के ऊपर होनेवाला एक जाति का बांदा होता है । इस वनस्पति को वे पूर्ण विश्वास के साथ रासना मानते हैं । मगर स्वर्गीय हरिप्रपन्नजी का कथन है कि चरकसंहिता में अगुर्वादि तेल में रासना के साथ ही वृक्षरुहाना स्थान में रुहा शब्द आया हुआ है । इसलिये चरक बाँदा जाति की किसी भी वनस्पति को रासना नहीं मानते हैं । इसलिये स्वामी हरिशरणानन्दजी की यह रासना भी किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती ।

लेफ्टनेंट कीर्तिकर और मेजरबसु ने तथा शालिग्राम निघंटु के कर्ताने तथा और और लेखकों ने भी वांदा राक्सबर्घी को रासना माना है। यह भी एक जाति का वांदा ही होता है। शालिग्राम निघंटु के कर्ता लिखते हैं कि रासना बङ्गदेश के प्राचीन आम्रादि वृक्षों पर उत्पन्न होती है। इसकी जड़ वृक्ष की छाल पर जमी हुई रहती है; इसका फूल पीला, बैंगनी और छींटेदार होता है। लेकिन पंजाब में एक छोटी जाति के पेड़ को रासना मानते हैं। इसकी फलियों में मोठ के समान बीज होते हैं।

लेकिन औषधि संग्रह के रचयिता डॉक्टर देसाई का कथन है कि असली रासना (Inula Racemosa) इन्युला रेसीमोसा नामक वनस्पति ही होती है। इसका क्षुप हवा और पानी के फेर-फार से तीन चार जाति का होता है। यह वनस्पति ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान में पैदा होती है। इसीकी एक उपजाति जिसको इन्यूलाक्वाडिफिडा (Inula Quaduifida) और हिन्दी में फटमेल कहते हैं वह हिन्दुस्तान में पंजाब और गङ्गानदी के उत्तरी किनारेवाले प्रदेशों में होती है। इसकी तीसरी और चौथी जाति काश्मीर और पश्चिमी हिमालय में होती है। हिन्दुस्तान के जिन-जिन प्रान्तों में कूट पैदा होती है उन उन प्रान्तों में यह रासना भी होती है। इसका यह उत्पत्ति सान्निध्य और इसके गुणधर्म की समानता से रासना और कूट में मिलावट भी की जाती है।

डॉक्टर देसाई की बतलाई हुई इस रासना का क्षुप करीब ३ फुट ऊँचा होता है। यह सारा पौधा रस से भरा हुआ रहता है। इसकी जड़ करीब ६ इंच लंबी और १ से २ इंच तक मोटी होती है। इसकी ताजी जड़ें मांसल और रसभरी हुई होती हैं। इसकी जड़ सुगन्धित होती है और इसका स्वाद कड़वा तीखा और सुगंधित होता है।

भारतवर्ष में पैदा होनेवाली रासना के क्षुप करीब ६।७ फीट ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते वेलची के पत्तों के समान मगर फटी हुई किनारों के होते हैं। इसके पत्ते शाखाओं से परिवेष्टित रहते हैं। इसकी जड़ें बहु-वर्षायु और मोटी होती हैं। इन जड़ों को चबाने से वच को चबाने के समान स्वाद आता है और लार छूटती है। इन जड़ों को कूटने पर इनका चूर्ण कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रङ्ग का होता है।

इस वृक्ष की जड़ें ईरान, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और अमेरिका में उपयोग में ली जाती हैं। अमेरिका फ्रान्स और जर्मनी के फरमाकोपिया में यह वनस्पति सम्मत मानी गई है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में रासना मूल का जो उल्लेख किया गया है वह इसी वनस्पति की जड़ें हैं ऐसा कई वनस्पति शास्त्रियों का मत है। यह मत सच्चा भी मालूम होता है। क्योंकि प्राचीन ग्रंथों में रासना के जो गुण धर्म बतलाये गये हैं वे इस वनस्पति के गुण धर्मों से मिलते हुए हैं।

ऊपर हमने उन कई मतभेदों का उल्लेख किया है जो रासना के सम्बन्ध में वैद्य समाज के अन्दर प्रचलित है। इन सब मतों में यद्यपि हमको डॉक्टर देसाई के द्वारा प्रतिपादित मत ही विशेष उपयुक्त मालूम हुआ है लेकिन चूँकि अधिकांश ग्रंथकार वाँदा राक्सबर्गी को ही रासना मानकर चले हैं। इसलिये हम भी इस स्थान पर उसी रासना के गुणधर्मों का उल्लेख करके उसके पश्चात् ही डॉक्टर देसाई द्वारा प्रतिपादित रासना के गुणधर्मों का उल्लेख करेंगे।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रासना की जड़ कड़वी, गरम, भारी, आमको पचानेवाली, कफ और वात को नष्ट करनेवाली तथा सूजन, रक्तवात, वातशूल, उदररोग, खाँसी, ज्वर, विषविकार, ८० प्रकार के वात रोग और हिचकी को दूर करती है।

रासना कड़वी, भारी, गरम, पाचक, आम को पचानेवाली तथा वात, रक्त विकार, विष विकार, श्वास खाँसी, विषम ज्वर, सूजन, हिचकी, आमवात, कफ, शूल, ज्वर, कंप, उदर रोग और सब प्रकार के वात रोगों को नष्ट करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, मृदुविरेचक, यकृत और मस्तिष्क को शक्ति देने-वाली तथा ब्रोंकाइटीज, बवासीर, कटिवात, दंतशूल और सिर के फोड़ों को दूर करती है। यह सूजन को मिटाती है और टूटी हुई हड्डी को जोड़ती है।

रासना की जड़ सुगंधित और कड़वी होती है और गठिया तथा संधिवात में लाभ पहुँचाती है तथा शरीर की अव्यवस्था को दूर करती है। यह वनस्पति कई प्रकार के ऐसे तेलों में जो वात रोगों को नष्ट करने के लिये बनाये जाते हैं उनमें डाली जाती है। इसके संयोग से बने हुए तेल संधिवात और ज्ञान तंतुओं से सम्बंधित रोगों में मालिश करने के काम में लिये जाते हैं।

कॅंपबेल के मतानुसार छोटा नागपुर में इसके पत्तों को कुचल कर उनका लेप ज्वरवाले रोगी के शरीर पर किया जाता है और इसका रस कर्ण प्रदाह को दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है।

कोमान का कथन है कि देशी चिकित्सक इस वनस्पति को स्नायु रोग और संधिवात में उपयोगी मानते हैं। हमने अर्द्धांग वायु (Hemiplegia) के एक केस में इस वनस्पति की जड़ का काढ़ा बनाकर दिया मगर इससे कोई विशेष संतोषजनक लाभ नहीं पहुँचा।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में रासना वात रोगों के लिये एक मशहूर औषधि समझी जाती है। इससे बनाये हुए रासनादि क्वाथ का आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग योगराज गूगल के साथ चोली दामन का साथ है। ये दोनों वस्तुएँ मनुष्य शरीर के अंदर पैदा होनेवाले वात रोग और वृद्धावस्था जनित अव्यवस्था को मिटाने में बहुत सफल समझी जाती हैं और बहुत प्राचीन काल से इन रोगों पर इन औषधियों का उपयोग होता आया है। फिर भी यह वनस्पति जैसा चाहिये वैसा संतोषजनक काम अगर नहीं करती है तो इसका एक मात्र कारण इसके सम्बन्ध की जानकारी का अभाव है। जब हमको अभी यही निश्चित पता नहीं है कि सच्ची रासना क्या वस्तु है, तब तक हम उसके गुण धर्म के सम्बन्ध में अधिकार युक्त गारंटी कैसे कर सकते हैं।

बनावटें—

रासनादि क्वाथ—रासना, नागरमोथा, अडूसा, गिलोय, गोखरू, बच, देवदारू, हरड़, कचूर, सोंठ, पीपर, मिर्च, धनियाँ, अतीस, बड़ी कटेरी, शतावरी, गंगेरन की जड़, एरंड की जड़, सोया, चव्य, पुन-

नेवा, उभीरींगणी, इन सब चीजों को समान भाग लेकर कूट लेना चाहिये। यह सुप्रसिद्ध रासनादि क्वाथ है। इसको एक तोले की मात्रा में पाव भर पानी में औटाकर छटाँक भर पानी रहने पर छानकर योगराज गूगल के साथ सेवन करने से मनुष्य शरीर में होनेवाले सब प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं।

रासनादि क्वाथ (२)—रासना, गिलोय, देवदारू, सूंठ और एरंडी की जड़ इन सब चीजों का क्वाथ दिन में दो बार लेने से आक्षेप, सप्तधातु में समाया हुआ वात, आमवात और सर्वांगीण वात नष्ट होते हैं।

अंडवृद्धि पर रासनादि क्वाथ (३)—रासना, गिलोय, गंगेरन की जड़, मुलेठी, गोखरू और अरंडी की जड़ का क्वाथ, कुछ अरंडी का तेल मिलाकर पिलाने से अंडवृद्धि में लाभ होता है।

रासना (२)

नामः—

संस्कृत—रासना। हिन्दी—रायसन, राशन। काश्मीर—पोष्कर। फारसी—पिलगुश, रासन। अरबी—रासन, झंझविलेशामी। उर्दू—रासन। लेटिन—Inula Racemosa(इन्युला रेसीमोसा)।

वर्णन—इस वनस्पति का पूरा वर्णन हम ऊपर रासना के प्रकरण में दे चुके हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ तीक्ष्ण, चरपरी, गरम, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और शांतिदायक होती है। किसी अचानक घटना से मनुष्य के दिल पर अगर कोई सदमा पहुँच जाय तो उसे यह दूर करती है। हृदय, तिल्ली, यकृत और जोड़ों के दर्द को यह दूर करती है। आधा शीशी, फोड़े फुन्सी, सूजन, कर्णशूल और खाँसी में यह उपयोगी होती है। इसके बीज कड़वे, कामोद्दीपक, बालों की जड़ों को मजबूत करनेवाले और गिरते हुए बालों को रोकनेवाले होते हैं।

रासना के अन्दर कुछ उड़न शील तेल, कुछ दाह जनक राल, एक कटुतत्व, मोम और रासनिक कर्पूर नामक पदार्थ रहते हैं। इसमें पाया जानेवाला रासनिक कर्पूर गंध रहित, स्वाद रहित, बारीक और सफेद रंग का होता है। यह शराब में नहीं घुलता, ठंडे पानीमें बहुत थोड़ा घुलता है और गरम पानी में बहुत अधिक घुलता है।

रासना कड़वी, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, वात नाशक, उत्तेजक, कफनाशक, श्वास नाशक, खांसी को दूर करनेवाली, ज्वरघ्न, चर्म रोग नाशक, वात को दूर करनेवाली और विषनाशक होती है। मस्तिष्क, आमाशय, मूत्रपिंड और गर्भाशय के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। इसमें जन्तु नाशक और पीब नाशक धर्म भी रहता है। ये सब धर्म आजकल रासना के नाम से जो औषधि उपयोग में ली जाती है उसकी जड़ों में नहीं प्रत्युत जिस रासना का वर्णन यहाँ किया जा रहा है उस रासना की जड़ों में पाया जाता

है। निघंटुओं के अन्दर पत्र रासना करके रासना का जो भेद बतलाया गया है उसमें भी ये धर्म नहीं होते। हां कूट नामक वनस्पति में जो कि इसकी वास्तविक प्रतिनिधि है उसमें ये सब धर्म होते हैं।

रासना में पाचक धर्म होता है। इसलिये यह ऐसे अजीर्ण रोगों में जिसमें आमदोष का प्राधान्य होता है दी जाती है। इसमें वात नाशक धर्म भी होता है। इसलिये उदर शूल और पेट के आफरे में भी इसका उपयोग होता है। सब प्रकार के वात रोग फिर चाहे वे सर्दी की वजह से हुए हो अथवा शरीर के अन्दर आमदोष के संचित होने से हुए हों, रासनाके सेवन से दूर हो जाते हैं। वात रोगों के अंदर योग—राजगूगल के साथ इसका सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से सूजन उतरती है। वेदना की कमी होती है और ज्वर में लाभ पहुंचता है। सरदी की वजह से होनेवाले सब तरह के रोगों में इसका प्रयोग करने से लाभ पहुंचता है।

फुफ्फुसके अंदर होनेवाले सब प्रकार के रोगों में रासना का व्यवहार उपयोगी होता है। दमा, श्वास नलिका की पुरानी सूजन, क्षय, फफ्फुस के पड़दे की सूजन जिससे कि छाती में चभके चलते हैं इत्यादि रोगों में रासना का व्यवहार लाभदायक होता है। रासना के सेवन से श्वास इंद्रिय की सूजन कम होती है। फुफ्फुस के अन्दर रहनेवाले जंतुओं का नाश होता है और ज्वर उतरता है। कफ, वात तथा श्वास और खाँसी में रासना उत्तम कार्य करती है। गले की सूजन में रासना के काढ़े से कुल्ले किये जाते हैं। कुत्ता खाँसी के अन्दर इसकी फाँट में शहद मिला कर दी जाती है।

चर्म रोगों में भी रासना का व्यवहार होता है। खुजलीवाले चर्म रोगों में रासना का क्वाथ शरीर पर लगाया जाता है। इसकी जड़ को गौमूत्र में पीस कर खुजली और दाद के ऊपर लगाई जाती है। क्षय रोगों के जंतुओं की वजह से एक विशेष प्रकार के व्रण शरीर पर होते हैं। रासना को देने से इनकी शुद्धि और रोपण होता है।

अनार्तव रोग में भी रासना गुणकारी होती है। इससे उदर शूल कम हो कर मासिक धर्म साफ होने लगता है।

रुखालु

नाम:

मराठी—रूखाळू। लेटिन—Remusatia vivipara (रेमूसेटिया विविपेरा) Arum Viviparum (अरुम विविपेरम)

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय, खासिया पहाड़, छोटा नागपुर, बम्बई और मैसूर में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

रीड़ के मतानुसार इसकी जड़ को हलदी के साथ मिला कर उसका लेप बना कर सूखी खुजली पर

लगाने के काम में लिया जाता है और इसकी जड़ का रस गोमूत्र के साथ मिला कर विष नाशक द्रव्य की तरह उपयोग में लियो जाता है।

रुद्राक्ष

नामः—

संस्कृत—रुद्राक्ष, शिवाक्ष, भूतनाशन, पावन, नीलकंठाक्ष, हटाक्ष, शिवप्रिय, तृणमेरू, अमर, पुष्पचामर। हिन्दी—रुद्राक्ष, रुद्रक। बंगाल—रुद्राक्य, रुद्राक्ष। मराठी—रुद्राक्ष। गुजराती—रुद्राक्ष। तामील—अक्कम। तेलगू—रुद्रचल्लु। लेटिन—Elaeocarpus Janitrus (एलेओकारपस जेनिट्रस)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। जो हिमालय की तलहटी में नेपाल और भूटान की तरफ विशेष रूप से पैदा होता है। इसके फलों की माला बनाकर तमाम शिवभक्त और साधु सन्त पहनते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से रुद्राक्ष खट्टा, गरम, वायुको नष्ट करनेवाला, कफनिवारक, सिर दर्द को नष्ट करने वाला और भूतबाधा तथा ग्रहबाधा को दूर करनेवाला होता है।

जिस प्रकार हैजे की मौसिम में तांबे के पतरे की टिकड़ियाँ शरीरपर धारण करने से हैजा होने का डर नहीं रहता है और जिस प्रकार प्लेग की मौसिम में पपीते (Strychnoa Ignati) की माला धारण करने से प्लेग होने का भय कम हो जाता है उसी प्रकार चेचक, बोदरी और अछबड़ा की मौसिम में रुद्राक्ष की माला धारण करने से इन बीमारियों का आक्रमण होने का डर नहीं रहता है। इसलिये एक ऐसी माला जो तांबे के तार में पपीते के बीज और रुद्राक्ष के फलों से बनाई हुई हो प्रति दिन गले में पहनी जाय तो हैजा, शीतला, बोदरी इत्यादि प्राणघातक रोगों के हमले का भय बहुत कम हो जाता है।

योगी लोगों का कथन है कि रुक्षाद्र की माला धारण करने से मनुष्य शरीर का प्राणतत्व अथवा विद्युत शक्ति नियमित होती है और इसलिये इस माला को धारण करने से कई प्रकार के शारीरिक तथा उन्माद, अपस्मार भूतबाधा, प्रेतबाधा, ग्रहबाधा इत्यादि मानसिक रोग भी रुक जाते हैं।

इसके सिवाय इस वनस्पति में महत्वपूर्ण कफनिस्सारक गुण भी पाया जाता है। इस गुण की वजह से बालकों की छाती में अगर कफ बहुत चिपक गया हो और वह किसी औषधि से नहीं खुलता हो और उसकी वजह से आक्षेप, धनुर्वात इत्यादि के लक्षण पैदा हो गये हों और बालक के जीवन की आशा छोड़ दी गई हो तो ऐसे समय में रुक्षाक्ष के दो तीन दाने लेकर उनको बारीक पीस कर शहद के साथ मिलाकर पाँच-पाँच मिनिट के अन्तर से थोड़ी थोड़ी मात्रा में माता के दूध के साथ देने से वमन के द्वारा सब चिकना कफ निकलकर एक घंटे भर में बालक को आराम हो जाता है।

रुद्राक्ष (२)

नाम:—

हिन्दी–रुद्रक । कनाड़ी–रुद्राक्ष । तामील–पगुम्बाल । लेटिन Elaeocarpus Tuberculatas (इलेओकारपस ट्यूबरक्यूलटस) Monocera Tuberculata (मोनोसेरा ट्यूबरक्यूलेटा) ।

वर्णन—यह रुद्राक्ष की एक दूसरी जाति होती है । इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है । यह वृक्ष पश्चिमी प्रायःद्वीप और मलाया में पैदा होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल का काढ़ा पित्तविकार को दूर करने के काम में लिया जाता है और इसके फल संधिवात, मोती ज्वर (Typhoid Fever) और मृगी रोग को दूर करने के उपयोग में लिये जाते हैं ।

रुद्रवंती

नाम:—

संस्कृत—रुदंती, रुदंतिका, रोमांचिका, संजीवनी, अमृतश्रवा, महामाँसी, त्रणपत्री, द्रवंती, इत्यादि । हिंदी—रुद्रवंती, लाणाबूटी । गुजराती—पलियो । मराठी—रुदंती, चवाला, खारड़ी, रानहरभरा । बंगाल—रुदंती । बंबई—खारड़ी । उर्दू—रुदंती । लेटिन—Cressa Cretica (क्रेसा क्रेटिका) ।

वर्णन—आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र में रुद्रवंती एक दिव्य, दुष्प्राप्य, और अचिन्त्य शक्तिशाली महौषधि मानी जाती है । यह भाग्यवान लोगों को पर्वत की गुफाओं में, दुर्गम स्थानों में, धर्मस्थानों में कभी कभी आकस्मिक रूप में मिल जाती है । यह औषधि देहसिद्धि और धातुसिद्धि अथवा कीमियागिरि (लोहे से सोना बनाना) दोनों के काम में उपयोगी समझी जाती है ।

लेकिन आजकल जिस वनस्पति को रुद्रवन्ती मानकर वैद्य लोग उसका व्यवहार करते हैं वह वनस्पति तो इस देश के अनेक गर्म भागों में, समुद्र के किनारों पर तथा सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र के अन्दर काँफी तादाद में मिलती है । इस रुद्रवन्ती का पौधा चने के पौधे के समान ६ इंच से लेकर १ फुट तक ऊँचा होता है । कहीं कहीं यह जमीन पर छत्ते की तरह फैला हुआ रहता है । इसकी जड़ पृथ्वी के अन्दर १ फुट तक गहरी जाती है । यह कुछ ललाई लिये हुए पीले रंग की होती है । इसके पत्ते चने के पत्तों के समान होते हैं । लेकिन चने के पत्तों पर बारीक कांगरे रहते हैं और रुद्रवन्ती के पत्ते बिना कांगरेवाले होते हैं । इसके पत्तों और डालियों पर बहुत महीन और रेशम के समान मुलायम सफेद रंग का रुआं होता है । जिससे यह सारा पौधा चमकता हुआ मालूम होता है । यह वनस्पति विशेष करके खारवाली जमीनों में अधिक पैदा होती है । इस वनस्पति के पत्ते और डालियाँ हमेशा ओस की बिंदुओं से भरे हुए रहते हैं । इस पर के ओस के बिन्दु धीरे धीरे जमीन पर टपकते रहते हैं । जिससे इस पौधे के नीचेवाली

जमीन हमेशा गीली और ठण्डी रहती है और उसके नीचे चींटियाँ वास करती हैं। इस वनस्पति की डालियों के सिरों पर फूलों के गुच्छे आते हैं। ये फूल, लाल, काले, पीले और सफेद रंग के होते हैं। इसके फल गोलाई लिये हुए छोटे-छोटे होते हैं और इनमें बारीकदानों के समान दो-दो चार-चार बीज होते हैं।

प्राचीन शास्त्रकारों ने रुद्रवन्ती को पहिचानने के लिये कुछ विशेष चिन्ह बतला रखे हैं। पहिला निशान इसके पत्ते चने के पत्तों के समान होते हैं। दूसरा निशान ओस के बिन्दुओं की तरह पानी की बूँदे इसके पौधे में से टपकती रहती हैं। तीसरा निशान अगर इसकी जड़ के पास सफेद कौड़ी को रख दी जाय तो वह पीली पड़ जाती है और चौथा निशान जो सर्वसम्मत नहीं है वह यह कि इसका पौधा रात के वक्त में चमकता है।

आजकल रुद्रवन्ती के नाम से जो वनस्पति प्रसिद्ध है उसमें भी उपरोक्त चार निशानों में से प्रारम्भ के तीन निशान मिलते हैं। फिर भी यही रुद्रवन्ती वास्तविक रुद्रवन्ती है यह मानना कठिन है। क्योंकि शास्त्रकारों के मतानुसार रुद्रवन्ती सर्वसुलभ वस्तु नहीं होती। वह बड़ी कठिनाई से भाग्यवान् लोगों को मिलती है और यह रुद्रवन्ती अत्यन्त सुलभता से चाहे जितनी मिलती है।

कुछ संत महात्माओं का कथन है कि वास्तविक रुद्रवन्ती यू. पी. के फतेहपुर जिले में हँसवा नामक ग्राम में एक तालाब के निकट मिलती है। यह रात्रि के समय में चमकती है। इसलिये रात को जाकर जिस जगह चमक मालूम पड़े वहाँ निशान कर देना चाहिये और फिर दिन को उसी जगह पर जाकर तालाब का पानी सूखने की वजह से जमीन में जो दरार पड़ी हुई रहती है उस दरार के अन्दर से रुद्रवन्ती को पहिचान कर निकाल लेना चाहिये। जमीन की दरार के बाहर समतलभूमि पर भी रुद्रवन्ती के समान ही एक पौधा दिखलाई देता है मगर उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह नरजाति की की रुद्रवन्ती होती है और इसमें इतना गुण नहीं होता। इसके असली गुण मादा जाति की रुद्रवन्ती में ही रहते हैं।

धातुसिद्धि अथवा कीमियागिरी की रसायन क्रिया में सफेद फूलवाली और काले फूलवाली रुद्रवन्ती विशेष उपयोगी समझी जाती है।

फतेहपुर जिले के खागा स्टेशन के समीप मझले नामक ग्राम के तालाब के ऊपर सरदी के दिनों में असली रुद्रवन्ती मिला करती थी मगर कई साधु सन्तों ने उसके पौधों को उखाड़ उखाड़ कर उसकी पैदायश को नष्ट कर दिया है। फिर भी सर्दी के दिनों में कोई कोई साधु आकर अगर कोई पौधा वहाँ दृष्टि में पड़ता है तो उसको खोदकर ले जाता है।

सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री पं० भागीरथ स्वामी लिखते हैं कि इसके पत्तों को चबाने से इसका नमकीन रस साफ दृष्टिगोचर होता है। इसीसे इसका नाम लाणा बूटी रक्खा गया है। इस वनस्पति के पौधे के नीचे की जमीन हमेशा ऐसी तर रहती है मानों वह जल या तेल में भिगोई हुई हो। इसके नीचे के भाग में शीतलता रहने से गर्मी के दिनों में हमेशा इसके नीचे चींटियाँ रहती हैं। इसके पौधे को

कपड़े में बाँधकर दो तीन दिन तक पड़ा रहने दिया जाय तो उसके पश्चात् खोलने पर पौधा ऐसा मालूम होता है कि मानो उसे पानी में डुबोकर निकाला हो। इसके पौधे पर यदि बरसात बरस जाय तो उसका खारापन धुल जाता है मगर दस-पन्द्रह दिन में वह खारापन फिर पैदा हो जाता है।

इस प्रकार इस वनस्पति के सम्बन्ध में भी मनुष्य अभी तक बहुत संदिग्ध अवस्था में हैं और यह दिव्य वनस्पति अभी तक मनुष्य के लिये रहस्यपूर्ण बनी हुई है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति तीक्ष्ण, कड़वी, गरम तथा क्षय, कृमि, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास और प्रमेह को नष्ट करनेवाली तथा वृद्धावस्था और रोग के कारणों को नष्ट करनेवाली होती है।

इसका पौधा कड़वा, चरपरा, गरम, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक, अग्निवर्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, रक्त बढ़ानेवाला और क्षय, कुष्ठ, दमा, पित्तविकार तथा अनैच्छिक वीर्यस्राव को रोकनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पौधा खट्टा और खराब स्वादवाला होता है और इसके पत्ते पौष्टिक, कामोद्दीपक और भूख बढ़ानेवाले होते हैं।

इसके पौधे को जड़ समेत उखाड़ कर छाया में सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को आधे से लेकर एक तोले की मात्रा में शहद के साथ चाटने से कफ की खाँसी और दमा दूर हो जाता है। इसी चूर्ण को दूध में डालकर पीने से स्त्रियों के स्तनों में दूध बढ़ता है। इस चूर्ण में समान भाग वायविडंग का चूर्ण मिलाकर खाने से, सूँघने से और डंक के ऊपर लगाने से जहरी जानवरों का विष दूर होता है।

रुद्रवन्ती १ तोला और काली मिरची ६ रत्ती इन दोनों को मिलाकर पीने से बिगड़ा हुआ रक्त साफ हो जाता है। आधा सेर दूध, आधा सेर पानी, ढाई तोला घी और २ तोला शहद इन सबको मिलाकर आग पर औटाकर जब पानी का भाग सब जल जाय तब उसमें १ तोला रुद्रवन्ती का चूर्ण डालकर पीने से ४९ दिनों में सब प्रकार के प्रमेह शान्त हो जाते हैं।

शुक्लपक्ष के दिनों में रुद्रवन्ती को लाकर छाया में सुखाकर उसका चूर्ण करना चाहिये। उस चूर्ण में रुद्रवन्ती के रस की ही ७ भावनाएँ देना चाहिये। फिर उसकी आठ आठ रत्ती की गोलियाँ बनाकर कड़वी तुम्बी में भरकर रख देना चाहिये। फिर इसमें से प्रतिदिन एक गोली, तीन माशे घी और ६ माशे शहद के साथ मिलाकर चाट लेना चाहिये और उसके एक घण्टे के पश्चात् गाय का दूध पी लेना चाहिये। जब यह प्रयोग चलता हो तब नमक बिलकुल छोड़ देना चाहिये और दूध भात के समान सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिये। यह एक परम रसायन योग है। इसके लगातार सेवन करने से मनुष्य की बलबुद्धि, वीर्य, तेज, स्मृति तथा आयु वृद्धि होती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है और देह दिव्य होती है तथा उसकी जीवनी शक्ति और रोगनिवारक शक्ति का विकास होता है।

बनावटें :—

पारद भस्म—रुद्रवंती के रस में पारे को तीन दिन तक घोटकर गोली बना लेना चाहिये। फिर

रुद्रवंती के पौधों को पीसकर उनकी लुग्दी बनाकर उस लुग्दी में उस गोली को रखकर सराव सम्पुट में बन्द करके कपड़ मिट्टी कर देना चाहिये। फिर उस सरावसम्पुट को एक हाथ लम्बे, एक हाथ चौड़े और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उस गड्ढे को आधा ऊपले कंडों से भर कर उन कंडों पर उस सरावसम्पुट को रखकर फिर शेष भाग भी ऊपले कंडों से भर देना चाहिये। उसके पश्चात् उसमें आग सुलगा देना चाहिये। जब अग्नि शीतल हो जाय तब उस सरावसम्पुट को निकाल कर खोलने पर उसमें पारे की कठिन गोली बनी हुई मिलेगी। इस गोली को फिर से तोड़कर रुद्रवंती के रस में घोंट कर तीन बार इसी प्रकार आँच देने से पारे की उत्तम भस्म तयार हो जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि उचित अनुपानों के साथ प्रयोग करने पर यह भस्म अनेकानेक रोगों का नाश करती है और परम रसायन है।

रूपामक्खी

नाम—

संस्कृत—रौप्यमाक्षिक, तारमाक्षिक, माक्षिक श्रेष्ठ। हिन्दी—रूपामाखी। मराठी—रौप्यमाक्षी। बंगाल—रौप्य माक्षिक। गुजराती—रूपामाखी। अंग्रेजी—Iron pyrites (आयर्न पायरिटीज) लेटिन—Ferrum sulphuratum (फेरम सल्फरेटम)।

वर्णन—रूपा माखी एक उपधातु होती है। इसका रंग चांदी के समान होता है और चांदी का भी कुछ अंश इसमें रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रूपामाखी पाक में मीठी, रस में कुछ कड़वी, वीर्यवर्द्धक, बुढ़ापे को जीतनेवाली, नेत्रों को हितकारी तथा प्रमेह, कोढ़, कृमि, सूजन, पांडुरोग, अपस्मार, पथरी, बवासीर, खुजली, विषविकार, पांडु, क्षय, उदररोग और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली होती है।

अशुद्ध रूपामाखी बलनाशक, विष्टंभ, नेत्ररोग, कोढ़, गंडमाला और अनेक प्रकार के घावों को पैदा करनेवाली होती है। अतः इसे हमेशा शुद्ध करके ही लेना चाहिये।

यूनानीमत—यूनानीमत से रूपामाखी कुछ कालापन लिये हुए सफेद होती है। इसकी प्रकृतिशीतल और रूखी होती है। यह देह की चिकनाई का शोषण करती है और नेत्रों की ज्योति को बढ़ाती है। सिर के रोग, नेत्र के घाव, नाखूनों के रोग और मोतियाबिंद में लाभ पहुँचाती है। तिल्ली की कठोरता को मिटाती है। इसमें विष नहीं होता। इसकी प्रतिनिधि मुर्दासिंगी होती है। इसका दर्पनाशक बदाम का तेल है और इसकी मात्रा २ माशे की होती है।

चांदी के अभाव में रूपामाखी दी जाती है। यह चांदी से कुछ कम गुणकारी होती है। रूपामाखी में चादी के सिवाय और पदार्थों के गुण भी रहते हैं।

रूपामाखी को शुद्ध करने की विधि—रूपामाखी को १२ घंटे तक कंकोड़ा, मेढ़ाशिंगी और नीबू के रस में घोटकर सुखा लेने से वह शुद्ध हो जाती है।

रूपामाखी को भस्म करने की विधि—रूपामाखी को बकरे के पेशाव अथवा कुल्थी के काढ़े में खरल करके सरावसम्पुट में रखकर, गजपुट में रखकर फूंक देने से उसकी भस्म हो जाती है। अगर उसमें फिर भी चमक दिखलाई दे तो एक दो गजपुट उसे और दे देना चाहिये। कोई-कोई इसे ७ वार खरल करके ७ वार गजपुट में फूँकते हैं।

अशुद्ध रूपामाखी के खाने से अगर किसीको विकार पैदा हो जाय तो मिश्री और मेढ़ाशिंगी का समान भाग चूर्ण खिलाने से वह शान्त हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से रूपामक्खी पौष्टिक, धातुपरिवर्तक तथा पांडुरोग, श्वेतप्रदर, प्रमेह, नेत्ररोग, गुदा द्वार की खुजली और सर्वाङ्गीण सूजन पर लाभदायक होती है।

रूमीमस्तगी

नामः—

संस्कृत—रूमकुन्दरू। हिन्दी—रूमी मस्तगी। लेटिन—Pistacia Leutiscus (पिस्टेसिया ल्यूटिसकस)।

वर्णन—रूमी मस्तगी एक प्रकार का गोंद होता है यह तुर्कीस्तान में पिस्ते की जाति के एक झाड़ से निकलता है। इसका रङ्ग उत्तम और पीला होता है। इसके छोटे छोटे गोल गोल टुकड़े होते हैं। यह एक मूल्यवान औषधि होने की वजह से इसके अन्दर दूसरे गोंद के टुकड़े भी मिला दिये जाते हैं। काबुली मस्तगी का भी इसमें मेल किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

रूमी मस्तगी में उत्तेजक, कफनाशक, मूत्रल और संकोचक इतने धर्म रहते हैं। इसकी सुगंध मज्जातन्तुओं को उत्तेजना देती है।

फेफड़े के रोगों में जब कफ बहुत बढ़ने लगता है तब रूमी मस्तगी को देने से कफ का बढ़ना बन्द हो जाता है। इससे श्वासमार्ग की श्लेष्म त्वचा को उत्तेजना मिलती है। रूमीमस्तगी को पानी में औटाकर उस पानी को बच्चों के दस्तों को बन्द करने के लिये पिलाते हैं। अजीर्णरोग में पाचनरस को बढ़ाने के लिये और मुँह की दुर्गंध को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

कर्नलचोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उत्तेजक और मूत्रल होती है। दंत चिकित्सा में भी इसका उपयोग होता है। इसके अन्दर एक उड़नशील तेल और रेजिन पाये जाते हैं।

रुंछली सरपंखो

नामः—

पोरबन्दर—रुंछली सरपंखो। तेलगू—नूगूहेमपल्ली। तामील—पुनाईक्कावेटलइ। लेटिन—Tephrosia. Villosa (टेफ्रोसिया विलोसा)।

वर्णन—यह सरपंखे की एक उपजाति होती है। इसके पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। ये पौधे एक से लेकर तीन फीट तक ऊँचे होते हैं। इनमें बहुत शाखाएँ निकली हुई होती हैं। इस सारे पौधे पर कुछ सफेदी लिये हुए भूरे रङ्ग के घने रुएँ रहते हैं। इसके ऊपर हलके बैंगनी रंग के फूल आते हैं। इसकी फलियाँ भूरे रङ्ग के मखमली रुएँ से गच्च भरी हुई रहती हैं। इन फलियों में ६ से लेकर ८ तक बीज होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में और विशेषकर कच्छ काठियावाड़ में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के सब गुणधर्म सरपंखे के गुणधर्म के समान होते हैं।

पुद्दुकोटा में इसका रस जलोदर के अन्दर दिया जाता है।

रुइन्स

नामः—

गढ़वाल—रुइन्स। पंजाब—खेरिज, खेरवा, लेहान, लूनी, रिशसिंचू। पुश्तु—खारवे। नेनीताल—रुइन्स। लेटिन—Cotoneaster Bacillaris (कोटनेस्टर बेसिलेरिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसके कोमल पत्ते कुछ ललाई लिये हुए भूरे रंग के होते हैं। इसके फल काले रंग के होते हैं यह वनस्पति हिमालय में मरी और काश्मीर से लेकर नेपाल तक ४ हजार फीट से लेकर ८ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वृक्ष के तंतु संकोचक होते हैं।

रुंछाली वेलड़ी

नामः—

गुजराती—रुंछाली वेलड़ी । लेटिन—Convolvulus Glomeratus (कनवोलवलस-ग्लोमेरेटस)।

वर्णन—यह शंखाहुली या शंखपुष्पी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसकी लताएँ बहुत पतली और रुओं से भरी हुई होती हैं। इसके पत्ते शंखपुष्पी के पत्तों से मिलते हुए होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं और उन गुच्छों में घना मखमली रुआँ रहता है। इसके हर एक फल में १ से लेकर ४ तक बीज होते हैं। यह वनस्पति पंजाब, राजपूताना, सिंध, बिलोचिस्तान और काठियावाड़ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते और इसकी बेलें शंखाहुली के बदले में उसके प्रतिनिधि रूप काम में लिये जाते हैं और इसके बीज रेचक वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं।

रूसा

नामः—

संस्कृत—रूक्षपत्रा, पीतफला, शखोटा, अक्षधरा, भूतवासा, भूतवृक्ष, गवाक्षी, कर्कशच्छदा। हिन्दी—रूसा, सहोरा, दहिया, करचन्ना। बंबई—करौली, करचन्ना, करेरा, रूसा। बंगाल—शिओरा। मराठी—खारोली। सीमाप्रान्त—रूसा, सिहोरा। पटना—सिहोरा। पंजाब—दहिया, जिंदी। सहारनपुर—दहिया, कुरचन। तामील—कुरीपिला। तेलगू—बरीनिका। लेटिन—Streblus Asper (स्ट्रेबलस एस्पर)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। इसकी छाल हलके भूरे रङ्ग की अथवा कुछ हरे रङ्ग की होती है। इसका रस दूध के समान सफेद होता है। इसकी शाखाएँ रुएँदार होती हैं। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। इसके नर और मादा दो तरह के फूल लगते हैं। इसका फल छोटे बेर के आकार का और पकने पर पीले रङ्ग का होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के खुश्क प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कुष्ठ, बवासीर, वात, कफ, अतिसार, प्रवाहिका, फीलपाँव और क्षयजनित कंठ की ग्रन्थियों में लाभ पहुंचानेवाला होता है।

इसका दूधिया रस संकोचक और रोग के कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला (Antiseptic) होता है। यह छालों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी छाल का काढ़ा ज्वर, अतिसार और प्रवाहिका में दिया जाता है। इसकी जड़ का लेप अच्छे न होनेवाले वृण और नासूर पर लगाया जाता है। इसकी ताजी जड़ें सर्पविष को नष्ट करनेवाली भी मानी जाती हैं।

रेवन्दचीनी

नाम:—

संस्कृत—पीता, पीतमूलिका, पीत श्रेष्ठ, महापीत, गंधिनी, रेवटचीनी। हिन्दी–रेवन्दचीनी। मराठी—रेवाचीनी। बम्बई—लाड़की रेवन्दचीनी। गुजराती—गमनी रेवन्दचीनी बंगाल—बंगला रेवन्दचीनी। पंजाब—रेवन्दचीनी। चुकी, चूची, कंडोल, लचु, पंबाश, अटसू। नेपाल—पदमचाल। तामील—नेदिरेवलचीनी, उर्दू–रेवन्दचीनी। अरबी—रेवन्दचीनी। लेटिन—Rheum Emodi (रहीम इमोडी)। अंग्रेजी—Indian Rhubarb (इंडियन रूबर्ब)।

वर्णन—यह क्षुप जाति की वनस्पति हिमालय में नेपाल और सिकिम के अन्दर ४ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसकी खेती भी की जाती है और अपने आप भी पैदा होती है। इसके पत्ते मुचकुन्द के पत्तों के समान होते हैं। इसके कोमल पत्ते लाल रङ्ग के और माँसल होते हैं और इसके पुराने पत्ते हरे रङ्ग के होते हैं। इसकी जड़ में अदरक के समान गठाने होती हैं। इन गठानों की छाल को निकाल कर सुखाये हुए टुकड़े रेवन्दचीनी के नाम से बाजार में बिकते हैं। इनका रंग पीला अथवा कुछ भूरा होता है। इनका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इसकी उत्तम जाति की जड़ों को रेवेन्द खटाई और हलकी जाति की जड़ों को रेवन्द चीनी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रेवन्दचीनी चरपरी, कड़वी, बलकारक, मृदुविरेचक तथा अजीर्ण, अतिसार, मन्दाग्नि, अरुचि, कब्जियत, शीतपित्त, और दुष्ट वृण को दूर करती है। इसके सत्व को उसारे रेवन्द कहते हैं। उसारे रेवन्द का वर्णन कंकुष्ट के प्रकरण में इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में दिया है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ें तीक्ष्ण, कड़वी, विरेचक, ऋतुश्रावनियामक और मूत्रल होती है। ये पित्तविकार, कटिवात, मस्तिष्क की गर्मी, नेत्रों के व्रण, बवासीर, प्राचीन ब्रोंकाइटीज, प्राचीन ज्वर, दमा, जुकाम और रगड़ में लाभदायक होती है।

रेवन्दचीनी में कटु, दीपन, यकृत के लिये उत्तेजक और आनुलोमिक इतने धर्म रहते हैं। इसको छोटी मात्रा में देने से लार बढ़ती है, आमाशय में पाचन रस अधिक पैदा होता है, भूख बढ़ती है, अन्न पचता है और यकृत को उत्तेजना मिलने से पित्त का संचालन ठीक तरह से होने लगता है। इसको छोटी मात्रा

देने से इसका संकोचक अथवा ग्राही धर्म स्पष्ट दिखलाई देने लगता है। लेकिन बड़ी मात्रा में इसको देने से यह जुलाब का काम करती है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से बड़ी आँत की क्रिया बढ़कर ६ से ८ घंटे में दस्त लगते हैं और पेट में मरोड़ी पैदा होती है। फिर भी यह सौम्य होने की वजह से आँतों में दाह पैदा नहीं करती। जुलाब होने के पश्चात् इसका संकोचक धर्म प्रारम्भ होता है और दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। इससे पेशाब का रंग गाढ़ा हो जाता है।

शिथिलता प्रधान अजीर्ण रोग में जब कभी-कभी दस्त होने लगते हैं तब इसके अर्क को देने से कॉफी लाभ होता है। वातरक्त के रोगियों को दस्त दिलाने के लिये यह एक उत्तम वस्तु है। इस रोग में अगर अन्न का पाचन बराबर न होता हो तो उस हालत में इसको थोड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है। छोटे बच्चों को दस्त लाने के लिये इसका उपयोग करने में कोई हानि नहीं होती। बवासीर के रोग में रेवन्दचीनी का जुलाब देने से बहुत लाभ होता है। पुरानी कब्जियत के अन्दर इसका जुलाब नहीं देना चाहिये। छोटे बच्चों को अधिक दूध पीने की वजह से अगर पेट में दूध सड़ जाय और अम्लता बढ़कर अगर दस्त लगने लगे तो ऐसी स्थिति में रवेन्दचीनी को देने से सड़ा हुआ दूध बाहर निकल जाता है, अम्लता कम हो जाती है और पेट साफ होने के पश्चात् दस्त अपने आप आप बन्द हो जाते हैं। पहिले दस्त लगाकर उसके पश्चात् कब्ज करनेवाली दो ही औषधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक रेवन्द चीनी और दूसरी अरण्डी का तेल। दोनों ही सौम्य स्वभावी होती है। लेकिन अरण्डी का तेल क्षार स्वभावी न होने की वजह से पेट की अम्लता को कम नहीं करता। मगर रेवन्दचीनी पेट की अम्लता को भी कम करती है। इस-लिये बच्चों के लिये अरण्डी के तेल की अपेक्षा रेवन्दचीनी विशेष उपयोगी होती है। रेवन्दचीनी का यह क्षार् स्वाभावीधर्म बहुत सौम्य होता हैं। इसलिये अगर इसके इस धर्म को कुछ उग्र करना हो तो सज्जी-क्षार के समान कोई क्षार स्वभावी पदार्थ इसमें मिला देना चाहिये। रेवन्दचीनी को लेने से पेट में मरोड़ी भी चलती है। इसके इस दोष को दूर करने के लिये इसमें सूँठ के समान कोई सुगंधित पदार्थ मिलाना चाहिये। पेट के अन्दर ग्रहणी में अम्लता बढ़ने से अगर दस्त होते हों तो उस अम्लता को दूर करने के लिये रेवन्दचीनी का जुलाब बहुत उपयोगी होता है। रेवन्द चीनी को ठण्डे पानी में पीस कर सूजन पर लगाने से भी लाभ होता है।

मात्रा—रेवन्द चीनी की मात्रा बारम्बार देने के लिये १ से लेकर ५ रत्ती तक और एक बार देने के लिए ८ से लेकर १५ रत्ती तक की होती है। एक वर्ष तक के बच्चों को इसकी १ रत्ती की मात्रा देनी चाहिये।

रासायनिक विश्लेषण—

रेवन्दचीनी में एक विरेचक अम्ल होता है। यह अम्ल सनाय के अन्दर भी पाया जाता है। इसको जलाने से इसकी राख ९ प्रतिशत पड़ती है। इस राख में जवाखार और चूने का अंश रहता है। रेवन्द चीनी में यह विरेचक अम्ल ४ प्रतिशत, एक प्रकार की अलकोहल में घुलनेवाली राल ४ प्रतिशत, पानी में घुलनेवाला गोंद ४ प्रतिशत और कषायद्रव्य ११ प्रतिशत रहते हैं।

कर्नलचोपरा के मतानुसार रेवन्दचीनी पश्चिमी चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक विरेचक द्रव्य की तरह बहुत बड़ी तादाद में उपयोग में ली जाती है। बच्चों के रोगों में यह एक बहुत उपयोगी और घरेलू औषधि मानी जाती है। मतलब यह कि यह गृहस्थ के घर में प्रतिदिन काम में आनेवाली वस्तु है। यह वस्तु विशेष करके चीन से परसिया होती हुई हिन्दुस्तान में आती है। लंदन से भी निश्चित मात्रा में यह हिन्दुस्तान में आती है। हिमालय के अन्दर नेपाल और सिकिम में ४ हजार से लेकर १२ हजार फीट की ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है। हिमालय में पैदा होनेवाली रेवन्दचीनी; चीनी रेवन्दचीनी की अपेक्षा गहरे रङ्ग की और बनावट में कुछ भद्दी होती है। हिमालय की रेवन्दचीनी का चूर्ण कुछ भूरा-पन लिये हुए पीले रङ्ग का होता है। जब कि चीनी रेवन्द चीनी का चूर्ण चमकीले पीले रङ्ग का होता है। इसीसे यहाँ की रेवन्दचीनी, चीनी रेवन्दचीनी से हलकी समझी जाती है।

देशी रेवन्दचीनी को इंडिजेनसड्रग कमेटी ने अनुभव में लिया लेकिन उसको यह विशेष संतोषदायक मालूम नहीं हुई। लेकिन इस कमेटी ने इसके सम्बन्ध में जो कारण दिये वे निर्णयात्मक नहीं कहे जा सकते। नीचे लिखे हुए रासायनिक विश्लेषण से देशी रेवन्दचीनी और इंग्लिश रेवन्दचीनी तथा रशियन रेवन्दचीनी में पाये जानेवाले रासायनिक तत्वों का पता लगता है और उससे मालूम होता है कि देशी रेवन्दचीनी दूसरी रेवन्दचीनियों से विरेचक तत्वों में किसी भी प्रकार कम नहीं है।

	चीनी हलकी	चीनी उत्तम	देशी	रशियन
आर्द्रता (Moisture)	६·०६	७·९	५·४	१२·६
राख	९·३३	४·९	९·२८	६·६३
पानी में घुलनेवाला लुआब	६·५	४·८	४·०	५·५
केथेर्टिक एसिड	३·५	३·२	४·५	३·२
गैलिक एसिड इत्यादि	३·३	२·२	३·०	४·५
अलकोहल में घुलनेवाला रालीय पदार्थ	२·६	२·०	४·६	५·२
चर्बी और पेट्रोलियम ईथर में घुलनेवाला क्रिसोफेमिक एसिड	·४	·३	·७	१·५

उपरोक्त तालिका से मालूम होता है कि भारतवर्ष में पैदा होनेवाली रेवन्द चीनी सावधानी के साथ पैदा की जाय तो चीन से आनेवाली रेवन्दचीनी से उत्तम होती है। बंगाली रेवन्दचीनी (Rumex Nepalensis) हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में पैदा की जाती है और यह रेवन्दचीनी के नाम से बंगाल के बाजारों में बिकती है। इसके विरेचक तत्व चीनी रेवन्दचीनी के समान ही होते हैं और यह घरेलू औषधि की तरह बंगाल में उपयोग में ली जाती है। मगर चीनी रेवन्द चीनी की तुलना में इसकी उपयोगिता के बारे में कोई भी निश्चित मत अभी तक प्राप्त नहीं है।

रेनुक

नामः—

संस्कृत—रेनुका। हिन्दी—शंमालुकाबुल। बंगाल—रेनुक। लेटिन—Piper Auranticum। (पायपर ओरंटिकम)।

वर्णन—यह एक लता होती है जो नेपाल और आसाम में पैदा होती है। इसका रङ्ग सूखने पर पीला हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल कड़वा और कसैला होता है। यह ज्वर तथा श्वास को शमन करनेवाला होता है।

रेलू

नामः—

हिन्दी—एला, कांदो, करंज, रेलू, उड़ी। बम्बई—चिल्लारा। गुजराती—चिल्लर। मराठी—चिल्लारा, चिल्लारी। उर्दू—एला। उड़िया—गोदचिल्ली। कश्मीर—कांडो। अंग्रेजी-Bahama Sappan (बहामा सेपान)। तामील—इन्दु, पुलिता दुक्री। तेलगू—गोडाकोरिंडा। लेटिन—Caesalpinia Sepiaria (केसलपीनिया सेपिएरिया)।

वर्णन—यह एक कटकरंज के वर्ग की झाड़ीनुमा बेल होती है। जो प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसके पत्ते ९ से लेकर १४ इंच तक लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते मीठे, मृदुविरेचक, पौष्टिक, शान्तिदायक, ज्वरनाशक, ऋतुश्राव नियामक और पित्तविकार को शमन करनेवाले होते हैं।

सेवरी के मतानुसार चम्बा में इसके पत्तों को कुचलकर जले हुए स्थान पर लगाया जाता है।

चीन में इसकी जड़ को एक विरेचक द्रव्य की तरह काम में लिया जाता है।

लारियूनियन में इसके पत्ते ऋतुश्राव नियामक माने जाते हैं।

मेडागास्कर में इसकी जड़ का उपयोग एक ऋतुश्राव नियामक पदार्थ की तरह किया जाता है। इसके पत्तों का शीतनिर्यास एक प्रभावशाली विरेचक और वमनकारक द्रव्य की तरह उपयोग में लिया जाता है।

रोहिणी

नाम:—

संस्कृत—मांसरोहिणी, रोहिणी, अग्निरूहा, अतिरुहा, चन्द्रवल्लभा, चर्मकशा, कशामांसी, लोमकर्णी, बीरवती, रसायनी इत्यादि। हिन्दी—रोहिणी, रोहण, रक्तरोहण। मराठी—रोहिणी, मांसरोहिणी, पोटर। बंगाल—रोहन, रोहिणा। बम्बई—रोहन। गुजराती—रोहणी। काठियावाड़—रोना। तामील—सेम। तेलगू—सेमी। उर्दू—रोहन। इंग्लिश—Redwood Tree। लेटिन—Soymida Febrifuga (सोयमिडा फेब्रीफ्यूगा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जुड़म, ३ से लेकर ६ के जोड़ों में लगते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए सफेद रङ्ग के होते हैं। इसके फल छोटी सेव की तरह और पकने पर काले हो जाते हैं। इसकी लकड़ी और छाल गहरे लाल रङ्ग की, मोटी और कड़वी होती है। यह छाल कुचले की छाल की तरह दिखलाई देती है। औषधि में इसकी छाल ही उपयोग में ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मांसरोहिणी वीर्यवर्द्धक, मृदु विरेचक, कसेली, ज्वरनाशक, कृमिनाशक, कामोद्दीपक और त्रिदोषनाशक होती है। यह गले के व्रण, वात, त्रिदोष, ज्वर, खाँसी, दमा, रक्तविकार, व्रण, कुष्ठ और अतिसार में लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी छाल आँतों का संकोचन करनेवाली और ज्वर में लाभदायक होती है।

रोहिणी की छाल में उत्तम संकोचक, कटुपौष्टिक और थोड़ी मात्रा में पार्यायिक ज्वरनाशक धर्म रहते हैं। बड़ी मात्रा में इसको देने से चक्कर आ जाते हैं और जी घबराता है। जीर्णज्वर और आंतों की शिथिलता में यह एक बहुत उपयोगी वस्तु है। इसकी छाल का काढ़ा बनाकर देने की अपेक्षा इसका चूर्ण देना विशेष लाभदायक होता है। प्राचीन अतिसार में इसको ले लेने से उत्तम परिणाम दृष्टिगोचर होता है।

मलेरिया ज्वर अथवा पार्यायिक ज्वरों में और उनसे होनेवाली कमजोरी में, पुराने और हठीले अतिसार में और प्रवाहिका में तथा दूसरे ऐसे रोगों में जिसमें संकोचक औषधि की जरूरत होती है इस वनस्पति का उपयोग सफलता के साथ किया जा सकता है।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष की छाल कटु-पौष्टिक और मलेरिया के विष को नष्ट करने के लिये सिनकोना की छाल के समान मानी जाती है। हमने इसकी छाल का काढ़ा १ औंस की मात्रा में दिन में तीन बार मलेरिया ज्वर के रोगियों को दिया और उसमें यह लाभदायक पाई गई। मगर इसकी क्रिया बहुत ही धीरे और सिनकोना के उपक्षारों की अपेक्षा बहुत ही कम दर्जे की पाई गई।

इसकी छाल का काढ़ा ओक की छाल के प्रतिनिधि रूप में व्रणों को धोने, एनिमा देने और कुल्ले करने के काम में लिया जा सकता है।

इसकी छाल में एक कड़वा, रङ्गरहित और रालपूर्ण पदार्थ पाया जाता है। यह पानी में नहीं घुलता लेकिन अलकोहल में घुल जाता है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इस पदार्थ के सिवाय इसकी छाल में कषायअम्ल भी बहुत रहते हैं।

मात्रा—इसकी छाल की चूर्ण की मात्रा ३० रत्ती की है जो दिन में ३ बार दी जाती है। इसकी छाल की फांट बनाकर २ तोले की मात्रा में दी जाती है।

उपयोग—

गठिया—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से और इसकी छाल की पुल्टिस बाँधने से गठिया की सूजन मिटती है।

योनि का व्रण—इसकी छाल का क्वाथ बनाकर उससे धोने से योनि का व्रण मिटता है।

मुँह के छाले—इसकी छाल के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

अतिसार—इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से पुराना और हठीला अतिसार और आमातिसार मिटता है।

मलेरिया ज्वर—इसके चूर्ण को ३० रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देने से मलेरिया ज्वर छूट जाता है। मगर यदि मात्रा अधिक हो जाती है तो स्नायु जाल में विकार पैदा होकर पहिले चक्कर आते हैं और फिर मूर्च्छा आ जाती है। इसलिये इसको अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिये।

रोसाघास

नामः—

संस्कृत—रोहिष, रोहिष तृण, सुगन्धिका, देवजग्ध, धूपगन्धिका, इत्यादि। हिन्दी—रोंसाघास, रूसा, गंधेजघास, मिरचिया गन्ध, पालखड़ी। बङ्गाल—अगिया घास, गन्धबेना, रामकर्पूर। बम्बई—रोहिष। गुजराती—रोशाघास, रूष, रोशड़ो। मराठी—रोहिष। पंजाब—रातुस। सहारनपुर—मिरचागन्ध। फ़ारसी—खवालमामून। अरबी—अंजखर। इंग्लिश—Geramiun Grass, Rusa grass. लेटिन—Andropogon schoenanthus (एण्ड्रोपोगान स्कोइनेंथस)। Cymbopogon Schoenanthus (सिम्बोपोगीन स्कोइनेंथस)।

वर्णन—रूसा घास एक सुगन्धित घास होता है। इसके पौधे २ से लेकर ४ हाथ तक ऊँचे होते हैं। जिस जगह पर यह पैदा होता है वहाँ इसके पड़ाव के पड़ाव पड़ते हैं। इसके पत्ते नीचे से चौड़े और फिर क्रमशः पतले होते हुए ऊपर बारीक नोक वाले होते हैं। इसके पौधे के सिरे के ऊपर फूल की चँवरी

आती है। इसके पत्ते और फूल को मसलने से उसमें से बहुत मनमोहक खुशबू आती है। इस घास को ढोर नहीं खाते। यह घास राजपूताना, मालवा, नेमाड़ और कच्छ काठियावाड़ में बहुत पैदा होता है।

इस घास में से एक उड़नशील तेल प्राप्त किया जाता है। जो रोशे का तेल या रोशे के अतर के नाम से गन्धियों के यहाँ बिकता है। बहुत से अतर उतारने वाले लोग संदल के तेल की जगह रोशे के तेल का उपयोग करते हैं।

रोशा घास दो प्रकार का होता है। एक को संस्कृत में कतृण और दूसरे को दीर्घ रोहिष कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रोशा घास कड़वा, कसेला, चरपरा और ज्वर, खांसी, कुष्ठ, हृदय रोग, गले के रोग और बच्चों को होनेवाली मृगी को दूर करता है।

इसका तेल गरम, पसीना लानेवाला, मूत्रल, ज्वर को दूर करनेवाला, उत्तेजक और चेतना लाने वाला होता है।

नवीन आमवात और गठिया में इसकी मालिश करने से लाभ होता है मगर पुरानी गठिया और आमवात में इसकी मालिश से लाभ नहीं होता। सिर के बाल यदि उड़ गये हों वहाँ पर इस तेल की मालिश करने से फायदा होता है। सर्दी, जुकाम और खांसी में इसका काढ़ा बनाकर देने से फायदा होता है।

उपयोग—

गठिया—इसके तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

सिर की गंज—सिर में इसके तेल की मालिश करने से सिर की गंज मिटती है।

स्नायविक पीड़ा—रोशे के तेल की मालिश से स्नायविक वेदना मिटती है।

पेटका दर्द—रोशा घास की फांट बनाकर पिलाने से पेट का दर्द मिटता है।

चर्म रोग—इसके तेल की मालिश करने से खाज खुजली इत्यादि चमड़े के रोग मिटते हैं।

ज्वर—इस घास का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर और जुकाम मिट जाता है।

हाथ पैरों की शून्यता—इसके पत्तों की मालिश करने से हाथ पैरों की शून्यता मिट जाती है।

रोजमरी

नामः—

हिन्दी—रोजमरी। लेटिन—Rosmarinus officinalis (रोजमरीनस आफिनेलिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का फूल वाला सुगन्धित क्षुप बहुत से बगीचों में लगाया जाता है। औषधि प्रयोग में इसके पत्ते काम में लिये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

रोजमरी के अन्दर वायुनाशक, उत्तेजक और संकोच विकास प्रतिबन्धक ये तीन धर्म रहते हैं। इसका वायुनाशक धर्म उत्तम होता है। उदरशूल, कोष्ठवायु और वायुगोला में इसका उपयोग किया जाता है। भूतोन्माद के अन्दर अगर उपरोक्त लक्षणों की प्रधानता हो तो इसको देने से लाभ होता है।

लंगली

नामः—

संस्कृत—लंगली। बंगाल—ईश लांगुली, कसपरा। लेटिन—Hydrolea zeylanica (हाइड्रोलिया झेलेनिका)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है जो भारतवर्ष की तर जमीनों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों को कुचलकर उनकी लुगदी बनाकर पुल्टिस की तरह बाँधने से कठोर और न भरनेवाली विद्रधि आराम हो जाता है। इन पत्तों के अन्दर कुछ कृमिनाशक (Antiseptic) तत्व भी रहते हैं।

लजालू

नामः—

संस्कृत—लज्जा, लज्जालु, लज्जिका, महाभीतिका, दंडमालिका, शमीपत्रा, स्पर्शलज्जा, ताम्रमूला, महौषधि इत्यादि। हिन्दी—लजालू, लाजवती, शर्मपेट, छुईमुई। गुजराती—लजालु, रिसामणि। मराठी—लजालू, लाजरी। बंगाल—लजक, लज्जावेत। नेपाल—लजानिया। पंजाब—लाजवंती। तामील—समंगाई। तेलगू—मुनुगुदामरमु, पेड़ निद्रकांति। उर्दू—लजालू। इंग्लिश—Sensetive Plant। लेटिन—Mimosa Pudica (मिमोसा पुडिका)।

वर्णन—छुईमुई के छोटे-छोटे क्षुप लता के समान होते हैं। इसके पत्ते खैर के समान बारीक बारीक होते हैं। इसके फूल गुलाबी, नीले तथा मिश्रित रङ्ग के होते हैं। इसकी जड़ लाल होती है। इस पौधे को

स्पर्श करने से यह सिकुड़ जाता है। यह दो प्रकार की होती है एक कांटेवाली और एक बिना कांटेवाली। एक मनुष्य का हाथ लगते ही मुरझा जाती है और दूसरी उसकी छाँह पड़ने से मुरझा जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से लजालू की जड़ कड़वी, कसैली, शीतल, घाव को अच्छा करनेवाली, विषनाशक और कफ-पित्त, कुष्ठ, अतिसार और योनि रोगों को दूर करनेवाली होती है।

लजालू चरपरी, शीतल, पित्तातिसार नाशक तथा सूजन, दाह, श्रम, श्वास, घाव, कोढ़, कफ और रक्तविकार को दूर करनेवाली होती है।

विपरीत लजालू अर्थात् वृहद्‌ला चरपरी, गरम, कफनाशक, पारे को बाँधनेवाली और अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलानेवाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ धातुपरिवर्तक, फोड़े को भरनेवाली और रक्तदोष तथा पित्तदोष से होनेवाली बीमारियों में लाभदायक होती है। पित्त ज्वर, बवासीर, पीलिया, कुष्ठ, व्रण और चेचक में भी यह उपयोगी होती है।

लजालू के अन्दर रक्तसंग्राहक धर्म बहुत उत्तम होता है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। रक्त और पित्त प्रधान रोगों में इसका बहुत उपयोग होता है। रक्तातिसार के अन्दर इसकी जड़ों का काढ़ा देने से लाभ होता है। शरीर की विनिमय क्रिया के बिगड़ने से अगर पेशाब के साथ सिकता जाने लगे अथवा शरीर के अन्दर सिकता (रेती) जम जाय तो इसकी जड़ का काढ़ा देने से लाभ होता है। बवासीर में इसके पत्तों को दूध के साथ देते हैं।

मलाबार में इसका काढा मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्ररेणु की शिकायतों में उपयोगी माना जाता है। बवासीर और भगंदर में इसके पत्ते और इसकी जड़ का चूर्ण थोड़े दूध के साथ मिलाकर दिये जाते हैं।

कोकण में इसके पत्तों को कुचलकर अंडकोष की सूजन पर लेप करने के काम में लेते हैं और इसके पत्तों का रस समान भाग घोड़े के पेशाब में मिलाकर आँख के अंदर आनेवाली झिल्ली को दूर करने के लिये अंजन किया जाता है। इसके पत्तों के रस में रुई को भिंगोकर उसको हर प्रकार के नासूर की ड्रेसिंग करने के काम में लिया जा सकता है।

गोल्डकास्ट में इसके पत्ते नारू की बीमारी को दूर करने के काम में लिये जाते हैं।

मेडागास्कर में इसका पौधा मूत्रल, संकोचक और आक्षेप निवारक माना जाता है। बच्चों के आक्षेप रोग को दूर करने के लिये इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

गायना में इसके पत्ते एक प्रभावशाली पसीना लानेवाली वस्तु की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इनका हलका निर्यास कटु पौष्टिक पदार्थ की तरह दिया जाता है। इसके बीज और इसकी जड़ एक वमन कारक पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। बड़ी मात्रा में ये विषैले और जलन करनेवाले माने जाते हैं।

फ्रांस में इसकी जड़ वमनकारक मानी जाती है और इसके पत्ते कंठमाला में दिये जाते हैं।

कम्बोडिया में इसका सार पैसा अन्तरंग उपचार में पथरी को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसका बाहरी उपयोग गठिया, पुट्ठों की गठिया, सूजन और गर्भाशय के फोड़े को दूर करने के लिये किया जाता है।

रत्नाकर के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी डालियाँ सर्प विष की चिकित्सा में दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर काम में ली जाती हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प विष में बिल्कुल निरुपयोगी है।

उपयोग:—

पथरी—लज्जालू की जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से पथरी गल जाती है।

बवासीर—इसके पत्तों का तोला भर चूर्ण दूध में मिलाकर पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

नासूर—इसकी जड़ को घिसकर लेप करने से नासूर मिटता है।

[illegible]—इस वनस्पति का प्रयोग करने से पहले सप्ताह में सब प्रकार के ज्वर और पित्त के विकार मिटते हैं। दूसरे सप्ताह में बवासीर, कामला इत्यादि रोग मिटते हैं और तीसरे सप्ताह में कोढ़, उपदंश और फोड़े इत्यादि रोग मिटते हैं।

मूत्रातिसार—इसके पत्तों का लेप करने से मूत्रातिसार मिटता है।

खाँसी—इसकी जड़ को गले में बाँधने से खाँसी मिटती है।

गंडमाला—लज्जालू के रस को नियमपूर्वक पिलाने से गंडमाला मिटती है।

स्तनों का ढीलापन—लज्जालू और असगंध की जड़ को पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तनों का ढीलापन मिटकर वे गोल और कठोर हो जाते हैं।

लजालू (२)

नाम:—

संस्कृत—लज्जालुका, पीतपुष्पा, पीतिका, स्वल्पपुष्पा इत्यादि। हिन्दी—लजालू, झरेर। गुजराती—रिसामणी, झरेर। बंगाल—झलाई। मराठी—झरेर, लाजरी, लहानलाजाळू। लेटिन—Biophytum senvitivum (बायोफायटम सेंसिटिवम)।

वर्णन—यह लाजवन्ती की एक दूसरी जाति होती है। इसके पौधे बहुत छोटे और पतले होते हैं। इसके पत्ते ठीक आंवले के पत्तों के समान होते हैं। इनको छूने से ये कुम्हला जाते हैं। इसमें छोटे-छोटे पीले रङ्ग के फूल और छोटे-छोटे गोल-गोल फल लगते हैं। इसके बीज काले रङ्ग के और बहुत महीन होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के गरम प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभावः—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते कड़वे, मूत्रल और मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाले होते हैं।

इसके पत्तों को पानी के साथ पीसकर देने से ये अपना मूत्रल प्रभाव दिखलाते हैं। पित्त ज्वर के अन्दर प्यास को दूर करने के लिये भी इनका उपयोग होता है। इसके बीजों का चूर्ण जखम के ऊपर लगाने से फायदा होता है। इसको मक्खन के साथ फोड़े पर लगाने से यह फोड़े को पका देता है। इसकी जड़ के काढ़े को पिलाने से सुजाक और पथरी में लाभ होता है।

फिलिपाइन में इसके पत्तों का काढ़ा एक कफनिःसारक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है और इसके कुचले हुए पत्तों का लेप जखम और रगड़ पर किया जाता है।

जावा में इसके पत्तों का काढ़ा, दमा, क्षय और सर्प विष की शांति के लिये उपयोग में लिया जाता है।

लटकन

नामः—

संस्कृत—सिंदूरपुष्पी, सिंदूरी, तृणपुष्पी, सुकोमला, रक्तबीजा, रक्तपुष्पी, करच्छदा, इत्यादि। हिन्दी—लटकन, सिंदूरिया, जाफ़र। मराठी—शेंदरी। बंगाल—लटकन, वटकन। बम्बई—जाफर, केसरी, केसूरी, सेंद्री। गुजराती—सिंदूरी। तामील—कुरुगूमंजल, मंजिट्टी। तेलगू—जाबुरा। अंग्रेजी—Annato लेटिन—Bixa Orellana (बिक्सा ओरेलेना)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। यह प्रायः हिन्दुस्तान के बगीचों में लगाया जाता है। इसके पत्ते बेल के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल लाल लाल सिंदूर के समान लगते हैं। इसके फल धतूरे के फलों के समान होते हैं। हर एक फल में ४ फांकें रहती हैं। इनमें बहुत से बीज रहते हैं। इन बीजों को जल में डालने से जल लाल हो जाता है। इस वनस्पति से लाल रङ्ग भी प्राप्त किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सिंदूरपुष्पी का पौधा कड़वा, चरपरा, शीतल, हलका, कसैला तथा रक्तविकार, वातरक्त, तृषा, विषदोष, पित्त, वातपित्त, वमन, कफ, मस्तकशूल और भूतबाधा को दूर करनेवाला होता है।

इसके फलों में रहनेवाला केसरिया रङ्ग विषैला नहीं होता। इसके फल का गूदा संकोचक और बड़ी मात्रा में कुछ स्रंसन होता है। इसके बीज और जड़ रुचिकारक, ज्वर नाशक, और संकोचक होते हैं।

इसकी जड़ की छाल मलेरिया ज्वर और दूसरे ज्वरों को दूर करने वाली होती है। इसका पार्यायिक ज्वर, मलेरिया ज्वर और अविराम ज्वर में बहुत उपयोग होता है।

इसके बीज हृदय के लिये पौष्टिक, संकोचक और ज्वरनाशक होते हैं। सुजाक के लिये ये एक उत्तम औषधि हैं। इनमें पार्यायिक ज्वरनाशक और ज्वरनाशक तत्व रहते हैं। मगर ये तत्व इस वनस्पति की जड़ की छाल की अपेक्षा इन बीजों में कम रहते हैं।

यह वनस्पति संकोचक और अधिक मात्रा में कुछ हलकी विरेचक होती है। रक्तातिसार और गुर्दे की बीमारियों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसके बीजों में रहनेवाले रङ्गदार तत्व को पानी में घोलकर सारे शरीर पर लगाने से मच्छर काटने का डर नहीं रहता।

फ्रेंचगायना में इसके पत्ते मृदुविरेचक और शोधक समझे जाते हैं। इनका निर्यास अतिसार के अन्दर विरेचक वस्तु की तरह दिया जाता है।

वापट के मतानुसार इसकी जड़ दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर सर्प-विष को दूर करने के लिये पिलाने के काम में ली जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प-विष में निरुपयोगी होती है।

लतमी

नामः—

वंगाल—लतमी, अमूर। वरमा—पिटनी। लेटिन Amoora Cucullata (एमूरा क्यू क्यूलेटा)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते १२ से लेकर १५ इञ्च तक लंबे होते हैं। यह वनस्पति बङ्गाल के जंगलों में और बरमा में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों को कुचलकर लेप करने से सूजन कम हो जाती है।

लकड़ी का कोयला

नामः—

हिन्दी—लकड़ी का कोयला। लेटिन—Carbo Ligni (कारबोलिगनी)।

वर्णन—लकड़ी का कोयला लकड़ी को जलाकर तयार किया जाता है। यह सब दूर जलाने के काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार लकड़ी का कोयला अजीर्ण, मंदाग्नि, अतिसार, प्रवाहिका और मोतीजरे (Typhoid Fever) में उपयोग में लिया जाता है।

लटमहूरिया (लट्टूर)

नामः—

संस्कृत—कुणंजर, कुणंजी, कुणंज, अरण्य वास्तुक, दुर्भिक्ष वल्लभ, मंजरी इत्यादि। हिन्दी—लटमहूरिया, लेसुवा लट्टूर। मराठी—गीतना। गुजराती—कणेझरो। बंगाल—गुंगेटिया, लुटमुहुरिया। पंजाब—लेसवा, सरतारा, टंडाला। संथाल—कड़ी गन्धारी। बम्बई—गेटन। तेलगू—चंचलीकुरा। लेटिन—Digera Arvensis (डिगेरा अरवेन्सिस)।

वर्णन—यह एक प्रकार की घास होती है। इसके क्षुप १ से लेकर दो हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते चौलाई के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल की मंजरी लम्बी और गुलाबी होती है। इसके फल बदाम के समान और छोटे-छोटे होते हैं। यह वनस्पति बरसात के दिनों में बहुत अधिक मात्रा में पैदा होती है। इसका घास भैंस को खिलाया जाता है। जिससे भैंस का दूध बढ़ता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से लट्टूर त्रिदोषनाशक, मधुर, रुचिकारक, दीपन, संकोचन, पित्त श्लेष्म नाशक और हलका होता है। यह छोटी मात्रा में आँतों का संकोचन करता है लेकिन बड़ी मात्रा में यह मृदुविरेचक होता है। इसके फूल और बीज अनैच्छिक वीर्यस्राव अथवा प्रमेह में उपयोगी होते हैं।

इसके पत्तों का गरीब लोग शाग बनाते हैं। इन पत्तों को पीसकर फोड़े फुन्सियों पर बाँधने से लाभ होता है। इसके बीज प्रमेह के अन्दर उपयोगी होते हैं।

लतामेंहदी

नामः—

लखीमपुर—लता मेंहदी। बंगाल-नानमन्तूर। नेपाल-हलगेंरी। लेटिन—Croton Caudatus (क्रोटन कोडेटस)।

गुण दोष और प्रभाव—

अतिसार के अन्दर यह वनस्पति लाभ पहुँचाती है। इसमें प्रायः वे ही तत्व होते हैं जो इपेकिकोना में पाये जाते हैं।

लहसन

नामः—

संस्कृत—लशुन, महाकन्द, अरिष्ट, रसान, म्लेच्छकन्द, महौषध, दीर्घपत्र, उग्रगन्ध, राहुच्छिष्ठ, इत्यादि। हिन्दी—लहसन, लसन। गुजराती—लसन। बंगाल—लशन, रसून। बाम्बे—लुसून। मराठी—लसून। तामील—वेलाईपुंडु। तेलगू—तेल्लगड्डू। उर्दू—लहसुन। अरबी—सौम, तौम। फ़ारसी—सीर। इंग्लिश—Garlic (गारलिक)। लेटिन—Allium Sativum (एलियम सेटिवम)।

वर्णन—लहसन एक मशहूर वस्तु है जो हिन्दुस्तान में शाग-तरकारी के साथ मसाले के रूप में खाने के काम में ली जाती है। इसकी खेती सारे भारतवर्ष में की जाती है। इसका पौधा प्याज के पौधे की तरह होता है। इसकी गठान जमीन के अन्दर प्याज की गठान की तरह ही लगती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से लहसुन ५ रसों से युक्त होता है। सिर्फ अम्लरस इसमें नहीं पाया जाता। इसकी जड़ में चरपरा रस, पत्तों में कड़वा रस, नाल में कसेला रस, नाल के अगले भाग में लवण रस और बीजों में मधुर रस रहता है।

लहसन पौष्टिक, कामोद्दीपक, स्निग्ध, ऊष्ण, पाचक, सारक, रस और पाक में चरपरी, तीक्ष्ण, मधुर, टूटी हड्डी को जोड़नेवाली, कण्ठ को सुधारनेवाली, भारी, रक्तपित्त को बढ़ानेवाली, बलकारक, कांतिवर्द्धक, मस्तिष्क को शांति देनेवाली, नेत्रों को हितकारी और रसायन होती है। यह हृदय रोग, जीर्णज्वर, कुक्षीशूल, कब्जियत, वायुगोला, अरुचि, खांसी, सूजन, बवासीर, कोढ़, मन्दाग्नि, कृमि, वात, श्वास और कफ को हरनेवाली होती है।

लहसन शरीर की सब प्रकार की वात की पीड़ा को नष्ट करती है। यह सारक, कामोद्दीपक, स्निग्ध, भारी, अरुचि को दूर करनेवाली, खांसी को हरनेवाली, ज्वर को नष्ट करनेवाली तथा कफ, श्वास और गुल्म का विनाश करनेवाली, केशों को हितकारी, कृमिनाशक और प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ और सूजन को कम करनेवाली, गरम, टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाली, रक्त पित्त को कुपित करनेवाली, शूल को शान्त करनेवाली और बुढ़ापे की व्याधियों को दूर करनेवाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका कन्द चरपरा, मूत्रल, पेट के आफरे को दूर करनेवाला और कामोद्दीपक होता है। यह सूजन, पक्षाघात, जोड़ों का दर्द तथा तिल्ली, यकृत और फेफड़े के रोगों में लाभ

पहुँचाती है। यह स्वर को शुद्ध करती है और जीर्ण ज्वर, कटिवात, प्यास, दांतों की सड़न और धवल रोग में लाभ पहुँचाती है और रक्त को पतला करती है।

लहसन गरम, लघु, दीपन, वायुनाशक, कृमिनाशक, उत्तेजक, कफनाशक, मूत्रल, वातनाशक और कामोद्दीपक होता है। इसके अन्दर रहनेवाला उड़नशील तेल त्वचा, मूत्रपिण्ड और फुफ्फुस के द्वारा बाहर निकलता है। इसको लेने से श्वासनलिका के अन्दर कफ ढीला होता है और बाहर निकल जाता है। इससे कफ की दुर्गन्ध कम होती है और कफ के अन्दर रहनेवाले रोग जन्तुओं का नाश होता है। मज्जा-तंतुओं के ऊपर लहसन की जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है। बड़ी मात्रा में लहसन को देने से उल्टी और दस्त होते हैं।

लहसन और वातरोग—सब प्रकार के वातविकारों में लहसन का अन्तरङ्ग और बाह्य दोनों प्रकार का उपयोग होता है। गृध्रसी, अर्दित, पक्षाघात, उरुस्तम्भ, इत्यादि रोगों में लहसन और वायविडंग को समान भाग लेकर आधे दूध और आधे पानी में औटाते हैं। जब पानी का भाग जलकर दूध मात्र रह जाता है। तब उस दूध को छानकर पिलाते हैं। इस काढ़े से मज्जातंतुओं की शक्ति सुरक्षित रहती है और स्नायुओं की शक्ति बढ़ती है। सब प्रकार के वातरोगों में यह प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है।

वमन, अजीर्ण, सफेद दस्त और कृमि रोग में लहसन का बहुत उपयोग होता है। गुल्म और उदावर्त में भी इसका प्रयोग लाभ पहुँचाता है। जीर्ण आमवात और संधियों की सूजन में इसको पेट में देने से और इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है। लेकिन इस लेप को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये। क्योंकि इससे छाला उठने का भय रहता है।

प्राचीन कफ रोगों में और राजयक्ष्मा रोग में फुफ्फुस के अन्दर क्षत पड़ने पर लहसन और वायविडंग का काढ़ा पिलाने से और लहसन को पीसकर छाती पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। राजयक्ष्मा रोग में लहसन और वायविडंग का यह मिश्रण बहुत गुणकारी होता है। बच्चों की सूखी खांसी भी इस मिश्रण से नष्ट हो जाती है।

हृदय रोग के अन्दर लहसन को देने से पेट का फूलना कम होकर हृदय का दबाव हलका हो जाता है। हृदय को बल मिलता है व पेशाब होता है।

व्रण शोथ, विद्रधि, फोड़े फुंसी, इत्यादि रोगों में लहसन का लेप प्रारम्भ से ही करने पर रोग नहीं बढ़ता मगर पीब पैदा होने के पश्चात् इसका लेप उपयोगी नहीं होता है। कर्णशूल में लहसन को तेल में औटाकर उस तेल को टपकाने से लाभ होता है। विषम ज्वर में लहसन को देने से थकावट पैदा नहीं होती।

क्षयरोग और लहसन—

आधुनिक खोजों के अन्दर लहसन महाभयंकर और असाध्य क्षय रोग के ऊपर बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध डॉक्टर एम० डब्ल्यू० मेकडाफ का कथन है कि क्षयरोग के

सम्बन्ध की जो खोज और जानकारी गत दो वर्षों में हमने प्राप्त की है। उसमें १०८२ क्षय के रोगियों के ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार के ५६ जाति के प्रयोग अजमाकर उनके परिणामों का सूक्ष्म अध्ययन करके उनका बाकायदा रेकार्ड रक्खा गया है। इस रेकार्ड से मालूम होता है कि इन ५६ जातियों के प्रयोगों में क्षय के कीटाणुओं और उनकी वजह से होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों पर विश्वसनीय रूप से असर करनेवाली सिर्फ दो ही औषधियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक औषधि वनस्पति वर्ग की लहसन है और दूसरी खनिज वर्ग की पारा है।

लहसन में अलीलसल्फाइड नामक एक जाति का उड़नशील तेल रहता है और यही तेल लहसन में रहनेवाले सब प्रकार के व्याधि नाशक गुणों का जनक है। यह तेल प्रबल जन्तु नाशक होता है और क्षय के जन्तुओं की वृद्धि को रोकने का इसमें अद्‌भुत गुण रहता है। शरीर के अन्दर जाकर यह तेल ऑक्सि-जन वायु में मिलकर सलफ्यूरिकएसिड नामक अम्ल तत्व को पैदा करता है और फफ्फुस, त्वचा, मूत्रपिण्ड और यकृत के द्वारा इन सब अंगों की विनिमय क्रिया को सुधारता हुआ यह शरीर के बाहर निकलता है। शरीर के किसी भाग के ऊपर इस तेल की मालिश करने से यह शरीर में बहुत जल्दी गहराई के साथ प्रवेश कर जाता है। हमारे अनुभव में लहसन ने क्षय रोग के ऊपर उत्तम परिणाम बतलाये हैं। क्षय के कीटाणु फिर चाहे वे त्वचा, हड्डी, फुफ्फुस, ग्रंथियाँ तथा शरीर के और किसी भाग में घर करके बैठे हों लहसन के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं और इन कीटाणुओं की वजह से पैदा होनेवाले सब प्रकार के रोगों में भी इससे लाभ पहुँचता है।

डॉक्टर मिंचीन लिखते हैं कि एक जवान मनुष्य जिसके कि सारे पैर और पैर के पंजे की हड्डी में क्षय रोग लगा हुआ था वह मेरे पास सलाह लेने के लिये आया। उस रोगी को देखकर मैंने उसे पैर कटवाने की सलाह दी। परन्तु उस रोगी ने ऐसा करने से इन्कार किया। छः महीने के पश्चात् वही रोगी मुझे बिल-कुल तन्दुरुस्त हालत में मिला। मैंने आश्चर्य चकित होकर उससे सब हाल पूछा। उसने बतलाया कि लहसन, नमक और मेंश इन तीनों चीजों को समान भाग लेकर इनको पीसकर इनका लेप करने से ही मैं अच्छा हुआ हूँ। यह देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और उसी समय से मुझे लहसन के गुणों की जानकारी हुई। उसके पश्चात् स्वयं अनुभव लेने के लिये मैंने अनेक रोगियों पर इसे अजमाया और इसमें मुझे आश्चर्यजनक सफलता मिली। लहसन में अलीलसलफाइड नामक जो तत्व रहता है वह इसके रस में ३ प्रतिशत से भी अधिक पाया जाता है। यही तत्व क्षय के जंतुओं को नष्ट करके शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से क्षय रोग को नष्ट करता है।

अलिलसलफाइड कितनी चमत्कार पूर्ण रीति से मनुष्य के सारे शरीर में फैल जाता है इसका अनुभव लेना हो तो इसकी २।४ कलियों को पीसकर उनकी लुग्दी किसी के पैर की पगतली में बाँध देना चाहिये। १५–२० मिनिट के पश्चात् ही उस मनुष्य की श्वास को सूँघने से मालूम होगा कि उसकी श्वास में लहसन की गन्ध आने लगी है। इससे मालूम होता है कि लहसन में रहनेवाला एलीलसलफाइड नामक तत्व अति शीघ्रतापूर्वक पगतली की त्वचा के परदों में घुसकर रस और रक्तवाहिनी नसों के द्वारा सारे शरीर में फैलकर अन्त में फेफड़ों में होता हुआ श्वास मार्ग के द्वारा बाहर निकलता है। इस प्रकार यह तत्व

रस और रक्त के द्वारा फुफ्फुस, त्वचा, स्नायु जाल, यकृत, मूत्रपिण्ड, हड्डियाँ वगैरह शरीर के प्रत्येक छोटे बड़े मार्गों में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये अगर इसका उपयोग नियमित रूप से जारी रक्खा जावे तो शरीर के किसी भी भाग में रहनेवाले ट्यूबरक्यूल वेसिली नामक क्षय के कीटाणुओं को नष्ट करके सब प्रकार के क्षय के उपद्रवों को शान्त करता है।

क्षय के जन्तुओं की वजह से होनेवाली हर प्रकार की व्याधियों को अर्थात् फेफड़े के क्षय से लेकर चमड़ी की सड़ान के समान विकट रोग भी सिर्फ लहसन के उपयोग से अच्छा करने के दृष्टान्त उपरोक्त डॉक्टर अपने अनुभव से बतलाते हैं। वे और एक दस वर्ष के बच्चे का उदाहरण बतलाते हैं। इस बच्चे के हाथ की हड्डी में क्षय का रोग लग गया था। जिससे उसके हाथ की एक उँगली भी काट डाली गई थी। फिर भी उसकी हथेली में तीन गहरे नासूर पड़े हुए थे जिनसे हमेशा पीव बहता रहता था। इस रोग के ऊपर जब दूसरे सब उपाय असफल हो गये तब लहसन की कुछ कलियों को बारीक पीसकर उनको चर्बी में मिलाकर २४ घंटे में एक बार उस सड़े हुए हाथ के ऊपर बाँधी जाती थी। चर्बी मिलाने का कारण लहसन के दाहक असर को कम करना था। इस प्रकार चर्बी मिला देने पर भी प्रारम्भ में उस बच्चे को बहुत जलन सहन करना पड़ी। लेकिन उसको बहुत शीघ्र फायदा दिखाई देने लगा और सब मिलाकर करीब डेढ़ महीने में उसका हाथ बिलकुल अच्छा हो गया।

यूरोप में सन् १९१४ में जो भीषण युद्ध चला उसमें भी इस सम्बन्ध के कुछ अनुभव एक जार्मी सर्जन को हुए। उनका कहना है कि लहसन के रस में थोड़ा गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी मिलाकर उस पानी को चाहे जैसे जेर लगे हुए घाव पर लगाने से अथवा उस पानी से उस घाव को धोने से अथवा उस पानी में कपड़े को तर करके उस घाव पर बाँधने से सड़ान उत्पन्न करनेवाले जेपी कीटाणुओं का नाश होकर बहुत जल्दी घाव भर जाता है। चाहे जितने बड़े और हठीले घाव पर भी लहसन का रस और पानी मंत्रशक्ति की तरह लाभ पहुँचाता है। उपरोक्त जार्मी सर्जन ने यूरोप के सारे रणक्षेत्र में अपने इस अनुभव का प्रचार कर दिया था। उसने स्वीकार किया था कि यह आविष्कार मेरा स्वयं का नहीं बल्कि एक फ्रेंच किसन की स्त्री का है। जो कि युद्ध क्षेत्र के अन्दर घायलों के घावों को आश्चर्यजनक रीति से दुरुस्त करती हुई मेरे दृष्टिगोचर हुई थी। उसके पश्चात् मैंने भी अनेक रोगियों पर इसका अनुभव किया और पूर्ण विश्वास होने के पश्चात् ही मैं इस योग को दुनियाँ के लाभ के लिये प्रकाशित कर रहा हूँ।

लहसन में सेंधानिमक अथवा शक्कर समान भाग मिलाकर उसको बारीक खरल करके अवलेह के समान बना लेना चाहिये। इस अवलेह में से ६ माशा अवलेह, ६ माशे जमे हुए घी के साथ मिलाकर दिन में ३ बार सवेरे, दुपहर और शाम को चाटने से पहली स्टेज का क्षय, मंदाग्नि, अजीर्ण, आफरा, उदर शूल, खाँसी, इन्फ्लूएंझा, नासूर, संधिवात, चोर्मेचलना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। अगर इसका टिंक्चर बनाना हो तो लहसन को पीसकर तीन-चार गुने रेक्टिफाइड स्पिरिट में डालकर तीन दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये उसके पश्चात् उस स्पिरिट को छानकर स्टॉपर्ड बोतल में भर लेना चाहिये। इस टिंक्चर की मात्रा २ ड्राम तक की होती है।

इंडियन एण्ड ईस्टर्न ड्रगिस्ट नामक पत्र के मई १९२२ के अंक में लहसन के ऊपर एक नोट प्रकाशित हुआ था वह इस प्रकार है।

"लहसन उत्तेजक और चर्मदाहक होता है। एक शांतिदायक और पाकस्थली को उत्तेजित करनेवाले द्रव्य की तरह लहसन पाचनक्रिया को सहायता करता है और अन्न को रस-बनाने में मदद करता है और कोष्ट वायु को नष्ट करता है। एक कफ निस्सारक द्रव्य की तरह यह वायुनलियों पर और फुफ्फुस सम्बन्धी ग्रंथि रस पर अपना विशेष प्रभाव डालता है। जिससे यह ऐसे केसों में जिसमें वायु प्रणाली फैली हुई रहती है और दुर्गन्धयुक्त कफ गिरता रहता है यह उपयोगी होता है। फेफड़े के क्षय में इसका उपयोग करने से यह कफ गिरने को कम करता है। रात्रि के पसीने को रोकता है। भूख को बढ़ाता है और नींद को सुखपूर्वक लाता है।"

"एक ऋतुस्राव नियामक पदार्थ की तरह यह मासिकधर्म के प्रभाव को बढ़ाता है। शक्ति देता है, त्वचा और गुर्दे को उत्तेजना देता है और शांतिप्रदान करता है। यह मूत्र की तादाद को बढ़ाता है इसलिये इसका उपयोग जलोदर में भी होता है। हिस्टीरिया रोग में मूर्च्छित लड़कियों की नाक में इसको सूँघाने से उनकी मूर्च्छा भंग हो जाती है। इसको नमक के साथ देने से यह कॉलिक उदरशूल और स्नायविक मस्तकशूल को दूर करता है। छाती के ऊपर पुल्टिस की तरह इसका लेप किया जाता है। इसी प्रकार बच्चों के आक्षेप रोग में उनकी पीठ की रीढ़ पर इसका उपयोग किया जाता है। पेट और हृदय के बीच में इसका लेप करने से यह पाकस्थली की खराबी से पैदा हुए जुकाम को दूर करता है। पेट के कृमियों को नष्ट करता है। बीमारी के कीटाणुओं को दूर करता है। क्षय के जंतुओं को नष्ट करता है। ज्वर को शमन करता है। पीड़ा को दूर करता है। सूजन को बिखेरता है। चमड़े को जला देता है और आर्द्रता को शोषण कर लेता है।"

इसकी गठानों को तेल में भूँजकर उस तेल की मालिश करने से जोड़ों का दर्द और जोड़ों की सूजन दूर होती है। इस तेल को कान में टपकाने से कर्णशूल दूर होता है।

लहसन के चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोग और शरीर पर होनेवाली इसकी सूक्ष्म क्रियाओं का ज्ञान भारतीय आयुर्वेद शास्त्रियों को बहुत प्राचीनकाल से था। आज का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी उनके उस ज्ञान का समर्थन करता है। भारतवर्ष में लहसन का एक रोग कीटाणु नाशक द्रव्य की तरह प्रचुर मात्रा में उपयोग होता आया है और यह बात भी हाल ही में जानकारी के अन्दर आई है कि जो लोग नियमपूर्वक लहसन का भोजन की तरह सेवन करते हैं वे इन्फ्ल्यूएँझा और बेरीबेरी के समान भयंकर रोगों से बचे हुए रहते हैं। ऐसे लोगों में भी अगर इस प्रकार के रोगों का कभी कभी आक्रमण होता हुआ दिखाई देता है तो इसका मूलकारण उनकी रहने की गंदी आदतें और उनके आस-पास के दूषित वातावरण की गंदगी ही होती है।

प्रसूतिकाल के समय प्रसूता स्त्रियों को लहसन देने का आमरिवाज है और उससे बहुत लाभ भी होता है। डिप्थीरिया अथवा रोहिणी रोग के संदिग्ध केसों में और कुछ छूत की बीमारियों में भी जो कि एक रोगी से दूसरे रोगी को लगती है इसका उपयोग करने से लाभ होता है। हाल की आधुनिक शोधों में

यह भी मालूम हुआ है कि ट्यूबर क्यूलोसिस अथवा क्षय की चिकित्सा में भी यह एक प्रभावशाली औषधि है। मतलब यह कि इस वनस्पति के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हुई है उससे मालूम होता है कि लहसन का बिना फिल्टर किया हुआ ताजा रस एक बहुत उत्तम वस्तु है और हर बीमारी में इसका इसी प्रकार उपयोग करना चाहिये। एलकोहल के अन्दर इसके तेल को मिलाकर अगर उसका इंजेक्शन दिया जाय तो वह लाभ के बजाय हानिकारक प्रतिक्रिया करता है। इसलिये इस रूप में इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

लहसन और वाजिकरण—

कामोद्दीपन के लिये भी लहसन एक बहुमूल्य वस्तु है। बुढ़ापे के प्रारम्भ में जब मनुष्य की काम शक्ति जीर्ण होने लगती हैं तब अगर लहसन की कलियों को घी में तल कर उनका नियम पूर्वक सेवन किया जाय तो मनुष्य की कामशक्ति हमेशा स्थिर और उत्तेजित रहती है। कहा जाता है कि मारवाड़ के अन्दर एक वैद्यने एक ७५ वर्ष के वृद्ध सेठ का एक षोड़शी से दूसरा विवाह करवा दिया और उस वृद्ध को एक छटाँक लहसन की कलियाँ प्रतिदिन घी में तलकर खिलाना प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप दो वर्ष में उस षोड़शी को उस ७५ वर्ष के वृद्ध से एक लड़का पैदा हुआ और यह एक विशेष ताज्जुब की बात थी कि जब वह लड़का बड़ा हुआ तो उसके पसीने में लहसन की गंध आती थी।

मतलब यह कि लहसन में क्षय कीटाणु नाशक, कफ निस्सारक, वाजिकरण, उत्तेजक और वात तथा वेदनानाशक इतने धर्म प्रधान रूप से रहते हैं। इसका हरएक धर्म बहुत जोरदार और प्रभावशाली होता है।

उपयोगः—

विद्रधि—लहसन को पीसकर उसको हेसलीन में मिलाकर लेप करने से विद्रधि मिटती है।

वातरोग—लहसन की लुग्दी और उससे सिद्ध किये हुए तेल का, सेवन करने से और उसकी मालिश करने से वात के समस्त रोग मिटते हैं। विषम ज्वर और अर्दित में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

आमवात—लहसन के एक तोला रस में गाय का एक तोला घी मिलाकर पीने से आमवात मिटती है।

बिच्छू का विष—लहसन और अमचूर को पीसकर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

पागल कुत्ते का विष—लहसन को सिरके में पीस कर काटी हुई जगह पर लगाने से और लहसन का सेवन करने से पागल कुत्ते का विष उतरता है।

लकवा—लहसन का पाक बनाकर खाने से लकवे में लाभ होता है।

गठिया—लहसन के तेल की मालिश करने से गठिया और त्वचा की शून्यता मिटती है।

आधाशीशी—लहसन की कली को पीसकर कनपटी पर लगाने से आधाशीशी और दूसरे प्रकार के मस्तक रोग मिटते हैं।

त्वचा के रोग—राई के तेल में लहसन की कलियों को तलकर उस तेल का मर्दन करने से खुजली और दूसरे प्रकार के चर्मरोग मिटते हैं।

दमा—लहसन के रस को गरम जल के साथ लेने से दमे में लाभ होता है।

हूपिंग कफ—बच्चों को इसकी छिली हुई कलियों की माला पहनाने से और बच्चे की छाती पर इसके तेल की मालिश करने से हूपिंग कफ़ और दूसरी खाँसी में लाभ होता है।

कान का बहिरापन—लहसन की दो कलियों को सवा तोले तिल्ली के तेल में तलकर उसकी एक दो बूँद कान में टपकाने से कुछ दिनों में कान का बहिरापन मिट जाता है।

चोट और मरोड़—लहसन की कली को नमक के साथ पीसकर उसका पुल्टिस बाँधने से चोट और मरोड़ में लाभ होता है। इसकी पुल्टिस बाँधने से गठिया में भी लाभ होता है।

फोड़े—जिन फोड़ों में कीड़े पड़ जाते हैं उनपर लहसन लगाने से वे अच्छे हो जाते हैं।

गले के रोग—लहसन को सिरके में भिगोकर खाने से दुखते हुए गले की ढीली पड़ी हुई रगों का संकोचन होता है और शब्दवाहिनी नाड़ियों का ढीलापन मिट जाता है।

ज्वर—लहसन का प्रयोग करने से बार बार आनेवाला ज्वर छूट जाता है। शीत ज्वर के शीत को मिटाने के लिये इसके तेल की मात्रा दी जाती है।

लहसन का वाह्य-प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि यह एक बहुत तीव्र जलन करने वाली और चर्मदाहक वस्तु होती है। इसके लेप को अधिक समय तक रखने से शरीर पर छाला उठ जाता है और काफी वेदना होती है इसलिये कोमल स्वभाव के लोगों पर इसका लेप करते समय सावधानी रखना चाहिये।

लहसन एककली

नामः—

संस्कृत—क्षुद्रलसुन। बंगाल—गंधुन। उर्दू—लहसुन। हिन्दी—एककली लहसन। गुजराती—एककलियो लसण। मराठी—एक कली लसूण। इंग्लिश—Shallot शेलोट। लेटिन—Allium Ascalonicum (एलियम एस्कोलोनिकम)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का लहसन होता है इसके कन्द में सिर्फ एक ही कली रहती है। इसका पौधा लहसन के समान ही होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक उत्तम कामोद्दीपक वस्तु होती है। इसको घी में भूनकर शहद में मिलाकर खाने से प्रबल कामोद्दीपन होता है।

कर्णरोगों में भी यह वनस्पति लाभदायक होती है। इसका एक छोटा सा टुकड़ा कान के अन्दर रखने से कर्णशूल आराम हो जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके कन्द को पीसकर ज्वर पीड़ित बच्चों के बदन पर मालिश करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस उपचार से बच्चे ज्वर से बच जाते हैं।

सर्प-दंश और दूसरे विषों का निवारण करने के लिये भी इसको उपयोग में लिया जाता है।

लहसन लाल

नामः—

संस्कृत—रक्त लशुन। हिन्दी—लाल लहसन। मराठी—रानटी लसूण, मसकत लसूण। गुजराती—रातोलसण। अरबी—थूम—एल—बरी। लेटिन—Allium Liphopetalum (एलियम लिफोपेटेलम)।

वर्णन—इसका पौधा लहसन के पौधे के ही समान होता है। अन्तर इतना ही होता है कि इसका कन्द लाल रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके गुणधर्म लहसन के गुणधर्म से मिलते जुलते होते हैं।

लक्ष्मणा

नामः—

संस्कृत—लक्ष्मणा, पुत्रदा, पुत्रकंदा, पुत्ररंजनी, पुत्रजननी, सुलिनि, नागिनि, नागपुत्री, पुच्छदा इत्यादि। हिन्दी—लक्ष्मणा, बनकलमी। बंगाल—बनकलमी। मराठी—आमटी, आमटीवेल। गुजराती—हनुमान वेल। कच्छ—रातीगुमड़ बेल। तेलगू—मेट्टातूती। अंगरेजी—Spotted Leaved Ipomaea (स्पाटेडलीव्हड़ इपोमिया)। लेटिन—Ipomaea Sepiaria (इपोमिया सेपिएरिया)।

वर्णन--लक्ष्मणा के सम्बन्ध में चिकित्सक समुदाय के अन्दर बहुत बड़ा मतभेद है। आयुर्वेद की इस सुप्रसिद्ध वनस्पति का आधुनिक वैद्य समाज को अभी तक वास्तविक पता नहीं चल सका है। इस वनस्पति के सम्बन्ध में लोग तरह तरह की अटकलें लगाते हैं। राजनिघंटु और धन्वन्तरी निघंटु के कर्ता ने सफेद फूलवाली कटेरी अथवा भोरींगणी के बीजों को लक्ष्मणा माना है। शालिग्राम निघटु के कर्ता लिखते हैं कि इस वनस्पति की जड़ में एक सफेद रंग का कंद निकलता है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चन्दन के समान बिन्दु लगे हुए रहते हैं। यह वनस्पति पहाड़ों के दुर्गम स्थानों में कहीं २ पैदा होती है और बड़ी कठिनाई से हाथ आती है। बंगाल के कविराज हरलाल गुप्ता अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि लक्ष्मणा एक जाति का कंद होता है जो हिमालय के अत्यन्त दुर्गम प्रदेशों में पैदा होता है। ऐसा सुनने में आता है कि इसके पत्ते रात्रि में दीपक के समान चमकते हैं और सूर्योदय होते ही सब पत्ते गिर जाते हैं। रात्रि में वे सब पत्ते नये फूटते हैं। इसके कंद का आकार पुतली के समान होता है और उस पर लाल रङ्ग के छींटे पड़े हुए रहते हैं और इसमें बकरी के दूध के समान गंध आती है।

लेकिन गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री जयकृष्णइन्द्रजी और इंडियन मेडिसिनल प्लांटस के रचयिता लेफ्टनेंट कीर्तिकर और मेजर बसू ने हनुमानवेल अथवा बनकलमी (Ipomaea sepiaria) को ही लक्ष्मणा माना है और उसी मत को मानकर हम भी यहाँ इसी नाम के नीचे इस वनस्पति का वर्णन दे रहे हैं।

अभिनव निघंटु में इस वनस्पति की पहिचान लिखते हुए लिखा है कि:—

पुत्रकाकार रक्ताल्प विन्दुभिर्लौछिता सदा ॥
लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगंधा कृतिर्भवेत् ॥
कथिता पुत्रदाऽवश्चं लक्ष्मणामुनि पुंगवैः ॥

अर्थात्-लक्ष्मणा, पुत्र जननी और पुत्रिका ये इसके संस्कृत नाम होते हैं। इसकी आकृति और इसकी गंध बकरे के समान होती है और इसके पत्तों पर लालरङ्ग के खून के समान छींटे होते हैं।

बहुत से लोग सारसपक्षी की मादा को भी लक्ष्मणा कहते हैं। अस्तु हम जिस हनुमान वेल को लक्ष्मणा मानकर चले हैं उसके लक्षण इस प्रकार होते हैं।

यह एक जाति की बेल होती है जो प्रायः बारहों मास देखने में आती है। इसके पत्ते गिलोय के पत्तों की तरह होते हैं। पत्तों पर तथा उनकी बीच की नस के पास बैंगनी रङ्ग के छींटे और धारियाँ होती हैं। कोई कोई पत्ते तिकोने होते हैं और उन पर छींटे नहीं भी होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं और फल छोटे छोटे गोलाई लिये हुए अणीदार होते हैं। हर एक फल में ४ खण्ड और चार बीज होते हैं। जिनमें दो दो बीज एक सूक्ष्म और पतले तार से बँधे हुए रहते हैं। यह बेल काठियावाड़ में थूहर की बाड़ों पर बहुत अधिक तादाद में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेदिक मत—निघंटु में इस वनस्पति के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

लक्ष्मणा मधुरा शीता स्त्री वन्ध्यत्व विनाशिनी ॥
रसायनकरी बल्या त्रिदोषशमनी परा ॥

अर्थात्—लक्ष्मणाकन्द मधुर, शीतल, स्त्री के वंध्यत्व को हरनेवाला, रसायन, बलकारक और त्रिदोष को शांत करनेवाला होता है।

गुजरात में हनुमान वेल गर्भस्थान की शुद्धि के लिये उपयोग में ली जाती है और यह विश्वास किया जाता है कि यह वनस्पति गर्भस्थान के विकारों को मिटाकर उसको सन्तानोत्पत्ति के योग्य बना देती है।

इसके पत्तों को पीसकर देहाती लोग फोड़े फुन्सियों के ऊपर बाँधते हैं। इसका रस एक मूत्रल और वाघ नाशक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है।

संखिया के विष को नष्ट करने के लिये भी यह वनस्पति बहुत सफल और उपयोगी मानी जाती है।

इसकी एक सफेद फूलवाली जाति भी होती है और कई लोगों का विश्वास है कि वही वास्तविक लक्ष्मणा है।

लसोड़ा छोटा

नामः—

संस्कृत—श्लेश्मान्तकः, शेलु, उद्दाल, भूकर्बुदार, लघु श्लेष्मान्तक। हिन्दी—लिसोड़ा, बड़गूंदा। बंगाल—चाल्तागाछ, बहुबड़ा, बोहोदरी, बोहरी। बंबई—बड़गूंद, लेसुरी, गेंदुरी, मोकर। गुजराती—गूंदोमोटो, लेपिस्तां, बड़गूंदो। मराठी—बड़गूंद, मोकर। पंजाब—लेसवाड़ा। मारवाड़—बड़गूंदा, लिसोड़ा। उर्दू—लिसोड़ा, सपिस्तां। फ़ारसी—सपिस्तां। अंगरेजी—Sebesten Plum (सेवेस्टन प्लम)। लेटिन—Cordia Obliqua, C. Myxa (कोर्डिया ऑबलिका,कोर्डियामिक्सा)।

वर्णन—लिसोड़े के वृक्ष मध्यम कद के होते हैं। इसके पिंड की गोलाई ४ से लेकर ६ फुट तक की होती है। इसके फैली हुई और ऊँची बहुत सी शाखें होती हैं। इसकी छोटी शाखाएँ कुछ ललाई लिये हुए भूरे रङ्ग की होती है। इसकी छाल एक इञ्च मोटी, हलके भूरे रङ्ग की, खरदरी और कभी कभी कुछ काले रङ्ग की होती है। इसके छोटे पत्ते चिकने होते हैं जो पूरे बढ़ने पर थोड़े बहुत खर दरे हो जाते हैं। इसके फूल सफेद रंग के गुच्छों में लगते हैं और इसके फल झूमकों में लगते हैं। ये कच्ची हालत में हरे और पकने पर भूरे हो जाते हैं। इन फलों के भीतर बहुत लुआब भरा हुआ रहता है। फागुन और चैत में इसके फूल लगते हैं। वैशाख से आषाढ़ तक इसके फल पकते हैं। इस वृक्ष में एक प्रकार का गोंद भी लगता है। इसके मगज में से तेल निकाला जाता है जो सूँघने और लगाने के काम में आता है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद मत से लिसोड़ेका फल कुछ मीठा, कुछ शीतल, कृमिनाशक, कफनिस्सारक, संकोचक और फेफड़े की सब प्रकार की बीमारियों में बहुत उपयोगी होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल गर्मी और सरदी में मौतदिल होत है। यह निमोनिया और सन्निपात के अन्दर लाभदायक होता है। निमोनिया में इसको देने की विधि इस प्रकार है। ९ दाने सपिस्ता को लेकर आधा पाव पानी में जोश दें। जब तिहाई पानी शेष रह जाय तब उसको छानकर ३ तोले गरम घी और ३ तोले मिसरी मिलाकर उँगली से हिलाकर पी लें।

सपिस्ता पेट को मुलायम और फेफड़े को साफ करता है। इससे दस्त साफ आता है। यह कफ को छाँट कर निकाल देता है। पित्त के विकार को दस्त की राह से निकाल देता है। पित्त और खून की गरमी को दूर करता है। प्यास और पेशाब की जलन को मिटाता है। आँतों की खराश को दूर करता है। दमा, सूखी खाँसी और सीने के दर्द में लाभ पहुँचाता है। मेदे के कृमियों को नष्ट करता है। शरीर की भीतर से शुद्धि करता है। जुलाब की औषधियों की तेजी और उनसे पैदा होनेवाली घबराहट को दूर करता है। जिनकी प्रकृति गर्म होती है उनके लिये मृदुविरेचक पदार्थ का काम करता है। अगर पित्त, कफ, खून तीनों के विकार से ज्वर आने लगे तो इसको देने से बड़ा लाभ होता है। सुजाक में इसके पेड़ की ४।५ कोंपलों को बारीक कतर कर रात में पानी के अन्दर भिगोकर प्रातःकाल उनको मल छान कर पीने से लाभ होता है। इससे प्रमेह, मसाने का जखम और बार बार पेशाब का आना भी बन्द हो जाता है। इसके पेड़ की सूखी हुई छाल को जला कर उसकी राख को अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाने से फायदा होता है।

जावाद्वीप में इसकी छाल का काढ़ा जीर्ण ज्वर के अन्दर तथा शक्ति बढ़ाने के लिये दिया जाता है। इसके फलों का काढ़ा खांसी में कफ को ढीला करने के लिये, पेशाब की जलन को कम करने के लिये और अतिसार को दूर करने के लिये दिया जाता है। इससे आंतों को उत्तेजना मिलती है।

इसकी छाल का रस नारियल के तेल के साथ मिलाकर उदरशूल (Gripes) को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसकी छाल और इसके कच्चे फल हलके पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसकी गुठली की मगज दाद की एक उत्तम औषधि है। इसको पीस कर लेप करने से दाद मिट जाता है। व्रण और मस्तक शूल पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

संथाल जाति के लोग इसकी छाल के चूर्ण को एक विशेष प्रकार की खुजली (Prurigo) पर लेप करने के काम में लेते हैं।

सुश्रुत और वाग्भट्ट के मतानुसार इस वृक्ष का हर एक हिस्सा सांप और बिच्छू के विष में लाभदायक होता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इसका हर एक हिस्सा सर्प के विष में निरुपयोगी होता है।

उपयोगः—

सूखी खांसी—सपिस्ता के फलों का क्वाथ बनाकर पिलाने से सूखी खांसी मिटती है।

अतिसार—गुठली निकाले हुए सूखे गूंदे का चूर्ण करके खिलाने से अतिसार मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र—गूंदे के कच्चे फलों का छुआव सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

घाव—इसके पत्तों की राख को घी में मिलाकर लगाने से घाव भर जाता है।

वदगांठ—इसके पत्तों को गरम करके वद गांठ पर बाँधने से वह बैठ जाती है।

लिसोड़ा बड़ा

नामः—

संस्कृत—बहुवर्का, भूतद्रुमा भूतवृक्षा, द्विज कुत्सित, गन्धपुष्प, सेलू, श्लेष्मांतक, इत्यादि। हिन्दी—बड़ा लिसोड़ा। बंगाल—बहुबड़ा, बोहोदरी। बम्बई—बड़गूंद, मोटाभोकर। गुजराती—बड़गूंदी, पिस्तान, सपिस्तान। तामील—अलि, नमाविरी। तेलगू—नेक्केरा। फारसी—सपिस्ता। अरबी—मोखताह। इंग्लिश—Large Sebesten। लेटिन—Cordia Wallichii (कोर्डिया वेलिचि)।

वर्णन—यह लिसोड़े की एक बड़ी जाति होती है। इसका वृक्ष लिसोड़े के वृक्ष की तरह ही होता है। मगर इसके फल उससे कुछ बड़े होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कड़वा, मीठा, कसेला, अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक, केशों को हितकारी, पाचक, तथा शूल, आमरक्त, विस्फोटक, व्रण, पित्त, विसर्प और सब प्रकार के विषों को हरनेवाला होता है। इसके कच्चे फल शीतल, मधुर, कड़वे, हलके, कसेले, वातवर्द्धक, पित्त को शान्त करनेवाले, रुचिकारक, ग्राही और रुधिर विकार, नेत्र विकार तथा कफ को नष्ट करनेवाले होते हैं। इसके पके हुए फल मधुर, चिकने, शीतल, पौष्टिक, ग्राही, रूखे, भारी, वातविनाशक, पित्तनिवारक और रुधिर विकार को दूर करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ का काढ़ा मुखशोथ के अन्दर कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसके पत्ते कामोद्दीपक होते हैं और ये सुजाक के अन्दर काम में लिये जाते हैं। इन पत्तों की राख घाव को भरनेवाली होती है और इस राख के पानी से आँखों को धोने से आँख की जलन शान्त होती है। इसके फल मीठे, मूत्रल, कृमिनाशक और ज्वर को दूर करनेवाले होते हैं। ये छाती और गले की सूजन, सूखी खाँसी, स्वर की खराबी, प्यास, पित्तविकार और कंठनाली के प्रदाह में उपयोगी होते हैं। मूत्रकृच्छ्र और पेशाब की जलन में भी ये बहुत उपयोगी होते हैं।

सिंध में इसका फल एक संकोचक, कफनिस्सारक और शान्तिदायक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसके कच्चे फल का लुआब सुजाक के अन्दर लाभ पहुँचाता है।

कोमान का कथन है कि यह वनस्पति ब्रोंकाइटीज या वायुनलियों की विकृति में तथा पेशाब के साथ होनेवाली जलन में उपयोगी मानी जाती है। हमने इसके फल का काढ़ा ब्रोंकाइटीज के कुछ बीमारों पर उपयोग में लिया मगर उसका परिणाम असन्तोषजनक रहा।

उपयोगः—

पागल कुत्तेका विष—इसके एक तोले पत्ते और १५ काली मिरचों को पीस छान कर पिलाने से पागल कुत्ते के विष में लाभ होता है।

गुदा से काँच निकलना—गुदा पर घी चुपड़ कर गूँदे की भस्म भुरभुराने से काँच का निकलना बन्द हो जाता है।

कंठमाला—गूँदे के कोमल पत्तों को आग पर तपा कर, कंठमाला पर बाँधने से १० दिनमें कंठमाला मिटती है।

अतिसार—इसकी कोंपलों को पीस कर उनकी गोलियाँ बना कर देने से अतिसार मिटता है।

मूत्रातिसार—इसके कोमल पत्तों का १ तोला लुआब निकाल कर उसमें शक्कर मिला कर पीने से मूत्रातिसार मिटता है।

जुक़ाम—गूंदे की छाल का क्वाथ बना कर पिलाने से जुकाम मिटता है।

मूत्र कृच्छ्र और पथरी—गूंदे की छाल का हिम बना कर उसमें मिश्री मिला कर पीने से मूत्र कृच्छ्र और पथरी मिटती है।

पेट की कठोरता—गूंदे के पत्तों को तेल से चुपड़ कर उनको गरम करके पेट पर बाँधने से बादी से कठोर पड़ा हुआ पेट मुलायम हो जाता है।

ज्वर—इसकी छाल को औटा कर पिलाने से ज्वर छूटता है।

खुजली—इसकी छाल को पीस कर लेप करने से खुजली मिटती है।

पेट की मरोड़ी—गूँदे की छाल का रस और नारियल का तेल मिला कर पिलाने से पेट की मरोड़ी मिट जाती है।

दाद—गूंदे की मगज को पीस कर लेप करने से दाद मिटते हैं।

मसूड़ों की कमजोरी—इसके क्वाथ से कुल्ले करने से मसूढ़े दृढ़ हो जाते हैं।

मूत्र नाली की जलन—इसके फलों के लुआब में मिश्री मिला कर पिलाने से मूत्राशय और मूत्रनाली की जलन मिटती है।

मुजिर—सपिस्तां ठंडी प्रकृतिवाले लोगों को और हृदय रोगवालों को हानिकारक होता है। यह मेदे को ढीला करता है।

दर्पनाशक—आँवला, गुलाब का फूल और उन्नाव।

प्रतिनिधि—खतमी और उन्नाव।

मात्रा—८ दाने से २० दाने तक।

लाख

नामः—

संस्कृत—लाक्षा, अलक्तः, रक्ता, पित्तारि, कृमिजा, रंगमाता इत्यादि। हिंदी—लाख, लाही। बंगाल—लाक्षा, गाला। मराठी—लाख। गुजराती—लाख। अङ्गरेजी—Shellac। लेटिन-Cocus Lacca (कोकस लेका)

वर्णन—लाख नामक उपयोगी पदार्थ भारतवर्ष में कई प्रकार के वृक्षों पर पाया जाता है। चिपकनेवाले लस लसे पदार्थ राल के रूप में यह वृक्ष की पतली टहनियों पर देखा जाता है। यह एक प्रकार के छोटे से कीड़े के कौशल से पैदा होता है। वैसे तो भारतवर्षमें ४०-४५ प्रकार के वृक्षों पर लाख जमती है पर विशेष रूप से यह ढाक या पलाश के वृक्षोंपर जमती है। भारत के प्राचीन साहित्य में पलाश का पर्यायवाची शब्द ही लाक्षतरु है। चिकित्सा शास्त्र की अपेक्षा औद्योगिक दृष्टि से लाख का महत्त्व बहुत अधिक है। लाख का व्यवसाय भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से जब कि दुनियाँ की सभ्यता जाग्रत भी नहीं हुई थी चला आ रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में लाख का उद्योग अत्यन्त प्राचीनकाल से शृंखलाबद्ध रूप से चला आ रहा है। महाभारत के समान प्राचीन ग्रन्थ में भी लाक्षा भवन की चर्चा आई है।

भारत के इस प्राचीन उद्योग धंदे की ख्याति अन्य विदेशों में कब और कैसे पहुंची इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण तीसरी शताब्दि के पूर्व का नहीं मिलता। पर सन२५० ईसवीमें एलियन नामक पाश्चात्य विद्वानने सब से पहिले इसकी चर्चा की है। इसने लिखा है कि भारत में एक ऐसा भी कीड़ा होता है जो रंग के काम में आनेवाले पदार्थ को पैदा करता है। इसके बाद शताब्दियों तक इतिहास में लाख की कहीं चर्चा तक नहीं मिलती। हाँ आइन अकबरी में लाख और लाख के संयोग से तयार की जानेवाली वारनिश का जिकर जरूर आया है। सन १५९० ईसवी में सम्राट अकबर ने दरवाजों और राज प्रासाद के फाटकों पर पोती जानेवाली लाख की वारनिश के सम्बन्ध में नियम बनाये थे। इसके कुछ ही समय बाद पुर्तगाल के सम्राट ने जान ह्युगलेन वानलिन्स्योटन नामक एक डच जानकार को लाख की वैज्ञानिक खोज करने के लिये भारत भेजा था। इसने अपने अनुभव सन् १५९८ ईसवी में पुस्तकाकार प्रकाशित किये। आबुहनीफा नामक एक जानकार ने लाख को औषधि के काम में लाने की सलाह दी है। डाक्टर केयर ने सन् १७८१ ईसवी में लाख के कीड़ों का विस्तृत विवरण प्रकाशित कराया था। सन् १७९० ईसवी में वन-

स्पति शास्त्री डाक्टर राक्सबर्ग ने इन कीड़ों का जीवन वृत्तान्त लिखा था। सन् १८६१ ईसवी में डाक्टर कार्टन ने इन कीड़ों की शरीर रचना पर प्रकाश डाला था। इस प्रकार भारतवर्ष की यह प्राचीन वस्तु धीरे धीरे विदेशियों की जानकारी में आई और आज तो इस वस्तु की इतनी उपयोगिता है कि बिजली के सामान में, वारनिश के काम में, ग्रामोफोन के रेकार्ड में, बीमा पारसल की मोहर में, लीथो स्याही में, नकली रबर की ढलाई में, बटन और जूतों के साज में, इत्यादि अनेक कामों में लाख का उपयोग होता है।

लाख से चपड़ा तयार करने की विधि—

उत्तम और स्वच्छ लाख जो देखने में मसूर की दाल के समान चमकदार होती है। उससे चपड़ा तयार किया जाता है। पहिले इस चौंवरी लाख को धूप में सुखाकर साफ की जाती है। इसके बाद हरताल को पीसकर पानी में मिलाकर इसी साफ चौंवरी लाख पर छिड़कते हैं और लाख को मसल-मसलकर छिडकी गई हड़ताल को सब जगह बराबर कर दिया जाता है। एक मन लाख पर करीब पाव भर से लेकर आधा सेर तक हरताल देते हैं। लाख में हरताल मिलाकर चपड़ा बनाने से चपड़े का रंग सोने के समान पीला और चमकदार दिखाई देता है।

चपड़ा बनाने के लिये एक विशेष प्रकार की थैली तयार की जाती है। जिसकी लंबाई ३० से लेकर ४५ फीट तक की होती है। इसका मुँह ३ इंच तक चौड़ा होता है। यह दोहरे कपड़े की होती है। हरताल मिली हुई चौवरी लाख को इसी लम्बी थैली में भर दिया जाता है और फिर यह भरी हुई थैली एक बड़ी भट्टी के पास रक्खी जाती है। भट्टी ५ फीट लम्बी और अण्डाकार होती है। इसमें धधकता हुआ कोयला भरा रहता है। इसी धधकती हुई भट्टी के सामने चपड़ा बनानेवाला कारीगर लाख से भरी हुई लंबी थैली को हाथ में लेकर बैठता है और चतुराई से थैली को घुमा घुमाकर उसके अन्दर की लाख को पिघलाता है और साथ ही थैली को निचोड़-निचोड़कर पिघाली हुई लाख को थैली से बाहर टपकाता जाता है। दूसरा आदमी जो यहीं उपस्थित रहता है निचोड़कर निकाली गयी लाख को एक मिट्टी के चिकने बर्तन में भरता है। इस बर्तन में गर्म पानी भरा रहता है। अतः पिघली लाख गुड़ की पात के समान कुछ ऐंठ सी जाती है। पानी से लाख के पत्तर को निकालकर भट्टी के सामने चद्दर की भाँति हाथ और पैर की सहायता से खींच-खींचकर बढ़ाया जाता है। इस क्रिया से बड़े-बड़े पतले तख्ते तयार हो जाते हैं। इसी का नाम चपड़ा होता है। ४० सेर लाख में २० सेर चपड़ा बनता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से लाख शरीर के वर्ण को उज्ज्वल करनेवाली, शीतल, बलकारक, स्निग्ध, कसेली, हलकी तथा कफ, रक्तपित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, व्रण, उरक्षत, विसर्प, कुष्ठ, कृमि, विष, रक्तदोष और विषम ज्वर को हरनेवाली होती है।

लाख कड़वी, कसेली, टूटी हड्डी को जोड़नेवाली, स्निग्ध, हलकी, बलकारक, शीतल, वर्णकारक तथा कफ पित्त, शोथ, विष, रक्तविकार, हिचकी, खाँसी, ज्वर, विषमज्वर, उरक्षत, विसर्प, नाक के रोग, कृमि, कोढ़, व्रण, चर्मरोग और दाह को दूर करनेवाली होती है।

लाख या महावर स्तोरोधक और रक्त पित्त, क्षय, प्रदर और रक्तातिसार को दूर करनेवाली होती है। लाख, पलाश, पीपल, बेर, सीसम इत्यादि अनेक वृक्षों पर होती है। लेकिन चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ लाख पीपल की होती है।

उपयोगः—

नारू—नारू की सूजन को मिटाने के लिये लाख और देशी साबुन को पीसकर गर्म करके लेप करना चाहिये।

नासिक धर्म की अधिकता—लाख के चूर्ण और शक्कर की फक्की देने से कफ के साथ रुधिर का आना और मासिक धर्म में प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना बंद हो जाता है।

रक्त पित्त—लाख के चूर्ण को शहद और दूध में मिलाकर पिलाने से रक्तपित्त मिटता है।

रक्त प्रदर—लाख के चूर्ण को घी के साथ चाटने से रक्तप्रदर मिटता है।

वमन—लाख के चूर्ण की घी, शहद और दूध के साथ फक्की लेने से शोष रोग से पैदा हुई वमन मिटती है।

हिचकी—दूध के साथ लाख की नस्य लेने से हिचकी मिटती है।

रुधिर की वमन—लाख का पानी बनाकर उसमें शहद मिलाकर पिलाने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

लांगुलीलता

नामः—

बंगाल—लांगुलीलता। तामील—पुल्लिचोवडी। तेलगू—मेकामाडुगु। अंगरेजी—Tiger's foot लेटिन—Ipomoea Pestigrides (इपोमिया पेस्टिग्रिडिस)

वर्णन—इस वनस्पति का पौधा झाड़ीनुमा और रुएँदार होता है। इसके पत्ते ३-८ से लेकर १० सेंटिमीटर तक लंबे होते हैं। इसके फूल बिना डंठल के होते हैं। इसके बीज भूरे और चमकीले होते हैं। यह वनस्पति कम जियादा मात्रा में सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ एक विरेचक द्रव्य की तरह काम में ली जाती है। इसी प्रकार यह कारबंकल, विस्फोटक और बाल तोड़ पर भी उपयोग में ली जाती है। पागल कुत्ते के विष के इलाज में भी इसका उपयोग होता है।

लास

नामः—

बंबई—लास। लेटिन—Porphyra Vulgaris (पोरफिरा व्हल्गेरिस)।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति शांतिदायक धातुपरिवर्तक और कंठमाला रोग में उपयोगी होती है।

लाल मुरगा

नामः—

संस्कृत—झण्डू, स्थूलपुष्प। हिन्दी—लाल मुरगा, मखमली, कलगा। मराठी—झेंडू, मखमाल। गुजराती—मुखमल, गुलझारो। बङ्गला—गेंदा। बम्बई—गुलजाफ़री, मखमाल। पंजाब—सदबर्गी, मेनतोक, टांगला, उर्दू—गेंदा। फारसी—सदाबर्ग, काजेखरूस। अरबी—हमाइम। अंग्रेजी—French Marigold (फ्रेञ्च मेरीगोल्ड)। लेटिन—Tagetes Erecta (टेगेटीस इरेक्टा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी क्षुप होता है यह विशेष रूप से पंजाब और सिन्ध के बगीचों में लगाया जाता है। इसके फूल बड़े २ और पीले रङ्ग के होते हैं। इसमें कुछ अफीम के समान गन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से लाल मुरगा चरपरा, कसैला तथा ज्वरभूत और ग्रह की पीड़ा को दूर करनेवाला होता है।

इसके अन्दर अंग्रेजी दवा 'आर्निका'' के समान सूजन को नष्ट करनेवाला तथा रक्त संग्राहक धर्म रहता है। इसके फूलों की पंखड़ियों को छः माशे से एक तोले तक की मात्रा में बवासीर का खून बन्द करने के लिए देते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते बवासीर, गुर्दे के रोग और मासपेशियों की वेदना में लाभ पहुँचाते हैं। इनका रस कर्णशूल और नेत्ररोग में टपकाने से लाभ होता है। इसके फूल कड़वे, संकोचक, शान्तिदायक और अग्निवर्द्धक होते हैं ये दाँत और मसूड़ों की बीमारियों में लाभ पहुँचाते हैं, सूजन को दूर करते हैं तथा खुजली, यकृत के रोग, खूनी बवासीर और साँप तथा बिच्छू के विष में लाभ पहुँचाते हैं।

इसके पत्ते विस्फोटक और कारबंकल पर लगाने के काम में लिये जाते हैं और इनका रस कर्णशूल में कान के अन्दर टपकाया जाता है। इसके फूल नेत्र रोग और हठीले व्रण पर बाह्य प्रयोग में और खून को साफ करने के लिए और बवासीर का खून बन्द करने के लिए पिलाने के काम में लिये जाते हैं।

लिविडिवी

नामः—

बंबई—लिविडिवी। दक्षिण—अमरीकाकासुमाक। कनारी—दिविदिवी। तेलगू—दिविदिवी। तामील—तिवीदिवी। अरवी—सुमाके मरीकाह। इंग्लिश—Dividivi। लेटिन—Caesalpinia Coriaria (केसलपीनिया कोरिएरिया)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जुड़मा लगते हैं। इसके फूल छोटे, हलके, पीले या हलके हरे, मीठी खुशबूवाले और इसकी फलियाँ जाड़ी, मुड़ी हुई और काँटेदार होती हैं। इसकी छाल चमड़ा रंगने के काम में आती है। यह वनस्पति पश्चिमी भारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी फलियाँ संकोचक पौष्टिक और पार्यायिक ज्वरों को दूर करनेवाली होती है और इसकी छाल एक प्रभावशाली संकोचक वस्तु होती है। इसकी अखंड फलियों का चूर्ण पाली के बुखार में दिया जाता है। इसकी फलियों के काढ़े से एनिमा लेने से खूनी बवासीर सूख जाते हैं। जीर्णज्वर में दस्तों को बन्द करने के लिये इसकी छाल का काढ़ा दूसरे सुगंधित द्रव्यों के साथ दिया जाता है। इसकी छाल ज्वरनाशक होती है और जीर्णज्वर में इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—इसकी फलियों की और इसकी छाल की मात्रा १० से लेकर ३० रत्तीतक की होती है।

लिंवाड़ा

नामः—

बम्बई—लिंवाड़ा। बंगाल—चेनेंजी, कपियाकुशी। मराठी—गुंदीड़ा। अलमोड़ा—बनरीठा। नेपाल—अंखटरुश्रा। लेटिन—Heynea Trijuga (हेनिया ट्रिजुगा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते जोड़े में लगते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल और पत्तों में कड़वे और पौष्टिक पदार्थ रहते हैं। मलाया के अन्दर चोर लोग इसके फलों को दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लोगों को बेहोश और मूर्छित करने के काम में लेते हैं।

लिनपिन

नामः—

बरमा—लिनपिन, लेनपेन। लेटिन—Terminalia Pyrifolia (टर्मिनेलिया पायरीफोलिया)।

वर्णन—यह अर्जुन के वर्ग का एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है जो बरमा में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

केव, महस्कर और इसाक के मतानुसार इस वृक्ष की छाल एक उत्तम, बलवान् हृदय को उत्तेजना देनेवाली वस्तु होती है।

लिनबेन

नामः—

बरमा—लिनवेन। लेटिन—Terminalia Bialata (टर्मिनेलिया बिएलेटा)।

गुण दोष और प्रभाव—

वर्णन—यह भी एक अर्जुन की जाति का वृक्ष होता है जो बरमा में पैदा होता है इसकी छाल भी हृदय को उत्तेजना देने के लिये एक उत्तम वस्तु होती है।

लीची

नामः—

हिन्दी—लीची। बम्बई—लीची। इंग्लिश—Litchi। तामील—लीची। उर्दू—लिचुर। लेटिन—Litchi chinensis (लीची चाइनेंसिस)।

वर्णन—यह एक हमेशा हरा रहनेवाला छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते है। इसके फूल कुछ हरे रङ्ग के होते हैं। इसका फल भूरे रंग का अखरोट से कुछ बड़ा होता है। इसके ऊपर पतला छिलका रहता है। इस छिलके को निकाल देने पर भीतर से मुर्गी के अण्डे के आकार का सफेद रंग का फल निकल जाता है। इस फल का गूदा बहुत मीठा और स्वादिष्ट होता है। हर एक फल के अन्दर एक बड़ा भूरे रंग का बीज निकलता है। इस फल का मूल उत्पत्ति स्थान चीन है। मगर आजकल भारतवर्ष में बहुत बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—यूनानीमत से इसके फल में गुलाब के फूल के समान मधुर और मीठी खुशबू आती

है। इसका फल हृदय मस्तिष्क और यकृत को शक्ति देनेवाला होता है। यह प्यास को बुझाता है। शरीर के लिये यह एक उत्तम स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु होती है।

इंडोनायना में इसके फल के छिलके को पीस कर उसको अलकोहल में मिलाकर आँतों की शिकायतों को दूर करने के लिये देते हैं। इसका कच्चा फल बच्चों को होनेवाली शीतला की बीमारी में दिया जाता है। इसकी जड़, छाल और फूलों का काढ़ा गले के विकारों को दूर करने लिये कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीज वेदना नाशक होते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार की स्नायविक वेदनाओं को दूर करने के लिये और अण्डकोष की जलन को दूर करने के लिये मलाया में इनका उपयोग किया जाता है।

लीलकण्ठी

नाम:—

नागपुरी—लीलकंठ, नीलकंठ। गुजराती—राती भोंयशण। लेटिन—Polygala Crotalarioides (पोलिगेला क्रोटेलेरिआईडस)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बरसात में बहुत पैदा होते हैं। इसके पौधे आधे से लेकर १॥ फुट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते और फूल सन के पत्ते और फूलों की तरह होते हैं इस सारे पौधे के ऊपर सफेद रंग का रुआँ होता है। यह वनस्पति कच्छ-काठियावाड़, शिमला-सिकिम और खासिया पहाड़ी में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के पत्तों का लेप नारू की सूजन पर किया जाता है। इसकी जड़ों को इमली के साथ पीसकर जहरी जानवरों के डंक पर लगाया जाता है। इसके पौधे को औटा कर उसकी भाप ज्वर वाले को दी जाती है।

मुंडा जाति के लोग इसकी जड़ों को पानी के साथ पीस कर पीते हैं जिससे गले का कफ़ बाहर निकल जाता है।

पहाड़ी लोग कफ ज्वर के अन्दर कफ को पतला करने के लिये और वमन लाने के लिये इसके पंचांग का काढ़ा बना कर देते हैं।

सर्प विष के अन्दर भी इसकी जड़ें उपयोगी मानी जाती हैं।

लीलजहरी

नामः—

उत्तर पश्चिमी प्रान्त—लील जहरी। काश्मीर—काओ अशुद। पुश्तु—ममीरान। लेटिन—Geranium Wallichianum (जेरेनियम वेलिचिएनम)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है इस वनस्पति पर रुआँ होता है। यह वनस्पति काश्मीर, गढ़वाल, नेपाल, सिकिम, कुर्रमव्हेली और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है।

इस वनस्पति के अन्दर संकोचक तत्व रहते हैं। इसकी जड़ को पीस कर नेत्रों के ऊपर लेप करने से नेत्रों की सूजन उतर जाती है। अतिसार, रक्तश्राव, सुजाक, श्वेतप्रदर और दन्तशूल पर भी इसका उपयोग किया जाता है।

लुकाट

नामः—

हिन्दी—लुकाट, लोगाट। उर्दू—लखोटा। तामील—नकोटा। इंग्लिश—Loquat। लेटिन—Eriobotrya Japanica (इरियोबोट्रिया जपानिका)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहने वाला फलदार वृक्ष होता है। इसके पत्तों पर बहुत मुलायम रुआँ रहता है। ये पत्ते ६ से लेकर ८ इंच तक लम्बे और १॥ से ३ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और सुगन्धित होते हैं। इसके फल पकने पर पीले रंग के, मीठे, और पतले छिलके वाले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कच्ची हालत में खट्टा और पक्की हालत में मीठा होता है। यह ज्वरनाशक, उपशामक, वमन में लाभदायक, और प्यास को दूर करनेवाला होता है। इसका निर्यास प्रवाहिका रोग में बहुत लाभ बतलाता है और इसका टिंक्चर अपचन रोग की बीमारी में दिया जाता है।

इसके पत्ते संकोचक होते हैं और इनका उपयोग प्रवाहिका को दूर करने के लिये किया जाता है।

इसके फूल कफनिस्सारक होते हैं और चीन में इनका उपयोग खाँसी, दमा, राजयक्ष्मा, और सन्यास रोग में किया जाता है।

लुनिया छोटा

नाम:—

संस्कृत—लोणी, क्षुद्रघोलिका, लघुलोनिका। हिन्दी—छोटा नोनियाँ, छोटा लूणिया, खाटी भाजी, लोनियाँ। मराठी-घुइघोड़, चनलइकीभाजी, चवली, गोलकी भाजी। गुजराती-झीनीलूनी। मद्रास-सिरुपसलई। बम्बई-चवलकी भाजी, कोटा। पोरबंदर-वाघी। झिनकी लूणी। पंजाब-लूनक, लूनकी बूटी, इस्रा। तामील-पसलई किरलई। तेलगू-गोडूपवेली, कुरा, पवली। मारवाड़ी-लूणक्यो। लेटिन—Portulaca Quadrifida (पोर्चूलेका क्वाड्रिफिडा)।

वर्णन—यह एक तरकारी होती है जो भारतवर्ष में सभी दूर पैदा होती है और सभी जगह खाने के काम में ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेद के मत से यह वनस्पती तूरी, कड़वी, पित्तजनक, सारक, कफकारक, जीर्णज्वरनाशक और श्वास, खाँसी, वायगोला, प्रमेह और सूजन को दूर करनेवाली है। यह वात विनाशक, धातुपरिवर्तक, उष्ण-वीर्य, खट्टी तथा नेत्ररोग, चर्मविकार और व्रण को नष्ट करती है।

एन्सली के मतानुसार इसके कुचले हुए ताजे पत्ते, तामील वैद्यों के द्वारा नेत्ररोगों और श्लीपद में काम में लिये जाते हैं। इसका शीतनिर्यास मूत्रशूल में मूत्रल वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है।

गोल्डकास्ट में यह वनस्पति दाँतों के दर्द में उपयोगी समझी जाती है।

पूर्वी अफ्रिका में इस वनस्पति का काढ़ा कृमिनाशक माना जाता है। वहाँ पर इसे पेट की शिकायतों और सुजाक पर भी काम में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके पत्तों के रासायनिक विश्लेषण से इसमें एक प्रकार का लुआब और पोटेशियम ऑक्झेलेट पाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति गुर्दे के रोगों में, चर्म रोगों में, मूत्र रोगों में और फेफड़े के रोगों में उपयोगी है।

उपयोग:—

विसर्प रोग और अन्य चर्मरोग—इसके ताजे पत्तों को कुचलकर विसर्प रोग, खुजली तथा अन्य प्रकार के चर्मरोगों में लगाने से लाभ होता है।

गुर्दे के रोग—यह एक मूत्रल औषधि है। इसका शीतनिर्यास देने से पेशाब अधिक होकर गुर्दे और मूत्राशय की पीड़ायें मिटती हैं।

पित्तशोथ—मुँह की ओर से सिर की ओर बढ़नेवाले जलयुक्त पित्त की सूजन पर इसके ताजे पत्तों का लेप करने से फायदा होता है।

ज्वर—ज्वर के तीव्र वेग में इसके पत्तों का हिम पिलाना चाहिये।

सिरदर्द—इसके पत्तों का कनपटी पर लेप करने से गर्मी से होनेवाली सिर पीड़ा मिटती है।

रुधिर का थूँकना—इसके पत्तों का अर्क पिलाने से रुधिर का थूँकना बन्द हो जाता है। इसके पंचांग का शीतनिर्यास मूत्राशय की दाह, मूत्राघात, मूत्र के साथ रुधिर का आना, रुधिर की वमन, रुधिर का थूँकना और मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

दस्त की बार बार शंका होना—इसके बीजों की फक्की लेने से अँतड़ियों की ऐंठन मिटकर बार बार दस्त की शंका होना बन्द हो जाता है।

बुखार की गर्मी—बुखार की भयंकर गर्मी को दूर करने के लिये बरफ की जगह इसके पत्तों का लेप करने से भी काम चल जाता है।

मुहाँसे—इसके बीजों को गाय के दूध के साथ पीसकर मलने से मुहाँसे मिटते हैं।

लुदुत

नामः—

पंजाब—लुदुत। लेटिन—Codonopsis Ovata (कोडोनापुसिस ओव्हेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर गढ़वाल तक ८ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

एटचिंसन के मतानुसार इसकी जड़ और पत्तों का पुल्टिस बनाकर व्रण, जखम और चोट के ऊपर बाँधने के काम में आता है।

लूयून

नामः—

मलायां—लूयून। लेटिन—Mylitta Lapidescens (मायलिटा लेपिडिसेन्स)। तामील—करोम्पल्लगम्।

वर्णन—यह जमीन पर पैदा होनेवाली छत्रक वर्ग की वनस्पति होती है। यह त्रावनकोर और तिने-

वेल्लिकी चूने की टेकरियों पर पैदा होती है। जंगली लोग त्रिवेन्द्रम के बाजार में इसको बेचने के लिये लाते हैं। इसके काले रंग का एक छोटा कन्द होता है। यह ताजी हालत में मोम के समान मुलायम लेकिन सूखने पर कठिन हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति मूत्रल होती है। चीन में यह मृगी, हैजा और बच्चों को होनेवाली स्नायुजाल सम्बन्धी बिमारियों में उपयोग में ली जाती है। त्वचा में रहनेवाले परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

ल्यूबिसफरम्यून

नामः—

हिन्दी—ल्यूबिसफरम्यून। लेटिन—Lithospermum officinale (लिथोसपरमम ऑफिसीनेल)।

वर्णन – यह वनस्पति काश्मीर में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के बीज पथरी को नष्ट करनेवाले और उत्तम मूत्रल होते हैं।

लेनीसाह

नामः—

बम्बई—लेनीसाह। लेटिन—Reaumuria Hyperieoides (रेमूरिया हिपेरिकाइडस)।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनपस्ति गुदाद्वार की खुजली और दूसरी खुजली के उपयोग में आती है।

लेंडी

नामः—

पंजाब—लेंडी। लेटिन—Solenanthus Sp (सोलेनेन्थस एसपी)।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति फोड़ों को पकाने के लिये लगाने के काम में ली जाती है।

लेंग्क्रेप

नाम:—

मलाया—लेंग्क्रेप। लेटिन—Arenga Obtusifolia (ऐरेंगा आब्टूसिफोलियां)।

वर्णन—यह एक वृक्ष होता है। इसका तना बहुत बड़ा होता है। इस वनस्पति का फल गोल, छोटी सेव की तरह होता है। यह वृक्ष मलाया पेनिन्शुला में पैदा होता है। हिन्दुस्तान में भी इसकी कहीं-कहीं खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वृक्ष का फल जहरीला होता है। मलाया के लोग इसके फलके रस को अपने दुश्मनों को मारने के लिये प्रयोग करते हैं। फिलिपाइन में मछलियों को मारने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

लोखंडी (कटकुड़ा)

मराठी—लोखंडी, कटकुड़ा। तामील—माशाग्नि, उदाप्पु। लेटिन—Ixora Nigricans (इक्सोरा निग्रीकेन्स)।

वर्णन—यह एक छोटी जातिका झाड़ी नुमा वृक्ष होता है। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं।

क्षयरोग और लहसन—

इसके पत्ते अतिसार को नष्ट करने वाले होते हैं।

लोटलोटी

नाम:—

हिंदी—लोटलोटी, कुंजुया। बंगाल—कुंजिया। बंबई—तापकोट। मराठी—लीची, राम्र कोपासी।

कठियावाड़–बगडाऊभिंडो। तामील–ओटादि । तेलगु–नाल्लावेंडा । लेटिन–Urena Sinuata (यूरेना सिन्यूएटा)

वर्णन–इस वनस्पति के पौधे १।। से लेकर २ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते ५ कोनेवाले होते हैं। इसके फूल फीके गुलाबी रङ्गके होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

छोटा नागपुर में इसकी जड़ को कटिवात पर लेप करने के काम में लेते हैं।

फिलिपाइन में इसकी जड़ शांतिदायक, ज्वर नाशक और फोड़े को पकानेवाली होती है। इसके पत्ते आँतों की सूजन और मूत्राशय की सूजन को दूर करने के काम में लिये जाते हैं।

लोध

नामः—

संस्कृत—लोध्र, तिरीटक, शाबर, गाल्व, हस्ती, हेमपुष्पक इत्यादि । हिंदी—लोध। बंगाल—लोध, गुजराती—लोद्र । मराठी—लोध, । बम्बई–हुरा, लोध । मध्यप्रान्त–लोध, निनसाह । तेलगू—लोड्डुगा । उर्दू—लोध पठानी । इंग्लिश—Lodh Tree । लेटिन—Symplocos Racemosa (सिम्प्लेकोस—रेसीमोसा) ।

वर्णन—लोध के वृक्ष बंगाल आसाम और हिमालय तथा खासिया पहाड़ियों में पैदा होते हैं। यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच तक लंबे, अंडाकृति और कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल पीले रङ्गके और सुगंधित होते हैं। इसके प्रायः आधा इंच लम्बा और अण्डाकृति का फल लगता है। यह फल पकने पर बैंगनी रङ्ग का होता है। इस फल के अन्दर एक कठोर गुठली रहती है। उस गुठली में दो दो बीज रहते हैं। इसकी छाल गेरुए रंग की और बहुत मुलायम होती है। इसकी छाल और पत्तों में से रंग निकाला जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कसेली, शीतल, पचने में हलकी, आंतों का संकोचन करनेवाली और नेत्र रोग और मसूड़े के रोगों में लाभदायक होती है। कफ, पित्त, रक्त रोग, अतिसार, सूजन, कुष्ट, प्रदर, गर्भपात और गर्भस्राव में भी यह बहुत लाभदायक होती है। यह योनिपथ के व्रणों को मिटाती है। इसके फूल चरपरे, कसेले, मीठे, कड़वे, शीतल, और आँतों का संकोचन करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी छाल, कड़वी, कसेली, कामोद्दीपक, ऋतुस्रावनियामक और रक्तपित्त के रोगियों के लिये पौष्टिक होती है। आँखों का दुखना, आँखों से पानी का बहना तथा सब प्रकार के नेत्र रोगों में यह बहुत उत्तम वस्तु है।

लोध संकोचक, कफनाशक, रक्तस्तम्भक, वृणरोपक और शोष नाशक होती है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी रक्त वाहिनियों पर होती है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। जिससे रक्त श्राव बन्द हो जाता है और सूजन उतर जाती है। श्लेष्म त्वचा को लोध से शक्ति मिलती है, जिससे कफ पैदा होना कम हो जाता है।

श्वेत प्रदर और अत्यार्तव रोग में लोध एक बहुत उत्तम वस्तु है। इस प्रकार के रोग प्रायः गर्भाशय की शिथिलता से पैदा होते हैं। लोध गर्भाशय की शिथिलता को दूर करती है और वहाँ की रक्तवाहिनियों का संकोचन करती है। इन्हीं गुणों की वजह से यह इन रोगों पर विजय प्राप्त करती है। गर्भावस्था के सातवें-आठवें महीने में गर्भपात का अँदेशा होने पर लोध को शहद के साथ देते हैं। इससे गर्भाशय की शिथिलता दूर होकर उसकी आकृति ठीक हो जाती है और गर्भ को सहारा मिल जाता है। प्रसूति काल में योनि के अन्दर क्षत पड़ने पर लोध का लेप करने से लाभ होता है।

त्वचा के रोगों में भी लोध का उपयोग किया जाता है। रक्तपित्त रोग में रक्तश्राव को रोकने के लिये और कुष्ठ तथा दूसरे चर्मरोगों में लोध को खाने और लगाने के दोनों उपयोग में लिया जाता है। नेत्र रोगों में आँखों की सूजन और लाली को दूर करने के लिये लोध का लेप आँखों की पलकों पर किया जाता है। अतिसार और रक्तातिसार रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

हिन्दू चिकित्सा शास्त्र में योनिपथ के रोगों को दूर करने के लिये लोध का उपयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। आयुर्वेद में यह वस्तु शीतल, संकोचक, आँतों की शिकायतों को दूर करनेवाली और नेत्र रोगों में लाभदायक मानी जाती है। मसूड़ों की सूजन और मसूड़ों से खून बहने पर इसके क्वाथ से कुल्ले किये जाते हैं।

के० सी० बोस का कथन है कि उपरोक्त सब बीमारियों पर इंडिजिनस ड्रग कमेटी के सामने इस वनस्पति का कच्ची हालत में चूर्ण के रूप में, ताजा कांढ़े के रूप में, एलकेहेलिक एक्स्ट्रेक्ट के रूप में अजमाया गया। मगर उसका परिणाम कमजोर और असन्तोषजनक ही पाया गया।

चरक, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों के मतानुसार इस वनस्पति की छाल साँप और बिच्छू की चिकित्सा में काम में आती है।

रॉबर्टस् के मतानुसार सर्प विष में इस वनस्पति की छाल को चूर्ण के रूप में सेवन कराया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प और बिच्छू के विष की चिकित्सा में निरुपयोगी होती है।

उपयोग—

रक्त प्रदर—दस रत्ती लोध को, दस रत्ती मिश्री के साथ दिन में तीन बार लेने से चार पाँच दिनों में गर्भाशय की शिथिलता से पैदा हुआ रक्त प्रदर मिटता है।

मसूड़ों के रोग—लोध के क्वाथ से कुल्ले करने से मसूड़ों का ढीलापन मिटता है। उनमें से रक्त का बहना बंद हो जाता है।

गर्भपात—सातवें आठवें महीने में गर्भपात के लक्षण दीखने पर लोध और पीपल के चूर्ण को शहद के साथ चटाना चाहिये।

स्तनों की पीड़ा—लोध को पीसकर लेप करने से स्तनों की पीड़ा मिटती है।

नेत्ररोग—लोध, जीरा, भुनी हुई फिटकरी, इन तीनों चीजों को पीस कर घीगुवार के गुदा में मिलाकर उसकी कपड़े में पोटली बाँधकर उस पोटली को पानी में भिगोकर नेत्रों पर फेरने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

कान का बहना—लोध के चूर्ण को कान में भुरभुराने से उसका बहना बन्द हो जाता है।

जीर्ण ज्वर—लोध, चन्दन, पीपलामूल और अतीस का चूर्ण शक्कर, घी, शहद और दूध के साथ देने से जीर्ण ज्वर में लाभ होता है।

लोध पठानी

नाम:—

संस्कृत—पट्टिका लोध्र, लाक्षाप्रसादन, स्थूल वल्कल, वल्कलोध, इत्यादि। हिन्दी—पठानी लोध। पंजाब—पठानी लोध। बंगाल—पाटिया लोध। गुजराती—पठानी लोधर। मराठी—लोध। उर्दू—पठानी लोध। लेटिन—Symplocos crataegoides (सिम्प्लोकस क्रेटेगाइडस्)।

वर्णन—पठानी लोध के वृक्ष हिमालय में सिंध नदी से आसाम तक ९ हजार फीट की ऊँचाई तक और बरमा में पैदा होते हैं। इस वृक्ष की ऊँचाई ३० फुट तक की होती है। इसका तना सीधा और गोल होता है। इसकी छाल सफेद या कुछ भूरे रंग की और कुछ खरदरी होती है। इसके पत्ते दो से चार इंच तक लम्बे, तीखे और कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल सफेद और सुगंधित होते हैं। इन फूलों की सुगन्ध से बहुत दूर तक की हवा सुगन्धित हो जाती है। इस वृक्ष के फल की लम्बाई ¼ इंच होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से पठानी लोध शीतल, हलकी, कसैली, संकोचक और बलवर्धक होती है। इसके सब गुण दूसरी लोध के समान ही होते हैं। मगर यह उसकी अपेक्षा कुछ विशेष प्रभावशाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से लोध सर्द और खुश्क होती है। यह आँखों को शक्ति देती है। आँख के दर्द और ललाई को दूर करती है। कफ के उपद्रव का नाश करती है। मासिक धर्म को नियमित करती

है। धातु को गाढ़ा करती है। कामशक्ति को बढ़ाती है। वायु और कफ को मिटाती है। दस्तों को रोकती है और गर्भाशय को शुद्ध करती है।

प्रतिनिधि—इसकी जड़ की प्रतिनिधि अशोक की जड़ होती है।

लोभान

नामः—

संस्कृत—ऊद, सयामधूप, कपर्दक ऊद। हिन्दी—लोभान। गुजराती—कोड़ियो लोभान। मराठी—ऊद। लेटिन—Styrax Benzoin (स्टीरेक्स बेंझाइन)।

वर्णन—लोभान यह एक वृक्ष का गोंद होता है। यह वृक्ष स्याम और सुमात्रा द्वीप में पैदा होता है। इसकी नकल में यहाँ पर नकली लोभान भी तयार किया जाता है। अथवा इस असली लोभान में दूसरी वस्तुओं की मिलावट भी की जाती है। इसलिये इसको लेते समय इसकी असलियत का हमेशा ध्यान रखना चाहिये। श्याम से आया हुआ लोभान बहुत उत्तम होता है। इसकी चौकोर टिकड़ियाँ होती हैं। उत्तम लोभान में बदाम के समान या कौड़ी के समान रवे होते हैं। ये एक से दो इंच तक लम्बे दूध के समान सफेद और एक दूसरे से चिपके हुए रहते हैं। हलके दर्जे के लोभान में ये सफेद रवे न होकर इनकी जगह राल के समान भूरे रंग के रवे रहते हैं और छाल के टुकड़े भी उसमें मिले हुए रहते हैं। स्यामी लोभान में किसी तरह का स्वाद नहीं होता मगर गन्ध मधुर होती है।

सुमात्रा द्वीप से आनेवाला लोभान स्याम के लोभान की अपेक्षा कुछ हलके दर्जे का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

लोभान पीवनाशक, त्वचा की रक्तवाहिनियों को उत्तेजना देनेवाला, व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्त-संग्राहक, कफनाशक, मूत्रल और उत्तेजक होता है। यह पेट में जाने के पश्चात् श्वास-नलिका के द्वारा बाहर निकलता है। इसलिये श्वास-नलिका की सूजन में इसको बदाम और गोंद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। बहुत गाढ़ा और दुर्गन्धियुक्त कफ और जीर्णश्वास नलिका की सूजन में यह बहुत उपयोगी होता है। इससे श्वासनलिका की श्लेष्म त्वचा को शक्ति मिलकर कफ का पैदा होना कम हो जाता है और पूर्वसंचित कफ शीघ्रता से बाहर निकल कर खांसी आराम हो जाती है। क्षय और दमे के रोग में इससे बहुत लाभ होता है। फुफ्फुस के सब प्रकार के रोगों में लोभान का धुआँ बहुत लाभदायक होता है।

आमाशय के अन्दर अन्न का पाचन ठीक न होने की हालत में अगर गले के अन्दर जलन होती हो और उबाक आती हो तो लोभान को देने से लाभ होता है। सुजाक और वस्तिशोथ में भी यह लाभदायक वस्तु है।

लोभान का अर्क ताजे जखम पर लगाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। व्रण, जखम, भगन्दर, कंठमाला और हठीले व्रणों पर लोभान का अर्क मन्त्र शक्ति की तरह काम करता है। त्वचा के इन सब रोगों में लोभान, घीकुवार का रस और उत्तम शराब मिलाकर उसका उपयोग किया जा सकता है।

लोभान के फूल

लोभान के अन्दर एक अम्ल स्वभावी द्रव्य जिसको लोभान के फूल कहते हैं रहता है। सुमात्रा के लोभान की अपेक्षा स्याम के लोभान में ये फूल ज्यादा रहते हैं। ये गर्मी पा करके उड़ जाते हैं इनको निकालने की तरकीब इस प्रकार है।

लोभान का चूर्ण १ सेर, स्वच्छ धुली हुई बालू पाव भर इन दोनों चीजों को अच्छी तरह से मिला कर एक मिट्टी की हँडिया के अन्दर रख देना चाहिये। इस हँडिया के ऊपर एक दूसरी हँडिया डमरू यन्त्र की तरह जमा कर दोनों के जोड़ पर कपड़ मिट्टी कर देना चाहिये। फिर इस डमरुयन्त्र को कोयले की आँच पर रख देना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि आँच बहुत हल्की हो। इस प्रकार करने से नीचे की हँडिया से लोभान के फूल उड़ कर ऊपर की हँडिया में जम जाते हैं। पूरी क्रिया होने पर उस यन्त्र को बहुत आहिस्ते से उतार कर ऊपर की हाँडी को अलग करके उसके अन्दर जमे हुए सफेद रवों को निकाल लेना चाहिये। ये लोभान के फूल १०० तोला उत्तम लोभान में से १५ तोला निकलते हैं।

लोभान के फूल बहुत तीव्र और उत्तम पीवनाशक, पसीना लानेवाले, मूत्रल, उत्तेजक, ज्वरनाशक, कफनाशक और जीवन विनिमय क्रिया को उत्तेजना देने वाले होते हैं। पेट में जाकरके ये त्वचा और फुफ्फुस के मार्ग से बाहर निकलते हैं त्वचा से बाहर निकलते समय ये त्वचा की विनिमय क्रिया को शुद्ध करते हैं और पसीना लाते हैं। फुफ्फुस से बाहर निकलते समय ये कफ का शोषण करते हैं और खांसी को दूर करते हैं। लेकिन इनका कफ नाशक धर्म लोभान के कफ नाशक धर्म की अपेक्षा कमजोर होता है। मूत्र पिंड से बाहर निकलते समय ये पेशाब की तादाद को बढ़ाते हैं जिससे जीर्ण वस्तिशोथ और मूत्र विसर्जन की खराबी से पैदा हुई सूजन दूर हो जाती है। ये फूल पेशाब के साथ मूत्राशय में जाकर वहाँ की क्रिया को शुद्ध करते हैं जिससे क्षारयुक्त और दुर्गन्धियुक्त मूत्र की शुद्धि होती है। मूत्र पिण्ड की सूजन में यह बहुत उपयोगी वस्तु है। पुरातन सुजाक में इनको लेने से मूत्र की जलन कम होती है।

तीव्र और नवीन आमवात में लोभान के फूलों को १५ रत्ती की मात्रा में सज्जीक्षार के साथ देने से बहुत लाभ होता है। इस कार्य के लिये ये सेलिसिलिक एसिड के समान ही लाभ बतलाते हैं।

मात्रा—लोभान की मात्रा २ से लेकर १५ रत्ती तक और इसके फूलों की मात्रा ३ से ८ रत्ती तक होती है।

बनावटें—

अर्क लोभान—लोभान १० तोला, शिला रस १० तोला, उत्तम एलुवा २ तोला और रेक्टिफाइड स्पिरिट १०० तोला। इन सब चीजों को मिला कर १५ दिन तक पड़ी रखनी चाहिये। उसके पश्चात् कपड़े में छान कर बोतल में भर लेना चाहिये। इस अर्क को बादाम और गोंद के चूर्ण के साथ पानी में घोट कर देने से श्वास नलिका के जीर्णशोथ में बहुत लाभ होता है। ताजा जखम पर इस अर्क को तुरन्त लगा देने से रक्त का बहना फौरन बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त व्रण, जखम, भगंदर, कंठमाला, और अरनिंगर फोड़ों पर भी इस अर्क को लगाने से बहुत लाभ होता है।

लोभान का मिश्रण—लोभान के फूल और सज्जी खार दोनों को पानी में मिला कर औटाना चाहिये। दोनों चीजें बिलकुल घुल जाने पर उस पानी को छान कर फिर आग पर चढ़ा कर सुखा लेना चाहिये। और शेष रहे हुए चूर्ण को शीशी में भर लेना चाहिये। इस मिश्रण की मात्रा ३ से १५ रत्ती तक की होती है। यह मिश्रण यकृत को उत्तेजना देता है। खांसी, दमा इत्यादि कफ रोगों में यह बहुत उत्तम वस्तु है। इससे चिकना और जमा हुआ कफ पतला हो कर निकल जाता है।

लोभान (कुंदर)

नामः—

संस्कृत—कुन्दर। हिंदी—लुबान, कुन्दर। मराठी—इसेस। अंग्रेजी—Olibanum Frankincense (ओलीबेनम फ्रेन्कीन्सेन्स)। लेटिन Boswellia Floribunda (बोसवेलिया फ्लोरिबंडा)।

वर्णन—यह एक वृक्ष का गोंद होता है। जो आफ्रिका और अरबस्तान से भारतवर्ष में आता है। इसका रंग हलका पीला होता है। पानी में इसको मिलाने से पानी दूध के समान हो जाता है यह सुगंधित और स्वाद में कुछ कड़वा होता है। यह सालई वृक्ष के गोंद से बहुत मिलता हुआ होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह गोंद सुगंधित और उत्तेजक होता है। इसकी क्रिया श्लेष्मत्वचा के ऊपर होती है। खास करके श्वासमार्ग की श्लेष्मत्वचा के ऊपर होती है। पेट में इसको देने पर यह श्वास नलिका के द्वारा बाहर निकलता है और निकलते समय वहाँ की विनिमय क्रिया को सुधार कर उसको उत्तेजित करता है। श्वास नलिका की प्राचीन सूजन में इसको पेट में भी देते हैं और इसका धुआँ भी देते हैं। इससे कफ की दुर्गन्ध मिट जाती है और कफ का पैदा होना कम हो जाता है तथा खांसी की कमी हो जाती है और श्वास में होनेवाली रुकावट भी बन्द हो जाती है।

सुजाक में इसको ५ रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है। इसका मलहम ग्रंथिशोथ को कम करने वाला और उत्तम होता है। छोटे बच्चों के फोड़े फुंसियोंपर इसको लगाने से वे जल्दी पक कर फूट जाते हैं और अच्छे हो जाते हैं।

कारवंकल के ऊपर कुन्दर का मलहम एक रामबाण औषधि होती है।

कुन्दर का मलहम—कुन्दर १ तोला, खसखस का तेल १ तोला और सफ़ेद मोम १ तोला इन तीनों चीजों को अग्निपर गला करके कपड़े में छान देना चाहिये।

लोलोरी

नामः—

उड़िया-लोलोरी। बम्बई-कम्बल, कम्बली। लेटिन-Gnetum Scandens (नेटम स्केण्डन्स)।

वर्णन-यह एक वेल होती है। जो सिकिम आसाम, खारसिया पहाड़, चटगांव और वरमा में पैदा होती है।

इसकी जड़ें और इसकी डालियां ज्वर नाशक होती हैं। पेटे में किसी जानवर का सींग गड़ जाने से जो विदारित घाव हो जाता है उसमें इसकी डालियों का निर्याय पिलाया जाता है।

लौंग

नामः—

संस्कृत-लवँग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ, श्रीपुष्प, वारिपुष्प, दिव्यगंध, ग्रहणीहर, इत्यादि। हिन्दी-लौंग। वंगाल—लवंग। मराठी—लवंग। गुजराती-लवंग। अरबी-करनफूल। फारसी-मेहक। तामील-किराम्बु। अंग्रेजी Cloves (क्लोवस)। लेटिन—Caryophyllus Aromaticus (केरियोफिलस एरोमेटिकस।

वर्णन-लवंग के वृक्ष बहुत सुन्दर और सुगंधित होते हैं। ये वृक्ष झंजीवार में बहुत पैदा होते हैं। हिंदुस्तान दक्षिणी भाग में भी कुछ दिनों से इनकी खेती होने लगी है। इसके पत्ते बहुत सुगन्धित होते हैं। इसके फूल की कलियों को लौंग कहते हैं। बाजार में जो लौंग मिलते हैं। उनमें से बहुत सों का तेल निकाला हुआ होता है। असली लौंग वही होते हैं। जिनमें से तेल न निकाला गया हो।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश के मतानुसार लौंग चरपरी, कड़वी, नेत्रों को हितकारी, शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकारक तथा कफ, पित्त रक्तरोग, तृषा-मूर्च्छा, आफरा, शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षय रोग को नष्ट करती है।

राजनिघंटु के मतानुसार लौंग गरम, तीक्ष्ण, पाक के समय मधुर, शीतवीर्य तथा त्रिदोष, आम, क्षय और खाँसी को नष्ट करती है।

लौंग का तेल अग्निवर्द्धक, वात नाशक तथा दन्तशूल, कफ और गर्भिणी की वमन को दूर करनेवाला होता है।

लौंग पाचन क्रिया के ऊपर सीधा प्रभाव डालता है। इससे क्षुधा बढ़ती है, आमाशय की रस क्रिया को बल मिलता है, रुचि पैदा होती है और मनमें प्रसन्नता होती है।

इसका दूसरा धर्म कृमिनाशक होता है। आमाशय और आँतों के अन्दर रहने वाले सूक्ष्म जंतुओं की वजह से मनुष्य का पेट फूलता है। उन जंतुओं को यह नष्ट करता है जिसकी वजह से पेट का फूलना मिट जाता है।

लौंग का तीसरा गुण रक्त के अन्दर श्वेतकणों को बढ़ाने का होता है। इस गुण की वजह से शरीर के अन्दर रहनेवाले रोगमूलक कीटाणुओं का नाश होता है।

इसका चौथा धर्म चेतना शक्ति को जाग्रत करना है। इसका यह गुण हृदय, रक्ताभिसरण और श्वाच्छोश्वासके ऊपर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण त्रिदोष और सन्निपात में दी जानेवाली औषधियों में इसको मिलाया जाता है।

इसका पांचवाँ गुण शरीर के अन्दर की वायु नलियों का संकोच विकास और उसकी वजह से होनेवाली पीड़ा को कम करने का है। इसीसे दमा, इत्यादि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है।

इसका छठा गुण शरीर की दुर्गन्धि को नष्ट करने का है। इस गुण की वजह से कफ, लार और मुंह में आनेवाली दुर्गन्ध को दूर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

लौंग का सातवाँ गुण मूत्रल है। इस गुण की वजह से यह मूत्रपिंड के मार्ग की शुद्धि करता है। और शरीर के विजातीय द्रव्यों को मूत्र के द्वारा निकाल देता है।

इसका आठवाँ गुण यह है कि शरीर के किसी बाहरी भाग पर इसको लगाने से यह चेतना कारक, वेदना नाशक, वृणशोथक और व्रणरोपक असर बतलाता है।

मात्रा—लौंग की मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक की होती है।

उपयोगः—

कब्ज़ियत—१। रत्ती लौंग और १। रत्ती जेलप की गोली बनाकर देने से कब्जियत मिटती है।

गर्भवती क़ी वमन—लौंग को पीसकर मिश्री की चाशनी में मिलाकर चटाने से गर्भवती स्त्री की वमन और होवड़ मिटती है।

ज्वर—लौंग और चिरायता दोनों समान भाग लेकर पानी में पीसकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है और ज्वर के पश्चात् की निर्बलता भी मिट जाती है।

गठिया—लौंग के तेल की मालिश करने से गठिया की पीड़ा में लाभ होता है।

मस्तक पीड़ा—लौंग के तेल को ललाट पर मालिश करने से मस्तक पीड़ा मिटती है।

दन्तशूल—लौंग के तेल को दाँत की कोचर में रखने से दन्तशूल मिटता है।

स्नायविक मस्तकशूल—लौंग को जल में पीसकर गरम कर ललाट और कनपटियों पर लेप करने से स्नायविक मस्तकशूल मिटता है।

श्वास की दुर्गन्ध—लौंग को मुँह में रखने से मुँह और श्वास की दुर्गंध मिटती है।

दमा—लौंग, आकड़े के फूल और काले नमक की गोली बनाकर मुँह में रखकर चूसने से दमा और श्वास नलिका के रोग मिटते हैं।

नेत्ररोग—तांबे के पात्र में लौंग को पीसकर शहद मिलाकर अंजन करने से नेत्र के सफेद हिस्से के रोग मिटते हैं।

हृदय की जलन—लौंग को ठण्डे पानी में पीसकर छानकर मिश्री मिलाकर पीने से हृदय की जलन मिटती है।

गले की जलन—लौंग को आग के ऊपर सेककर खाने से गले की जलन मिटती है।

कुक्कुर खाँसी—लौंग को आग पर भूनकर शहद में मिलाकर चाटने से कुक्कुर खाँसी मिटती है।

नजले का मस्तकशूल—२ लौंग और ४ रत्ती अफीम को पानी के साथ पीसकर गरम करके ललाट पर लेप करने से नजले की मस्तक पीड़ा मिटती है।

अजीर्ण—लौंग और हरड़ का क्वाथ बनाकर उसमें थोड़ा सा सेंधा निमक डालकर पिलाने से अजीर्ण मिटता है और विरेचन होता है।

जी मिचलाना—लौंग को पानी के साथ पीसकर कुनकुने करके पिलाने से तृषा और जी का मिचलाना मिटता है।

नासूर—लौंग और हलदी को पीसकर लगाने से नासूर मिटता है।

वट्टाली

नाम:—

मलयालम—वट्टाली। लेटिन—Acalypha Hispida (एकेलिफा हिस्पिडा)।

वर्णन—यह जमालगोटे के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा छोटा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के बगीचों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फूलों को पानी में उबालकर उनका मुरब्बा बनाकर देने से प्रवाहिका और अतिसार में लाभ होता है।

रीड़ के मतानुसार इसके पत्तों को तम्बाकू के हरे पत्तों के साथ कूटकर चावल के माँड में मिलाकर लगाने से प्राचीन और हठीले व्रणों में लाभ होता है।

SHRI SANMATI L... श्री सन्मति पुस्तकाल जयपुर JAIPUR

वचगन्धा

नामः—

संस्कृत—वचगन्धा। हिन्दी—फोदड़वेल। मराठी—पीली भँवरी। गुजराती—गुम्मड़ वेल, गुम्बड़ वेल, वजवेल, वाड़फुदरड़ी। कच्छी-गुमड़ीयार, छटारी वेल। लेटिन—Ipomoea Obscura (इपोमिया आब्स्क्यूरा)।

वर्णन—यह एक जाति की लता होती है। इसकी बेलें बरसात के दिनों में बहुत दिखलाई देती हैं। इसके पत्ते हृदय की आकृति के और बोथरी अणीवाले होते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रङ्ग के और नीचे की तरफ से बैंगनी रङ्ग के होते हैं। इसका फल गोलाई लिये हुए, नोकदार ४ खंडवाला और ४ बीजवाला होता है। इसके पत्तों में वच के समान गन्ध आती है। इस वनस्पति की बेलें खेत की वाड़ों पर, रास्ते की बाजुओं पर और झाड़ियों में सारे भारत के अन्दर दिखलाई देती हैं। देहात के लोग फोड़े फुन्सी की औषधि की बतौर इस औषधि को पहिचानते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के पत्तों को पीसकर बदगाँठ और चाहे जैसे फोड़े फुन्सियों पर लगानेसे वे आराम हो जाते हैं।

बूटी प्रचार वैद्यक में लिखा है कि इस वनस्पति के पत्ते ढाई तोला और शुद्ध हरताल वरकी १ तोला, इन दोनों चीजों को कूटकर इनकी ६ माशे की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से कुष्ठ के रोगी को एक एक गोली प्रतिदिन २१ दिन तक खिलाई जाय और पथ्य में सिर्फ बिना नमक की चने की रोटी घीके साथ खिलाई जाय तो कुष्ठ आराम होता है। नपुंसकता के रोगी को इसकी एक एक गोली ७ दिन तक खिलाई जाय और पथ्य में रोटी, दाल, घी और मोदक खूब खिलाये जायँ तथा खटाई, तेल और गुड़ से ६ मास तक परहेज किया जाय तो नपुंसकता मिट जाती है। मगर यह खयाल रखना चाहिये कि हरताल एक उग्र औषधि है। इसका प्रयोग बिना उत्तम वैद्य के नहीं करना चाहिये।

जुकाम और सर्दी वालों को इसके पत्तों को मसलकर कुछ देर तक सुंघाने से सरदी मिट जाती है।

एन्सली के मतानुसार इसके पत्ते मनमोहक खुशबूवाले और लुआबदार होते हैं। इसके पत्तों को भून कर चूर्ण करके घी में मिलाकर मुख क्षत पर लगाने से बहुत लाभ होता है।
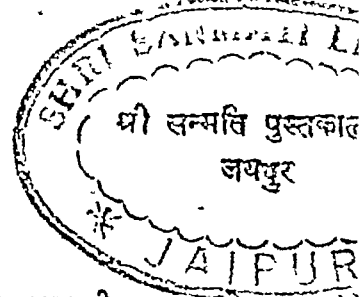
वटेइसा

नामः—

सिंहाली—वटेइसा। लेटिन—Drosera Burmanni. (ड्रोसेरा बरमानी)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसके पत्ते ६ से १६ मिलिमीटर तक लंबे होते हैं। इसके फूल सफेद और बीज काले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह पौधा एक शक्तिदायक चर्मदाहक पदार्थ होता है। यह शक्ति इसमें नेप्थोक्विनोन नामक पदार्थ की उपस्थिति की वजह से पाई जाती है।

वटदला

नामः—

संस्कृत—वटदला। तेलगू—काकूपला। कनाड़ी—चितिपला। तामील—कादिकाई। इंग्लिश—Jagged Jujube जागेड जुजुबे। लेटिन—Zizyphus Trinervia (झिझिफसट्रिनेरविया)।

वर्णन—यह बेर के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका वृक्ष छोटा होता है। इसके पत्ते २.५ से ७.५ सेण्टिमीटर तक लम्बे और १.६ से ३.८ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए पीले होते हैं। इसके फल पकने पर पीले हो जाते हैं। यह वृक्ष गुजरात, पश्चिमी घाट, मद्रास प्रेसिडेन्सी और कोइम्बत्तूर में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का काढ़ा रक्तकणों की विकृति से होनेवाली दुर्बलता (Cachexia) में रक्त को शुद्ध करने के लिये दिया जाता है और प्राचीन मैथुन सम्बन्धी नपुंसकता में धातु परिवर्तक औषधि की तरह इसका उपयोग होता है।

वनशेम्पगा

नामः—

संस्कृत—वनशेम्पगा। मलयालम—कनीला। तेगेलाग—पिरास। लेटिन—Evodia Lunur-Ankenda (इवोडिया लूनर एँकेण्डा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम और भूरी होती है। इसके बीज काले और चमकीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ की छाल को तेल के अन्दर उबाल कर कान्ति को बढ़ाने के लिये उपयोग में लिया जाता है। इसके पत्तों का रस ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है। इंडोचायना में यह पौधा एक कटु पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसकी छाल और पत्ते ज्वर के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं।

वनमल्लिका

नामः—

संस्कृत—वनमल्लिका। कनाड़ी—वरामल्लिगे। मलयालम—कट्टुमल्लिगेई। लेटिन—Jasminun Rottlerianum (जेसमिनम रोटलेरिएनम)।

वर्णन—यह एक जुही के वर्ग की सुगन्धित पुष्पोंवाली झाड़ीनुमा लता होती है। इसके फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसका फल चिकना और काला होता है। यह वनस्पति पश्चिमी पेनिन्सुला में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते एक्झिमा नामक कठिन चर्मरोग पर उपयोग में लिये जाते हैं।

वरसिंगी

नामः—

बंबई—वरसिंगी। मराठी—अस्सुल। कनाडी—रायभोटे। संन्थाल—गर्मा गोजा। तामील—ह्विरू-वट्ट। तेलगू—नक्किनी। उड़िया—गाजोरानी। इंग्लिश—Ceylon boxwood। लेटिन—Canthium didymum, Plectronia Didyma (कैंथियम डिडिमम और प्लेक्ट्रोनिया डिडिमा)।

वर्णन—यह हमेशा हरी रहनेवाली झाड़ी हिमालय में सिकिम के पास, खासिया जयंतिया पहाड़ पर तथा मद्रास प्रेसिडेंसी में पैदा होती है। इसके पत्तों में धनिये के समान गंध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हड्डी में मोच आ जाने पर इसकी छाल के चूर्ण का लेप किया जाता है। ज्वर में भी इसकी छाल लाभदायक मानी जाती है।

वल्लभोम

नामः—

मलयालम—वल्लभोम । लेटिन—Carallia Lucida (केरेलिया ल्यूसिडा) ।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नेल चोपरा के मतानुसार यह एक फल होता है जो संक्रामक व्रणों के ऊपर काम में आता है ।

वल्लिपान

नामः—

मलयालम—वल्लिपान । तिरहुत—कलाझा । लेटिन—Lygodium Flexuosum (लिगो-डियम फ्लेक्सुओसम) ।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक और दक्षिणी भारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा कफनिस्सारक होता है । तिरहुत में इसकी ताजी जड़ सरसों के तेल में औटा कर संधि-वात, गीली खुजली, व्रण, एक्झिमा, कटे हुए घाव और मोच के ऊपर लगाने और मालिश करने के काम में ली जाती है । विशेष तौर से इस तेल का उपयोग कारबंकल के ऊपर लगाने के लिए होता है ।

वागटी

नामः—

संस्कृत—गुच्छ करंज । बम्बई—वागटी, वाकेरी । कोंकण-वागटी । मराठी–वागटी, वाकेरी । तामील—ओक्काडिकोड्डी, । लेटिन—Wagatea spicata (वागेटिया स्पिकेटा) ।

वर्णन—यह एक मजबूत और कांटेवाली झाड़ी कटकरञ्ज की झाड़ी के समान होती है । इसकी डालियाँ लम्बी-लम्बी और तीक्ष्ण कांटों वाली होती है । इसके पत्ते कटकरंज के पत्तों के समान और फूल सिंदूरी रंग के मंजरियों की तरह होते हैं । इसकी फलियां बड़ी बड़ी होती हैं और हरएक फली में ४ या ५ बीज होते हैं । औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की जड़ निमोनिया रोग में उपयोगी होती है और चर्म रोगों पर इसकी छाल का लेप

करने से लाभ होता है। इसकी फलियों में कषायाम्ल कॉफी मात्रा में रहता है और इसकी छाल में एक जाति का रंग पाया जाता है।

वांजि

नामः—

तामील—वांजि। मलयालम—एट्टिरिप्पा। कनाड़ी—नानेल। लेटिन—Bassia malabarica (वेसिया मलेबारिका)।

वर्णन—यह एक महुए के वर्ग का मध्यम कद का वृक्ष पश्चिमी प्रायःद्वीप में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फूलों को पानी में भिगो कर गुर्दे की शिकायतों को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसके फल कृमिनाशक माने जाते हैं और वे सन्धिवात, पित्तविकार, क्षय और दमे के अन्दर दिये जाते हैं। इसके बीजों का तेल संधिवात के ऊपर मालिश करने के काम में लिया जाता है।

वामी

नामः—

सिंहाली—वामी। बरमा—माउ। लेटिन—Sarcocephalus Cordatus (सरकोसेफेल कोरडेटस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है जो मलाया और फिलिपाइन में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल पौष्टिक और ज्वरनाशक होती है।

विखारी

नामः—

हिन्दी—विखारी, वेहकलि। मराठी—विखारी, वेखली। बम्बई—येकदी। नेपाल—टिबिलोटी। तामील—ननजुनडाइ, टमाटा। तेलगू—रक्तामुकी। लेटिन—Pittosporum Floribundum (पिटोसपोरम फ्लोरिबंडम) Senecia Napaulensis (सेनेसिया नेपोलेन्सिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल हलके रंग की कड़वी और सुगंधित होती है। इसके पत्ते बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रंग के और

फल बटले के समान होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में पंजाब से लेकर सिकिम तक ५ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल कड़वी, सुगन्धित और नशीली होती है। यह ज्वरनाशक, कफनिस्सारक और सर्पविष को दूर करनेवाली होती है। इसकी प्रधान क्रिया त्वचा पर और श्वास नलिका की श्लेष्म त्वचा पर होती है।

ज्वर को नष्ट करने के लिये इसको २ से ५ रत्ती तक की मात्रा में देते हैं और सर्प विष को नष्ट करने के लिये इसको २५ रत्ती तक की मात्रा में देते हैं। प्राचीन ब्रोंकाइटीज में इसकी सूखी छाल का चूर्ण २ से ५ रत्ती तक की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता हुआ देखा गया है। यह एक उत्तम कफ-निस्सारक पदार्थ है। मगर कभी कभी इसके प्रयोग से रोगी को अतिसार या प्रवाहिका होने का डर रहता है।

ट्रावनकोर में इसको आधे चाय के चम्मच की मात्रा में कुष्ठ के रोगियों को खिलाया जाता है और इसको अरण्डी के तेल के साथ पीसकर सूखी खुजली पर लगाने के काम में लेते हैं।

इसका तेल धातु परिवर्तक, पौष्टिक और बाह्य-उत्तेजक होता है। चर्मरोगों के ऊपर इसको लगाने से बहुत लाभ पहुँचाता है। संधिवात, कुष्ट, मोच और रगड़, गृध्रसी, वात, छाती के रोग, क्षय और आँखों का दुखना इत्यादि रोगों पर इसका मालिश करने की सिफारिश की गई है और इसको १५ बून्द से लेकर २ ड्राम तक की मात्रा में देने से कुष्ठ, चर्म सम्बन्धी दूसरी बीमारियाँ, उपदंश की दूसरी अवस्था और प्राचीन संधिवात में बहुत लाभ होता है।

यद्यपि यह एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। फिर भी इसका अन्तःप्रयोग करते समय बहुत साव-धानी रखने की जरूरत है। ऐसा देखा गया है कि कुछ विशेष प्रकार के बीमारों पर इसका प्रयोग करने से उनकी पाकस्थली में जलन पैदा होकर दस्त और उल्टी शुरू हो जाती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष पर निरुपयोगी होती है।

वीरी बादरी

नामः—

तामील—वीरी बादरी। बरमा—ठाकुतमा। सिंहाली—डांगा। मलयालम—निर्पोन्याल्लम। लेटिन—Dolichandrone Spathacea (डोली चेंड्रोन स्पेथेसिया)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है जो मलाबार, त्रावनकोर, सुन्दरबन और लोअर बरमा में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीजों को सोंठ के साथ मिलाकर आक्षेप रोग के अन्दर देते हैं।

वेल्लाइनवल

नामः—

तामील—वेल्लाइनवल। मलयालम—पायन्नावेल। लेटिन—Eugenia Hemispherica (इगूनिया हेमिस्फेरिका)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का मुलायम छालवाला वृक्ष पश्चिमी प्रायःद्वीप में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल का काढ़ा पित्तविकार और उपदंश रोग में उपयोग में लिया जाता है।

वेल्लाकुरिंजी

नामः—

मलयालम—वेल्लाकुरिंजी। लेटिन—Psychotria Curviflora (सीचोट्रिया कर्विफ्लोरा)।

वर्णन—यह इपिकेकोना के वर्ग की एक वनस्पति होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ का काढ़ा संधिवात, निमोनिया, मस्तक की खराबी और आँख, कान तथा गले की बीमारियों में काम में लिया जाता है।

वेनकुरुंजी

नामः—

मलयालम—वेनकुरुंजी। लेटिन—Barleria Courtallica (बारलेरिया कोर्टेलिका)।

वर्णन—यह झाड़ीनुमा वनस्पति पश्चिमी प्रायःद्वीप में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ का काढ़ा संधिवात और निमोनिया में दिया जाता है और इसके पत्तों को तेल में उबालकर उस तेल को आँख और कान की बीमारी के काम में लेते हैं।

शकरकंद

नामः—

संस्कृत—स्वादुकन्दक, कन्दग्रंथि, पिंडालु, पिंडीतक, इत्यादि। हिन्दी—शकरकन्द, मितालु। गुजराती

शकरिया, रताळू। मराठी-रताली, । बंगाल-लालआळू, लाल शकरकन्दाळू। सिंघ-गाजर लाहोरी। उर्दू-शकरकन्द। फारसी-लर्दक, लाहोरी जमींकन्द। अंग्रेजी—Sweat Potato। लेटिन—Ipomoea Batatas (इपोमिया बटाटास)

वर्णन-शकरकन्द भारतवर्ष में सब दूर खाने के काम में लिया जाता है। इसकी गठानें लाल और सफ़ेद के भेद से २ प्रकार की होती हैं। इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर भारत वर्ष में बहुत वर्षों से बहुत बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से शकरकन्द मीठा, शीतल, कामोद्दीपक, मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाला तथा प्यास, प्रमेह और दाह को दूर करनेवाला होता है। यह कफ और वात को पैदा करता है।

यूनानी मत—यूनानीमत से इसकी गठानें मीठी मोटापा लानेवाली, प्रवाहिका को रोकनेवाली, और छाती तथा फेफड़े को नुकसान पहुंचानेवाली होती है।

शकरकन्द मृदु विरेचक भी माना जाता है।

मलाया में इसके कन्द का पेय बना कर ज्वर के अन्दर प्यास को बुझाने के लिये दिया जाता है। इसके कंद से उत्तम जाति की शराब तयार की जाती है। आलू की अपेक्षा इसमें शकर की मात्रा अधिक होती है मगर मांसवर्द्धक द्रव्य इसमें कम रहते हैं।

शंखाहूली (श्यामक्रान्ता)

नाम:—

संस्कृत-मेध्या, श्यामक्रांता, चंडा, शंखपुष्पी, शंख कुसुमा, पीतपुष्पी, रक्त पुष्पिका, नीलपुष्पी, विष्णुक्रान्ता, इत्यादि। हिन्दी-शंखाहुली, शंखपुष्पी, कौड़ियाला, श्यामक्रांता। गुजराती-शंखावली, घोळी शंखावली बंगाल-शंखाहुली, डानकुनी। मराठी—शंखावली। लेटिन—Evolvulus Alsinoides (इव्होल-वूलस अलसीनाइडस)।

वर्णन—शंखाहुली की छोटी छोटी बेलें जमीन के ऊपर फैली हुई रहती है। इसके पत्ते छोटे और धूसर रंग के होते हैं। इसके फूल लाल, सफ़ेद और नीले ३ रंग के होते हैं। ये फूल शंख की आकृति के, के होते हैं। फूलों के रंग के भेद से शंखा हुली भी लाल, सफ़ेद और नीली ३ प्रकार की होती है। इसके सारे पौधे पर सफ़ेद या भूरे रंग का मुलायम रवाँ रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शंखाहुली, बुद्धिवर्धक, आयु वर्द्धक, मानसिक रोगों को हटानेवाली, रसायन, कसेली, गरम, स्मरण शक्ति वर्द्धक, कांतिजनक, बल वर्द्धक, अग्नि दीपक, चरपरी, सारक,

शीतल, स्वर को उत्तम करनेवाली, मंगलकारक, अवस्थास्थापक, पाचक तथा कोढ़, कृमि विष, पित्त, अपस्मार और सब प्रकार के उपद्रवों को दूर करनेवाली होती है। सब प्रकार की शंखाहुली गुणों में समान होती है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार सफेद शंखाहुली बुद्धिवर्द्धक, शीतल, वशीकरण, सिद्धि दायक, रसायन; सारक, स्वर को सुन्दर करने वाली, किंचित उष्ण, कसेली, तथा स्मरण शक्ति, कांति और अग्नि को बढ़ानेवाली होती है। यह चरपरी, पाचक, अवस्था स्थापक, मंगलकारक तथा पित्त, विषदोष, मृगी, कफ कृमि, विष, कोढ़ त्रिदोष, ग्रहदोष और सब प्रकार के उपद्रवों को दूर करती है। लाल और नीली शंखाहुली के गुण भी इसी के समान ही होते हैं।

यूनानी हकीमों के मतानुसार यह वनस्पति मस्तिष्क और स्मरण शक्ति को बल देनेवाली होती है।

शंखाहुली की प्रधान क्रिया मनुष्य के मस्तिष्क पर होती है। आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान में मनुष्य के मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली जितनी वनस्पतियाँ बतलाई गई हैं उनमें ब्राह्मी, शंखाहुली और बच ये तीन सर्वप्रधान हैं। शंखाहुली मस्तिष्क को शक्ति देती है और उन्माद, मृगी, स्मरणशक्ति की कमजोरी, इत्यादि मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचाती है। इसका स्वरस शहद और कूट के साथ देने से सब प्रकार के पागलपन में लाभ पहुँचता है। इसके पंचांग की लुग्दी दूध के साथ देने से मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। बुद्धि में सुधार होता है और खाली पड़ा हुआ मस्तिष्क भर जाता है। सारक गुण होने की वजह से भी यह मस्तिष्क पर उत्तम असर पहुँचाती है। इसको थोड़े दिनों तक खाने से मनुष्य की स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। इसके चूर्ण की मात्रा ३ माशा और स्वरस की मात्रा २ तोले तक होती है।

धरमपुर के वकील नरभेराम गोविंदराम ने मधुप्रमेह के ऊपर इस वनस्पति का प्रयोग किया। वे अपने अनुभव से इस वनस्पति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि:—

"शंखाहुली से नवजीवन प्राप्त होता है। यह शरीर के प्रत्येक तत्व को नया जीवन प्रदान करती है। मस्तिष्क की भ्रमणा, अशक्ति इत्यादि में यह बहुत लाभ करती है। मुझे एक साधु ने यह औषधि बतलाई थी। उसके बाद मैंने स्वयं इसका काफी अनुभव किया। प्रतिदिन सबेरे इसके पंचांग का आधा तोला चूर्ण गाय के मक्खन के साथ लेना चाहिये। यद्यपि इससे मेरा मधुप्रमेह दूर नहीं हुआ पर मेरी कमजोरी बिल्कुल दूर हो गई और मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है।"

बूटी प्रचार वैद्यक में लिखा है कि शंखाहुली शरीर के बहते हुए रक्त को रोकती है। उँगली या अँगूठा पक गया हो तो उसमें लाभ पहुँचाती है। दमा और पुरानी खाँसी पर इसके पत्तों की सिगरेट बनाकर पीने से लाभ होता है।

महर्षि चरक ने "मेध्या विशेषेण तु शंखपुष्पी" लिखते हुए बतलाया है कि स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाली औषधियों में शखाहुली प्रधान है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि शंखाहुली मस्तिष्क और मज्जातंतुओं को बल देनेवाली, दीपन, आनुलोमिक, ज्वरनाशक, पौष्टिक और गर्भाशय को शक्ति देनेवाली होती है। ज्वर के अंदर अथवा ज्वर के बाद की कमजोरी को दूर करने के लिये पौष्टिक वस्तु की तरह इसका बहुत उपयोग कियो जाता है। ज्वर में जब रोगी बेसुध हो जाता है और प्रलाप करने लगता है उस समय उसके मस्तिष्क को शक्ति देने के लिये और उसे नींद आने के लिये शंखाहुली की फांट बनाकर देते हैं अथवा शंखाहुली को जीरा और दूध के साथ पीसकर देते हैं। बच्चों के विषम ज्वर में इसकी जड़ दी जाती है। आँतों के रोगों में और विशेषकर आमातिसार में इसके पंचांग की फांट बनाकर दी जाती है। दमा और जीर्ण श्वासनलिका की सूजन मे इसके पत्तों को चिलम में रखकर उनका धूम्रपान किया जाता है। रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसका स्वरस दिया जाता है।

डाक्टर खोरी लिखते हैं कि शंखाहुली मृदुविरेचक, रक्तशोधक, रसायन और ज्ञानतंतुओं को बल देनेवाली होती है। इसका ताजा रस उन्माद, कमजोरी, कण्ठमाला और अजीर्ण वगैरह रोगों में दिया जाता है।

डायमाक का कथन है कि वेदों के समय में शंखाहुली गर्भदाता मानी जाती थी परन्तु उसके बाद के समय में यह मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली मानी जाती है।

एंसली के मतानुसार तामील लोग इसके पत्ते, डँखल और जड़ों का निर्यास बनाकर चाय के आधे कप की मात्रा में दिन में दो बार आंतों के कुछ निश्चित रोगों को दूर करने के लिये देते हैं। अतिसार या पेचिश की बीमारी में यह एक बहुमूल्य औषधि मानी जाती है।

सीलोन में इसका पौधा कटुपौष्टिक और ज्वरनाशक माना जाता है।

मेडागास्कर में इसकी जड़ प्रवाहिका रोग को दूर करनेवाली मानी जाती है।

प्राचीन खाँसी और दमे के अन्दर इसकी सिगरेट बनाकर पीने से लाभ होता है।

बनावटें—

शंखपुष्पी चूर्ण—शंखाहुली के पंचांग को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये। यह शंखाहुली का चूर्ण कहलाता है।

इस चूर्ण को ३ माशे की मात्रा में दूध के साथ लेना चाहिये। जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक अपना निजी अनुभव बतलाते हुए लिखते हैं कि संस्कृत भाषा के कठिन विषय तथा अङ्गरेजी भाषा में मैट्रिक, बी० ए० वगैरह का अभ्यास करनेवाले अनेक विद्यार्थियों को यह चूर्ण पेटेंट औषधि की तरह दिया गया था। इन विद्यार्थियों का मगज जब पढ़ते पढ़ते थक जाता था और अधिक पढ़ने में जब अपने को असमर्थ पाते तब एक ब्रेनटॉनिक की तरह इस चूर्ण को ३ माशे की मात्रा में वे दूध के साथ पी लेते थे। जिससे उनके मस्तिष्क की सब थकावट उतर जाती थी। मस्तिष्क हलका फूल होकर जैसे कुछ न पढ़ा हो ऐसे नवीन उत्साह से फिर पढ़ते थे और जो कुछ वह पढ़ते थे वह उनको सभी प्रकार याद रहता था।

शंखिनी चूर्ण—गिलोय का सत्व, अपामार्ग की जड़, बायबिडंग, शंखाहुली का पंचांग, कूट, वच, शतावरी और हरड़ इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन सवेरे शाम तीन तीन माशे की मात्रा में दूध के साथ लेने से थोड़े ही दिनों में मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत तीव्र हो जाती है।

बुद्धिवर्धक घृत—जटामांसी, कड़ु, बिदारीकंद, मुलहटी, चन्दन, अनन्तमूल, वच, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरच, पीपर, हल्दी, दारूहल्दी, पटोलपत्र और सेंधा नमक इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये और उस चूर्ण को पानी के साथ चटनी की तरह पीसकर लुग्दी बना लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण का जितना वजन हो उतना ही घी, उतना ही दूध और उस चूर्ण के वजन से तिगुना शंखाहुली का रस मिलाकर हलकी आँच पर पकाना चाहिये। जब दूध और शंखाहुली का रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये।

महर्षि वाग्भट्ट लिखते हैं कि इस घी को एक से चार तोले तक की मात्रा में घी के साथ लेने से मनुष्य दीर्घायु, उत्तम बुद्धिवाला, महान धारणा शक्तिवाला, कांतियुक्त और प्रशस्त वाणीवाला होता है।

शकरपिटन

नाम:—

हिन्दी–शकर पिटन, सेहुंड, थूहर। पंजाब–शकर पिटन, थोर। राजपूताना–थोर। देहरादून–थोर। गढवाल–सुराई। लेटिन–Euphorbia Royleana (यूफोर्बिया रायलिएना)।

वर्णन–यह थूहर की एक जाति होती है। इसका छोटा वृक्ष होता है। यह हिमालय में सिंध से लेकर कुमाऊँ तक ६ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसके हर एक अङ्ग में दूध रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके दूधिया रस में कृमिनाशक और विरेचक तत्व रहते हैं।

शतावरी (शकाकुल)

नाम:—

संस्कृत–शतमूली, शतावरी, भीरुपत्री, महापुरुषदंता, सहस्त्रवीर्या, महौषधि इत्यादि। हिन्दी–सतावर, शतमूली, शकाकुल। बंगाल–शतमूली। बंबई–शतावरी। गुजराती–सतावरी। मराठी–सतावर। पंजाब–बोझीदान, सतावर। उर्दू–सतावर। फारसी–शकाकुल। अरबी—शकाकुल। लेटिन–Asparagus Racemosus (एस्पेरागस रेसीमोसस) A. Sarmentous (एस्पेरागस सारमेन्टोसम)।

वर्णन–शतावरी की लताएँ झाड़ों के ऊपर बहुत ऊँची चढ़ जाती हैं। इसमें थोड़े-थोड़े अन्तर पर तीक्ष्ण काँटे रहते हैं। इसके पत्ते बहुत महीन, सोया के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल सफेद और छोटे होते हैं। इसको दो जातियाँ होती हैं। एक बड़ी शतावरी और एक छोटी शतावरी। छोटी शतावरी की बेलों से बड़ी शतावरी की बेलें बड़ी रहती हैं। इस बेल के नीचे जमीन के अन्दर सैकड़ों जड़ें फैली हुई रहती हैं। एक-एक बेल के नीचे से दस-दस सेर तक शतावरी की जड़ें प्राप्त हो जाती हैं। इन जड़ों के ऊपर हरे रङ्ग का पतला छिलका रहता है। इस छिलके को निकाल देने पर भीतर से दूध के समान सफेद रङ्ग की जड़ें निकलती हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में प्रायः सभी दूर पैदा होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत–आयुर्वेदिक मत से शतावरी भारी, शीतल, कड़वी, मधुर, रसायन, बुद्धिवर्धक, अग्नि-दीपक, पौष्टिक, स्निग्ध, नेत्रों को हितकारी, गुल्मनाशक, अतिसार निवारक, कामोद्दीपक, स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, बलकारक तथा वात, रक्तपित्त और सूजन को दूर करनेवाली होती है।

राजनिघंटु के मतानुसार शतावरी, शीतल, कड़वी, मधुर, पित्त नाशक, कफ और वात को हरनेवाली वीर्यवर्धक और रसायन कर्म में श्रेष्ठ है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार शतावरी मधुर, शीतल, वीर्यवर्धक, कड़वी, रसायन, भारी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, दूध बढ़ानेवाली, अग्निदीपक, बलकारक, बुद्धिवर्धक, कामोद्दीपक, नेत्रों को हितकारी, पौष्टिक तथा पित्त, कफ, वात, क्षय, रुधिर विकार, गुल्म, सूजन और अतिसार को दूर करनेवाली होती है।

महर्षि चरक के मतानुसार शतावरी अवस्था-स्थापक, वृद्धावस्था से रक्षा करनेवाली और वीर्यवर्द्धक होती है।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार नहीं दीखनेवाले बवासीर को नाश करने में शतावरी की जड़ की कल्क (लुग्दी) समर्थ होती है इसको दूध के साथ लेना चाहिये।

बड़ी शतावर–निघंटु रत्नाकर के मतानुसार बड़ी शतावर हृदय को हितकारी, बुद्धिवर्धक, अग्निदीपक वीर्यवर्धक, शीतल, बलकारक, कामोद्दीपक, रसायन तथा बवासीर, संग्रहणी और नेत्र रोग को हरने-वाली होती है।

राज निघंटु के मतानुसार बड़ी शतावर वात कफ नाशक, कड़वी और रसायन कार्य में श्रेष्ठ होती है।

शतावरी के अंकुर कड़वे, वीर्यवर्द्धक, हलके, हृदय को हितकारी तथा त्रिदोष, पित्त, वातरक्त, बवासीर, क्षय और संग्रहणी रोग को नष्ट करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत–यूनानी मत से इसकी जड़ किंचित मीठी, कामोद्दीपक, मृदुविरेचक, कफनिस्सारक, स्तनों में दूध पैदा करने वाली और पौष्टिक होती है। यह गुर्दे और यकृत की बीमारियों को दूर करनेवाली होती है। यह सुजाक, पुरातन प्रमेह और मूत्र की जलन को दूर करती है।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार शतावरी मधुर, शीतल, भारी, दुग्धवर्द्धक, मूत्रल, वीर्यवर्द्धक, बलकारक

और कामोद्दीपक होती है। इसमें कुछ संकोचक धर्म भी रहता है। इसके ये सब धर्म इसकी ताजी जड़ों को उपयोग में लेने से स्पष्ट दिखलाई देते हैं।

शतावरी का प्रयोग वात, पित्त और कफ इन तीनों ही दोषों को शमन करने के लिये होता है। पित्त प्रकोप, अजीर्ण और दस्तों में इसको शहद के साथ मिलाकर देते हैं। वात रोगों में शहद, दूध और पीपल के साथ देते हैं और वेदनाग्रस्त अङ्गों पर इसका लेप करते हैं। कफ रोगों में शतावरी का पाक बनाकर देते हैं। जीर्ण ज्वर अथवा दूसरे किसी भी रोग में रोगी को शक्ति देने के लिये शतावरी की दूध के अन्दर पेज बनाकर उसमें मिश्री और जीरा मिलाकर देते हैं। इस पेज से रोगी की शक्ति बढ़कर उसके शरीर में सुर्खी पैदा होती है। पथरी की वेदना को कम करने के लिये इसकी जड़ को पानी के अन्दर पीसकर बनारस शक्कर के साथ देते हैं। गर्भाशय की पीड़ा को कम करने के लिये तथा मनुष्य की काम वासना को जाग्रत करने के लिये इसकी जड़ों को पीसकर दूध, शहद और पीपर के साथ देते हैं। शतावरी के अंकुरों की तरकारी अजीर्ण रोग में दी जाती है इससे पेट की वायु निकलती है। दस्त साफ होता है और अन्न पचता है। चेचक के अन्दर इसकी जड़ों की पेज बनाकर देते हैं।

मात्रा—गीली हालत में इसकी मात्रा १ तोले से २ तोले तक और सूखे हुए चूर्ण की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है।

इसकी जड़ और इसके पौधे का उपयोग चिकित्सा शास्त्र में ज्वरनाशक, शांतिदायक, मूत्रल, कामोद्दीपक, आक्षेप निवारक, रसायन और प्रवाहिका तथा अतिसार को दूर करनेवाली औषधि के रूप में किया जाता है। पशु चिकित्सा के अन्दर यह एक शान्तिदायक पदार्थ की तरह काम में ली जाती है।

उपयोगः—

वाजिकरण—शतावरी का पाक बनाकर सेवन करने से अथवा दूध के साथ इसके चूर्ण की खीर बना कर खाने से मनुष्य की कामशक्ति जाग्रत होती है और उसका वीर्य बढ़ता है।

सूखी खाँसी—शतावरी, अडूसे के पत्ते और मिश्री को औटाकर पीने से सूखी खाँसी मिटती है।

अनिद्रा—दूध में शतावरी के चूर्ण की खीर बना कर उस खीर में घी मिलाकर खिलाने से अनिद्रा के रोगी को नींद आ जाती है।

वात ज्वर—शतावरी के रस में गिलोय का रस और गुड़ मिला कर पीने से वात ज्वर मिटता है।

वात व्याधि—शतावरी से सिद्ध किये हुए तेल का मर्दन करने से वात व्याधि मिटती है।

मूत्र विकार—शतावरी और गोखरू का शर्बत बनाकर पीने से मूत्र विकार मिटते हैं। गोखरू के पंचांग के साथ शतावरी को औटाकर छानकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पिलाने से मूत्र की जलन और मूत्र की रुकावट मिटती है।

रक्तातिसार—गीली शतावरी को दूध के साथ पीस छानकर पीने से रक्तातिसार मिटता है। इसके स्वरस से घी को सिद्ध करके उस घी को पिलाने से भी रक्तातिसार मिटता है।

मस्तक शूल और आधा शीशी–शतावरी की ताजा जड़ को कूटकर उसका रस निकाल कर उस रस में समान भाग तिलों का तेल डालकर उस लेप को सिद्ध करके मर्दन करने से मस्तक पीड़ा और आधाशीशी मिटती है।

स्वर भंग–शतावरी, खरेंटी और शक्कर को शहद के साथ चाटने से स्वरभंग मिटता है।

मदात्यय–शतावरी का रस, मुलहठी की लुग्दी और दूध इन तीनों चीजों से सिद्ध किये हुए घृत को पीने से मदात्यय मिटता है।

वातरक्त–शतावरी के ४ सेर रस और एक सेर लुग्दी में ४ सेर दूध और सेर भर घी डाल कर उस घी को सिद्ध करके पिलाने से वातरक्त मिटता है।

दाह और शूल—शतावरी के रस में शहद और दूध मिलाकर प्रातःकाल में पिलाने से दाह, शूल और सब प्रकार के पित्त रोग मिटते हैं।

मूत्रकृच्छ्र–शतावरी की जड़ के क्वाथ में शहद और शक्कर मिलाकर पीने से त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

पथरी––शतावरी के रस में समान भाग गाय का दूध मिलाकर पिलाने से पुरानी पथरी बहुत जल्दी गल जाती है।

प्रदर––शतावरी के स्वरस में शहद मिलाकर पीने से पित्त का प्रदर मिटता है।

दूध की कमी—शतावरी के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करने से स्त्री के स्तनों में दूध बढ़ता है।

विष विकार—शतावरी की जड़के रस में दूध मिला कर पिलाने से सब प्रकार के विष की शांति होती है।

अपस्मार—एक तोला शतावरी का चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से अपस्मार में लाभ होता है।

रक्तविकार–शतावरी के स्वरस में मिश्री मिलाकर उसका शर्बत बनाकर उस शर्बत में केशर, इलायची, जायफल, जायपत्री इत्यादि मसाले मिलाकर एक से दो तोले तक की मात्रा में गाय के दूध के साथ मिलाकर ५।६ सप्ताह तक सेवन करने से रक्त शुद्ध होकर सब प्रकार चे रक्तविकार मिटते हैं।

बनावटें—

शतावरी घृत–शतावरी का कल्क (लुग्दी) ६४ तोले, घी ६४ तोले और दूध २५६ तोला, इन तीनों चीजों को मिलाकर हलकी आँच पर पकावें। जब सब चीजें जल कर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस घी को १ से २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ लेने से अम्लपित्त, रक्तपित्त, वात-पित्त के विकार, श्वास, मूर्छा, तृषा, इत्यादि अनेक प्रकार के रोग मिटते हैं।

फल घृत––मेदा, मजीठ, मुलेठी, कूट, त्रिफला, खरेंटी, बिलाईकन्द, काकोली, क्षीर-काकोली, असगन्ध, अजवायन, हलदी, हींग, कुटकी, नीलकमल, दाख, सफेद चन्दन का बुरादा, लाल चन्दन, इन सब चीजों को दो-दो तोला लेकर इनका चूर्ण करके फिर उस चूर्ण को पानी के साथ सिल पर पीस कर उसकी लुगदी बना लेना चाहिये। फिर उस लुग्दी को बड़ी कढ़ाही में रख कर उस पर ४ सेर बछड़े वाली

गाय का घी, १६ सेर शतावरी का रस और ४ सेर गाय का दूध डालकर मन्दी आँच से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जल कर घीं मात्र शेष रह जाय तब उसको छान कर बोतलों में भर लेना चाहिये।

इस घी को ६ माशे से लेकर २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ बलाबल के अनुसार खाने से बल, वीर्य और खून बहुत बढ़ता है। यह घी अत्यन्त वृष्य या वाजिकरण है। यह घी स्त्रियों के योनि रोग, हिस्टीरिया और उन्माद पर भी रामबाण असर बतलाता है। इसके सेवन करने से बन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती होती है।

शतावरी पाक—शतावरी की जड़ १० तोले, पवाँर की जड़ १० तोला, खरेंटी की जड़ १० तोला, इन तीनों चीजों को कूट पीस कर चूर्ण करके उस चूर्ण को पाव भर घी के अन्दर भूंज लेना चाहिये। ४५ तोला खोआ भी भूंजकर इसमें मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् लौंग १ तोला, इलायची १ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, गोखरू १ तोला, किसमिस २० तोला और बादाम की मगज २० तोला। इन सब चीजों को उसमें मिलाकर १०० तोले मिश्री की चाशनी बना कर उस चाशनी में सब औषधियों को अच्छी तरह मिला कर आधी-आधी छटाँक के लड्डू बना लेना चाहिये।

इसमें से एक एक लड्डू सबेरे शाम खा करके ऊपर से गाय का दूध पीने से शरीर खूब पुष्ट और बलवान होता है तथा सब प्रकार के रक्त रोग भी इससे आराम होते हैं।

शदाबुटी

नाम:—

बंगाल—शदाबुटी,। तामील–सगादम, कोंडाम । लेटिन–Secamone Emetica (सेकेमोन इमेटिका)।

वर्णन—यह एक प्रकार की झाड़ी नुमा बेल करनाटक, कोइम्बतूर, नैलूर और दक्षिण में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति एक तीव्र वमनकारक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

शफ्री

नाम:—

पंजाब शफ्री। लेटिन – Syringa Emodi (सिरिंजा इमोड़ी)।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति संकोचक और कड़वी होती है।

शानशोहाई

नामः—

पुश्तू – शानशोहाई । लेटिन – Perowskia Abrotanoides (पेरोस्किया एब्रोटे-नाइडस्) ।

वर्णन – यह बहु शाखी वनस्पति हिमालय में ८ हजार फीट से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का उपयोग एक शीतल और शांतिदायक औषधि की तरह किया जाता है ।

शहतूत

नामः—

संस्कृत – तूत, ब्रह्मकाष्ठ, मदसार, इत्यादि । हिन्दी – शहतूत, तूत । मराठी – तूत । बंगाल – तूत । बंबई – सेतूर तूत, अम्बोर । गुजराती – शेतूर । कोकण – अमोर । पंजाब – तूत, करन । उर्दू – श्याहेतूत । फ़ारसी – शिहातूत । लेटिन – Morus Indica (मोरस इंडिका) ।

वर्णन – शहतूत के वृक्ष बाग बगीचों में बहुत लगाये जाते हैं । इसके पत्ते अन्जीर के पत्तों की तरह तीन कंगूरेवाले और नीम के पत्तों के सदृश चारों ओर आरे के से चिन्हवाले होते हैं । इसके फल मंजरी की तरह लगते हैं । यह मंजरी अत्यन्त कोमल, मीठी और रसीली होती है । शहतूत दो प्रकार की होती है । एक काली और दूसरी सफेद । एक को लेटिन में मोरस इंडिका और दूसरी को मोरस एल्बा कहते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से पके हुए शहतूत भारी, शीतल, मधुर संकोचक, कुछ खट्टे, वात पित्त को नष्ट करने वाले और रक्तविकार तथा रक्तपित्त को नष्ट करनेवाले होते हैं । कच्चे शहतूत भारी, सारक, खट्टे, गरम और रक्तपित्त को पैदा करनेवाले होते हैं ।

यूनानीमत—यूनानी मत से शहतूत के पत्ते गीली खुजली और गले के व्रण में लाभदायक होते हैं । इसका फल खट्टा, मीठा, पौष्टिक, कामोद्दीपक, चर्बी बढ़ाने वाला, मूत्रल, कृमिनाशक, रक्तशोधक और भूख बढ़ानेवाला होता है । यह मस्तिष्क, हृदय और तिल्ली को शक्ति देता है । चेचक, गले के रोग, कटिवात, प्रवाहिका और आंतों के घाव में भी यह उपयोगी होता है । इसकी जड़ विरेचक होती है । इसके बीज पैरों के अन्दर फटी हुई बिवाई को दुरुस्त करते हैं ।

इस झाड़ के फलों का रस और इनका शरबत दाह को शमन करनेवाला, प्यास को दूर करनेवाला और कफनाशक होता है। ज्वर में एक शांतिदायक वस्तु की तरह इसका उपयोग होता है।

इसकी छाल कृमिनाशक और विरेचक होती है और इसकी जड़ भी कृमिनाशक होती है। इसके पत्तों का काढ़ा स्वर यंत्र की खराबी और उसकी सूजन में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

इसकी दूसरी जाति (Morus Alba) के फलों का रस ज्वर के अन्दर एक प्रसन्नता पैदा करनेवाले और शांतिदायक पदार्थ की तरह दिया जाता है। यूनानी हकीम इसके फल को अजीर्ण, माली खोलिया और गले की बीमारी के अन्दर उपयोग में लेते हैं। इसकी छाल विरेचक और कृमिनाशक होती है।

चीन में इसकी जड़ की छाल पौष्टिक, संकोचक और शक्तिदायक मानी जाती है। विशेष करके ज्ञान तंतुओं की खराबी में इसका उपयोग किया जाता है।

इसकी तीसरी जाति जिसको लेटिन में मोरस नायग्रा कहते हैं बलूचिस्तान में पैदा होती है। इसका फल ज्वर नाशक, मृदु विरेचक, शांतिदायक, और पौष्टिक होता है। इसका रस ज्वर सम्बन्धी बीमारियों में फिर से शक्ति प्राप्त करने के लिये एक बहुत उत्तम पेय समझा जाता है। यह प्यास को रोकता है और रक्त की गरमी को शान्त करता है। इसकी छाल विरेचक और कृमिनाशक मानी जाती है।

शंकेश्वर (छोटा गोखरू)

नाम:—

संस्कृत—अरिष्ट, भूलग्न, चाँद, कम्बुमालिनी, कीर्ति, शंखकुसुम, शंखमालिनी वनमालिनी। बंगाल—वनओकरा। बंबई-शंकेश्वर। गुजराती—गाडरीयून। मराठी—शंखेश्वर। हिन्दी—छोटा गोखरू, बनओकरा, शंखाहुली, शंकेश्वर। सिंध–गोखरू कलाँ। तामील-मरलूमत्त। तेलगू-पारसबपू। आसाम-अगारा। इंग्लिश-Cock lebur। लेटिन Xanthium Strumarium (एक्सेंथियम स्ट्रूमरियम)।

वर्णन–यह वर्षजीवी क्षुप हिन्दुस्तान में प्रायः सब दूर पैदा होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। ये करीब ४ इंच लम्बे, डंखल युक्त और हृदयाकृति होते हैं। इसके पत्तों के दोनों तरफ रुएँ होते हैं। इसके फूल डाली के सिरे पर लगते हैं। इसका बीजकोष अण्डाकृति, चपटा और मुलायम होता है। इसके पत्तों का चूर्ण बालों को रँगने के काम में लिया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतानुसार यह वनस्पति तीक्ष्ण, कसेली, विरेचक, मज्जावर्धक, कृमिनाशक, शीतल, विषनाशक, धातुपरिवर्तक, पौष्टिक, पाचक, ज्वरनिवारक, क्षुधावर्धक, स्वरशोधक, कांतिवर्द्धक और स्मरणशक्ति को जाग्रत करनेवाली होती है। यह धवलरोग, पित्त, मृगी, ज्वर और जहरीले

इसके अतिरिक्त कृमिशंख, क्षुद्रशंख और घोंघा ये तीन प्रकार के शंख आयुर्वेद में और माने गये हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शंख पौष्टिक, बलकारक, कड़वा, खारा, शीतल, मलरोधक, नेत्रों को हितकारी, क्रांतिवर्द्धक तथा आंख की फूली, पंक्तिशूल, गुल्म, संग्रहणी, तारुण्यपीठिका और श्वास को नष्ट करनेवाला होता है। दक्षिणावर्त शंख त्रिदोष, कामला, विषदोष, क्षय नेत्ररोग और ग्रह की पीड़ा को दूर करता है।

शंख नेत्रों को हितकारी, शीतल, हलका तथा पित्त, कफ और रुधिर के विकारों को दूर करता है।

शंख चरपरा, सारक, शीतल, पौष्टिक, कामोद्दीपक तथा गुल्म, शूल, श्वास और विष के विकारों को हरता है।

क्षुद्र शंख शीतल, नेत्र रोग नाशक, स्फोटक को दूर करनेवाला, शीतज्वर नाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचक होता है।

घोंघा चरपरा, कड़वा, मधुर, शूलनाशक, दीपन और पित्त को दूर करनेवाला होता है।

शंख को शुद्ध करने की विधि—शंख के छोटे २ टुकड़े करके एक पोटली में बाँध कर दोला यन्त्र के अन्दर गोमूत्र और नीबू के रस में ४ प्रहर तक हलकी आँच में औटाने से वह शुद्ध हो जाता है। ५ सेर गौमूत्र में आधा पाव नीबू का रस और १ सेर सेंधा निमक मिलाना चाहिये। ५ सेर गौमूत्र में १ सेर तक शङ्ख शुद्ध हो सकते हैं।

शंख की भस्म करने की विधि—शंख को अग्नि में लाल कर करके नीबू के रस में तब तक बार बार बुझाना चाहिये जब तक कि वह बिखर कर टुकड़े २ न हो जाय। फिर एक सिकोरे में घीगुवार के गूदा के बीच में उस शंखके चूर्ण को रख कर उसके ऊपर भी घीगुवार का गूदा रख देना चाहिये। फिर उस सकोरे का मुँह कपड़ मिट्टी से बन्द करके गजपुट में फूँक देना चाहिये। इससे एक ही बार में उत्तम और सफेद रंग की भस्म तयार हो जाती है।

यह शंख भस्म सलोनी, शीतल और ग्राही होती है। संग्रहणी, नेत्र का फूला, पेट की पीड़ा और तारुण्य पीठिकाओं को दूर करती है। इस भस्म में केलशियम का बहुत अंश रहता है। अतः केलशियम की कमी से शरीर के अन्दर जितने विकार पैदा होते हैं उन सब में यह बहुत लाभ पहुंचाती है। इसमें कुछ फास्फोरसका अंश भी रहता है। मन्दाग्नि, तिल्ली की वृद्धि, यकृतकी खराबी तथा पेट में होने वाले दूसरे विकारों में भी यह भस्म बहुत लाभ पहुँचाती है। बच्चों के ब्रेंको निमोनिया अथवा डिब्बे की बीमारी में साम्हर के सींग की भस्म के साथ इसको देने से बहुत लाभ होता है।

उपयोगः—

संग्रहणी—शंख भस्म और सेंधा निमक इन दोनों को समान भाग में लेकर ३ माशे की मात्रा में शहद के साथ लेने से संग्रहणी में लाभ होता है।

पंक्तिशूल—शंख भस्म को ८ रत्ती की मात्रा में गरम जल के साथ देने से पंक्तिशूल मिटता है।

अर्जुन रोग—शंख भस्म को शहद में मिला कर आंखों में अञ्जन करने से अर्जुन रोग मिटता है।

अर्बुद—शंख का चूर्ण और मूली की भस्म का लेप करने से कफ की गठान और अर्बुद मिटता है।

शाखापलीता

नाम—

बम्बई–शाखापलीता। लेटिन–Asbestos (एसबेस्टोस)।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा ने इसका वर्णन खनिज पदार्थों में किया है। उनके मतानुसार इस वस्तु का लेप व्रणों के ऊपर किया जाता है।

शालपर्णी

नामः—

संस्कृत–शालिपर्णि, स्थिरा, सौम्या, दीर्घमूला, अंशुमती, सुधा, शोथघ्नी, कीट विनाशिनि, एकमूला, इत्यादि। हिन्दी–सरिवन, शालपर्णी। बंगाल–शालपानी। मराठी–रानमाल, सालवण। गुजराती–सालवन, सालपर्णी। काठियावाड़—एक पानी पांदड़ियो। पंजाब–शालिपर्णी। उर्दू–सालवन, । तामील–पुल्लाँदि। तेलगू–गीता नरम। लेटिन–Desmodium Gangeticum (डेसमोडियम गॅजेटिकम)।

वर्णन–इस वनस्पति के क्षुप बरसात के दिनों में बहुत देखने में आते हैं। इसके पौधे एक से लेकर चार फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते लम्बे और मरोड़दार नोकवाले होते हैं। इनका आकार काठियावाड़ी घोड़े के कान की तरह होता है। इस वनस्पति के फूल कुछ बैंगनी छाया लिये हुए गुलाबी रङ्ग के बहुत छोटे-छोटे होते हैं। इसकी फलियें पतली चपटी, बाँकी, नोकदार और ३, ५ तथा ८ संधियोंवाली होती हैं। इनकी हरएक संधि में एक-एक बीज रहता है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में रास्तों की बाजू पर, नदी नालों के किनारों पर तथा खेतों की बाड़ों पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शालपर्णी तिक्त रसवाली, पचने में भारी, गरम, रसायन, कामोद्दीपक, स्वादिष्ट, कृमिनाशक, मेदवर्द्धक और आँतों को संकुचित करनेवाली होती है। यह मोती ज्वर Typhoid) और दूसरे ज्वर, ज्वर की वजह से होनेवाली मानसिक खराबी, वात, प्रमेह, बवासीर,

सूजन, दमा, खाँसी, त्रिदोष, प्यास, वमन, अतिसार, कफ, पित्त को नष्ट करनेवाली और गर्भ के अन्दर भ्रूण की रक्षा करनेवाली होती है। आधाशीशी रोग में भी इसका उपयोग होता है।

यूनानी मत से इसकी जड़ प्रवाहिका को रोकनेवाली, पौष्टिक, पित्त विकार को दूर करनेवाली, जीर्ण ज्वर में लाभदायक और छाती तथा फेफड़ों की पुरानी बीमारियों में लाभदायक तथा वमन और मिचलाहट को दूर करनेवाली होती है।

शालपर्णी आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग दशमूल क्वाथ का एक अंग है। दशमूल क्वाथ प्रसूति के समय होनेवाली सब प्रकार की बाधाओं को दूर करके शरीर को सुरक्षित रखता है। शालपर्णी की जड़ और पत्तों का काढ़ा काली मिर्च के साथ रक्त के दोषों को सुधारने के लिये दिया जाता है यह एक सुप्रसिद्ध औषधि है। चिरायते के साथ शालपर्णी की जड़ को औटाकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है। नाभि, बस्ति और योनि के ऊपर शालपर्णी की जड़ का लेप करने से मूढ़ गर्भ बाहर निकल जाता है। श्लेष्म त्वचा के अन्दर सूजन पैदा होकर अगर ज्वर आ जाय तो उसमें इस वनस्पति का उपयोग लाभदायक होता है।

शालपर्णी की एक जाति और होती है जिसको काठियावाड़ में त्रिपानी पांदड़ियों और लेटिन में डेसमोडियम डिफ्यूसम (Desmodoum Diffusum) कहते हैं। इसके तीन-तीन पत्ते साथ लगते हैं। इसके गुण धर्म भी शालपर्णी के समान ही होते हैं।

शिरगोला

नाम:—

संस्कृत–दुग्धपाषाण। हिन्दी–शिरगोला। बंगला–शिरगोला। मराठी–शिरगोला। गुजराती–दूधियोपाणो।

वर्णन–यह एक जाति का पत्थर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से शिरगोला रुचिकारक, गर्म, ज्वर नाशक तथा पित्त, हृदय रोग, शूल, खाँसी और आध्मान को दूर करता है।

शिकाकाई

नाम:—

संस्कृत–सातला, भूरिफेना, आमला, चर्मकषा, दीप्ता, पत्रघना, विमला, विषानिका इत्यादि। हिन्दी–चीकाकाई, शीकाकाई, कोंचि, रीठा। बंगाल–बनरीठा। बंबई–शीका, शीकाकाई। मराठी—शीकाकाई। गुजराती —चीकाकाई। तामील –सियाक्काई। तेलगू—सिकाया। लेटिन—Acacia Rugata (एकेसिया रुग्टा) A-Concinna (एकेसिया कोन्सिना)

वर्णन—यह एक बड़ी और कांटेदार झाड़ी होती है। इसकी डालियाँ भूरी और सफेद धब्बेवाली होती हैं। इसकी फली लंबी होती है। उसकी रुचि अरीठे के समान होती है मगर कुछ अधिक खट्टी और अधिक तीक्ष्ण होती है। इसके पत्ते खट्टे और रोचक होते हैं। इसकी एक-एक फली में ६ से १० तक बीज रहते हैं। इसकी फलियों में साबुन के काम में आनेवाले झाग ११ प्रतिशत रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी फलियाँ कड़वी, चरपरी, शीतल, पचने में हलकी, विरेचक, कृमिनाशक, प्रवाहिका को रोकने वाली और बाधा नाशक होती हैं। ये भूख को बढ़ाती हैं। वात को दूर करती हैं और कफ, पित्त, दाह, रक्त रोग, धवल रोग, उदर रोग, बवासीर तथा अग्नि विसर्प रोगों में लाभ पहुँचाती हैं। यह हृदय के लिये पौष्टिक वस्तु है। इसके पत्ते पित्त विकार को दूर करते हैं और विरेचक होते हैं।

शिकाकाई की फली उत्तेजक, कफ नाशक, वामक और मृदुविरेचक होती है। शरीर के ऊपर इसकी क्रिया अरीठे के समान होती हैं। इससे नाड़ी के ठोके कम होते हैं और पेशाब की तादाद बढ़ती है। इसके पत्ते खट्टे, यकृत को उत्तेजित करनेवाले और विरेचक होते हैं। इमली के बदले में इनका उपयोग किया जाता है।

प्राचीन कफ रोगों में कफ को पतला करने के लिये और श्वास की रुकावट को कम करने के लिये २०गुने पानी में इसकी फाँट बनाकर एक से दो औंस तक की मात्रा में दी जाती है। इस फाँट से दस्त साफ होता है। इसके पत्तों को काली मिरच के साथ देने से विरेचन होता है और कभी-कभी वमन भी होती है। इससे यकृत की क्रिया सुधर कर पित्त दस्त की राह से बाहर निकल जाता है। तेलंग प्रांत में इस रीति से इसके पत्तों का बहुत उपयोग किया जाता है। यकृत की विकृतिवाले रोगियों को भोजन में खटाई लाने के लिये इमली की जगह शिकाकाई के पत्ते देते हैं।

इसकी फलियों के काढ़े से सिर धोने से सिरकी जुएँ और लीकें मर जाती हैं और बाल लम्बे हो जाते हैं। इसके काढ़े में कपड़े की बत्ती को डुबोकर उसको बच्चों के गुदाद्वार में रखने से दस्त साफ होकर दस्त की गाँठें निकल जाती हैं।

चीन और जापान में इसकी फलियाँ वमन कारक, मूत्रल और मृदु विरेचक मानी जाती हैं। कब्जियत, गुर्दे की तकलीफ और मूत्राशय की बीमारियों में इनका उपयोग होता है। कुष्ठ, गुदाद्वार की खुजली, एक्झिमा, फोड़ा और काँख बलाई पर इसको लगाने के काम में लेते हैं। इसके बीज स्त्रियों की प्रसूति के समय प्रसूति को निर्विघ्न करनेवाले माने जाते हैं।

सुश्रुत और योग रत्नाकर के मतानुसार इसका फल सर्प विष की चिकित्सा में उपयोगी होता है मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प विष की चिकित्सा में निरुपयोगी है।

उपयोग—

आफरा—इसके कोमल पत्तों का हिम या फाँट बनाकर पिलाने से आफरा मिटता है। इसके पत्तों को पीसकर गरम करके पेट पर लेप करने से भी आफारा मिटता है और हलके दस्त लगते हैं।

तिल्ली के रोग—इसके कोमल पत्तों का क्वाथ पिलाने से तिल्ली और यकृत की रस क्रिया सुधर जाती है।

सूखी खाँसी—इसकी फली के चूर्ण की फक्की देने से सूखी खाँसी मिटती है।

कामला रोग—इसकी फली से वमन कराने से ऐसा कामला जो हृदय की रुकावट से पैदा नहीं हुआ हो मिट जाता है।

ज्वर—इसकी फलियों को औटाकर पिलाने से दूषितवायु से पैदा हुआ ज्वर मिट जाता है।

शिंगटिक

नाम:—

हिंदी—शिंगटिक। पंजाब—शीया, शेवा, शिंगटिक। लेटिन—Lonicera Glauca (लोनीसेरा ग्लोका)।

वर्णन—यह वनस्पति उत्तरी पश्चिमी हिमालय में १२ हजार से लेकर १६ हजार फीट की ऊँचाई तक तथा गढ़वाल और कुमाऊँ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इंडोचायना में इस वनस्पति के पत्ते और फूल मैथुन सम्बन्धी बीमारियों के लिये एक चमत्कार पूर्ण औषधि समझे जाते हैं।

शिवलिक

नाम:—

उत्तरपश्चिमी प्रान्त—शिवलिक। पुश्तु—संजित। इंग्लिश—Bohemian Olive (बोहमिन ओलिव)। लेटिन—Elaeagnus Hortensis (इलेगनस हारटेनसिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई ५ से १० फीट तक होती है। इसके पत्ते २·५ से ७·५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल पीले रङ्ग के और खुशबूदार होते हैं। इसके फल २ सेंटिमीटर लम्बे और लाल होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में ५ हजार फीट से १० हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीजों का तेल जुकाम और खाँसी के अन्दर उपयोगी होता है। इसके फूलों का रस सांघातिक ज्वरों के अन्दर देने से तत्काल लाभ पहुँचाता है।

शियाहकान्ता

नामः—

हिन्दी—शियाहकान्ता, आगला, एला, अलरेल। बंगाल—कुचिकान्ता, शियाहकान्ता। राजपूताना—आला। गढ़वाल—खिनकारी। पंजाब—आला, किकरी। सिंध—हजेरो। तामील—इगाई, कंइाई। लेटिन—Mimosa Rubicaulis (मिमोसा रूबीकोलिस)।

वर्णन—यह लजालू के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके फूल गुलाबी और सफेद रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का शीत निर्यास बवासीर के अन्दर उपयोगी होता है। इसके पत्तों को कुचलकर जले हुए स्थान पर लगाने से शांति मिलती है।

शिवलिंगी

नामः—

संस्कृत—लिंगिनी, बहुपत्रा, ईश्वरी, शिववल्ली। हिन्दी—शिवलिंगी, ईश्वरलिंगी, गरुनरु। बम्बई—कवाला। बङ्गाल—शिवलिंगनी, माला। मराठी—शिवलिंगी। गुजराती—शिवलिंगी। तेलगू—लिंगाडोंडा। लेटिन—Bryonia Laciniosa (ब्रायोनिया लेसिनोसा)। इंग्लिश—Bryoni (ब्रायोनी)।

वर्णन—शिवलिंगी की लताएँ बरसात के दिनों में बहुत पैदा होती हैं। इसके पत्ते झिल्लीदार होते हैं। ये ४ से लेकर ६ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसके नर फूल गुच्छों में और नारीफूल अलग २ लगते हैं। इसके फल पकने पर लाल रङ्ग के होते हैं। उन पर सफेद रङ्ग की धारियाँ होती हैं। हर एक फल में कड़वा रस और छः-छः बीज रहते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में और विशेष कर कच्छ काठियावाड़ में पैदा होती है। इसके बीज शिवलिंग के आकार के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से शिवलिंगी चरपरी, गरम, दुर्गन्धित, रसायन, सर्वसिद्धिदायक दिव्य, वशीकरण और पारे को बाँधनेवाली होती है।

पित्तप्रकोप और पित्तज्वर के अन्दर इस बेल का स्वरस दूध और शक्कर के साथ मिला कर देते हैं। इससे दस्त साफ होता है।

जिस स्त्री के बालक जीवित न रहते हों अथवा जिस स्त्री के बालक पैदा न होते हों, उसके लिये शिव-लिङ्गी के बीज २७, पीपल की जटा ६ माशा, गजकेशर ६ माशा। इन तीनों चीजों को पीस कर सब की तीन टिकड़ियाँ बना लें। स्त्री ऋतुधर्म से शुद्ध होकर स्नान करके कपिला गाय के दूध की खीर करे और उस खीर में गाय का घी और शक्कर डाले और उसमें ३ बीज शिवलिङ्गी के और एक टिकड़ी दवा की मिला दे। फिर पति के समीप जाकर ऋतुदान लेकर ऊपर से इस खीर को खाय। इस प्रकार तीन दिन तक करने से उसको गर्भ रहता है।

शिवनिंब

नामः—

संस्कृत—शिवनिम्ब। कनाड़ी—शिवमल्लि। पंजाब—नील। लेटिन–Indigofera Aspalathoides (इंडिगोफेरा एस्पेलेथाइडस)।

वर्णन—यह नील के वर्ग की वनस्पति कर्नाटक और लंका में बहुत पैदा होती है। इसका क्षुप झाड़ी-नुमा होता है। इसके पत्ते लंबे गोल, बरछी आकार के, जुड़मा और फूल फीके लाल रंग के होते हैं। इसकी फ़ली आधा इंच लम्बी होती है। हर एक फ़ली में ६ से लेकर ८ तक बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

शिवनिम्ब शीतल, स्निग्ध, रक्तशोधक, रक्तसंग्राहक, व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है।

इसके पत्ते और फूल शीतल और शान्तिदायक होते हैं। इसका काढ़ा कुष्ठ और केन्सर तथा दूसरे फोड़ों के अन्दर पिलाया जाता है। इसकी जड़ों को मुँह में चबाने से दन्तशूल बन्द होता है और मुख क्षत में लाभ होता है। इसके सारे पौधे को पीस कर मक्खन में मिला कर लगाने से सूजन, बादी की वेदना और अर्बुद की सूजन बिखर जाती है। इसके पत्ते फोड़ों के ऊपर लगाने के काम में लिये जाते हैं। अग्नि-विसर्प रोग में इसकी जड़ों से सिद्ध किया हुआ तेल सिर के अन्दर डाला जाता है।

कोमान के मतानुसार उपदंश और दूसरे चर्म रोगों को दूर करने के लिये जो तेल तयार किया जाता है उसमें यह वनस्पति भी एक प्रधान द्रव्य की तरह डाली जाती है। इस वनस्पति के पंचांग का काढ़ा एक धातु परिवर्तक औषधि की तरह उपदंश की दूसरी अवस्था के तथा दूसरे चर्म रोगों के बीमारों को दिया गया मगर उसका परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहा।

शिलारस

नामः—

संस्कृत—कपिनामा, कपितेल, सिल्हक, तुरुष्क, धूम्रवर्ण, तेलपर्णी, वृकधूम, अश्मपुष्प, इत्यादि।

हिन्दी–शिलारस । बंगाल—शिलारस । गुजराती—शिलारस । मराठी—शिलारस । तामील–नेरिआरि-शिप्पाल । तेलगू–शिलारसम् । लेटिन–Liquidamber orientalis (लिक्विडेम्बर ओरिएण्टेलिस) Altingia excelsa (अलटिंङ्गिया एक्सेल्सा) ।

वर्णन—शिलारस एक वृक्ष का सत्व होता है । यह वृक्ष आसाम, भूटान और पेगू में पैदा होता है । मगर फिर भी यह सुगन्धित पदार्थ विशेष करके अरबस्तान से भारतवर्ष में आता है । यह शहद की अपेक्षा गाढ़ा, भूरे रंग का, नरम, और मीठा होता है । नवीन शिलारस में मिट्टी के तेल की तरह गन्ध आती है । मगर पुराना होने पर यह सुगन्धित हो जाता है । इसका स्वाद तीक्ष्ण रहता है । बहुत से व्यापारी इसके अन्दर डम्मर का तेल मिला देते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शिलारस कांतिवर्द्धक, स्वादिष्ट, कामोद्दीपक, वीर्यवर्द्धक, सुगन्धित, चरपरा, कड़वा, चिकना तथा कोढ़, कफ, पथरी, भूतबाधा, ज्वर, मूत्राघात, पसीना, खुजली, दाह और त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है ।

राजनिघण्टु के मतानुसार शिलारस कड़वा, सुगन्धित, चरपरा, स्निग्ध तथा कोढ़, कफ, पित्त, पथरी, मूत्राघात, भूतबाधा और ज्वर को नष्ट करता है ।

भावप्रकाश के मतानुसार शिलारस स्वादिष्ट, चरपरा, स्निग्ध, गरम, वीर्यवर्द्धक, कांतिकारक, कामोद्दीपक तथा कण्डु, पसीना, कोढ़, ज्वर, दाह और ग्रह की पीड़ा को दूर करता है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से शिलारस कडुवा, पौष्टिक, शान्तिदायक, कफनिस्सारक और जुकाम, गले के रोग, फेंफड़े के रोग, मस्तिष्क के रोग, गुर्दे के रोग, तिल्ली के रोग, कटिवात, कर्णशूल और अत्यधिक रजस्राव की बीमारी में लाभ पहुँचाता है । इसका लेप गीली खुजली और श्वेत कुष्ठ पर लाभ पहुँचाता है ।

शिलारस अण्ड वृद्धि (Hydrocele) के रोगों पर और अण्डकोषप्रदाह पर एक उत्तम औषधि है । अण्डकोषों के ऊपर इसका लेप करके उसके ऊपर तम्बाकू के सूखे हुए पत्ते अथवा धतूरे के पत्ते बाँधे जाते हैं ।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार शिलारस कफनाशक, मूत्रल, उत्तेजक, शोथघ्न, कृमिनाशक, खुजली को अच्छा करने वाला, व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है । इसका उत्तेजक और कफनाशक धर्म बहुत सौम्य होता है । इसके सेवन से मूत्रपिंड में उत्तेजना पैदा होती है । कभी कभी मूत्रपिंड में इससे दाह भी पैदा हो जाती है । पेट में जाने के पश्चात् यह फुफ्फुस के मार्ग और मूत्रपिण्ड के मार्ग से बाहर निकलता है ।

प्राचीन कफ रोग और क्षय रोग में शिलारस को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है । इससे फेफड़ों को ताकत मिलती है । पुराने सुजाक में इसको मुलैठी के साथ देते हैं । इस रोग में शिला रस की क्रिया एक पीवनाशक और बलदायक द्रव्य की तरह होती है ।

चर्मरोगों में शिलारस एक बहुत उत्तम वस्तु है । एक भाग शिलारस को ४ भाग मीठे तेल में मिला

कर इस मिश्रण को खुजली और जलनयुक्त फोड़े फुन्सियों पर उपयोग में लिया जाता है। इससे खुजली चलना कम हो जाती है और चर्मरोग जल्दी मिट जाते हैं पर कभी कभी इससे मूत्र पिण्ड में दाह भी पैदा हो जाती है। क्षयजनित ग्रन्थियों के ऊपर इसका लेप लाभदायक होता है। इससे ग्रंथियों की जगह की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है और क्षय के कीटाणु मर जाते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

शिलारस के अन्दर एक उड़नशील तेल, बेंझाइक एसिड (लोभान के फूल) और सिनेमिक एसिड २० प्रतिशत पाया जाता है। यह सिनेमिक एसिड रंगरहित गन्धरहित, और रवेदार द्रव्य होता है। दालचीनी के अन्दर भी यह पाया जाता है।

शिलारस को शुद्ध करने की विधि—शिलारस को रेक्टिफाइड स्पिरिट के अन्दर अच्छी तरह से मिलाकर छान लेना चाहिये। छानने के पश्चात् इसको खुला रख देना चाहिये जिससे उसके अन्दर से स्पिरिट का अंश उड़ जाय। इस प्रकार शिलारस शुद्ध हो जाता है। शुद्ध शिलारस का रङ्ग कुछ भूरा और पीला और इसका स्वाद तथा गंध उत्तम होती है।

शिलाजीत

नामः—

संस्कृत—शिलाजतु, शैलनिर्यास, गिरिज, शैलेय, अश्मोत्थ इत्यादि। हिन्दी—शिलाजीत। गुजराती—शिलाजीत। मराठी—शिलाजीत। बंगाल—शिलाजतु। पञ्जाब—शिलाजीत। अरबी—हाजर उलमूसा। तामील—उरेंग्यम्। अङ्गरेजी—Asphalt (आस्फल्ट)। लेटिन—Asphaltum Punjabinum (एस्फेल्टम पञ्जाबिनम्)।

वर्णन—शिलाजीत यह पत्थरों का मद होता है। ज्येष्ठ आषाढ़ के महिने में जब पर्वत सूर्य की किरणों से अत्यन्त तप्त होकर लाख के समान प्रकाशमान रस को शिलाओं से बहाते हैं तब वह रस एकत्रित होकर शिलाजीत के नाम से प्रसिद्ध होता है। यह शिलाजीत ४ प्रकार का होता है। सुवर्ण, रजत, ताम्र और लोह। सुवर्ण शिलाजीत जपा के फूल के समान लालवर्ण का होता है। रजत शिलाजीत सफेद रङ्ग का होता है। ताम्र शिलाजीत मोर की गर्दन के रङ्ग का होता है और लोह शिलाजीत काले रङ्ग का होता है।

शिलाजीत के अन्दर मिलावट बहुत होती है। असली शिलाजीत बड़ी मुश्किल से हाथ आता है। पहाड़ी लोग एक प्रकार के बन्दर की विष्टा को जो रङ्गरूप में शिलाजीत के ही समान होती है तथा और भी कई दूसरी वस्तुओं से नकली शिलाजीत तयार करके लोगों को बेच देते हैं। ये लोग इस कार्य में इतने चतुर होते हैं कि इनका बनाया हुआ नकली शिलाजीत असली शिलाजीत की परीक्षाओं में भी खरा उतर

जाता है। इसलिये इस वस्तु को प्राप्त करते समय बहुत ही सावधानी रखने की जरूरत होती है। साधारणतया असली शिलाजीत की परीक्षाएँ निम्नलिखित तरीकों से की जाती हैं।

(१) शिलाजीत के जरा से टुकड़े को लकड़ी के अङ्गारे पर रखते ही अगर वह लिंगेन्द्रिय की तरह खड़ा हो जाय तो उस शिलाजीत को असली समझना चाहिये।

(२) शिलाजीत को जरा सा लेकर अङ्गारे पर डालने से अगर धुआँ न उठे तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

(३) शिलाजीत को एक तिनके की नोक में लगाकर पानी के कटोरे में डालना चाहिये। अगर वह सबका सब तार २ होकर जल के नीचे बैठ जाय तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

(४) शिलाजीत को नाक से सूँघने पर अगर उसमें गौमूत्र के समान गन्ध आवे और वह रङ्ग में काला तथा पतले गोंद के समान हो, वजन में हलका और चिकना हो तो उसे उत्तम समझना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शिलाजीत कड़वा, चरपरा, कसैला, कटुपाकी, रसायन, योगवाही तथा कफ, मेद, पथरी, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, वातरक्त, बवासीर, पांडुरोग, अपस्मार, उन्माद, सूजन, कुष्ठ, उदररोग और कृमिरोग को नष्ट करता है।

सुवर्ण शिलाजीत—मीठा, कड़वा, कसैला, शीतल, पचने में चरपरा और वातपित्त के रोगों को मिटानेवाला होता है।

रजत शिलाजीत—चरपरा, शीतल और विपाक में मधुर होता है। कफ और पित्त के रोगों को मिटाता है।

ताम्र शिलाजीत—तीक्ष्ण और उष्ण होता है और कफ के रोगों को मिटाता है।

लोह शिलाजीत—हर एक रोगों को मिटाता है। यह ३ प्रकार का होता है। जिनमें एक गिद्ध की पाँख जैसा होता है यह कड़वा, सलोना, विपाक में चरपरा और शीत वीर्य होता है। यह सबमें उत्तम गिना जाता है। दूसरा, गौमूत्र जैसी गन्धवाला और लाल होता है। यह स्निग्ध, मृदु तथा पचने में भारी, कड़वा, कसेला और शीतल होता है। तीसरा, गूगल जैसा होता है। यह कड़वा, सलोना, विपाक में कटु और शीत वीर्य होता है।

रस, उपरस, पारा, रत्न और लोहे में जो गुण होते हैं, वे ही सब गुण शिलाजीत में होते हैं। क्योंकि शिलाजीत धातुओं का सार होता है। जो गर्मी पाकर पहाड़ों पर बह आता है। शिलाजीत बुढ़ापे और मृत्यु को जीतनेवाला, वमन, कम्पवायु, २० प्रकार के प्रमेह, पथरी, मधुमेह, सुजाक, कफक्षय, श्वास, वातज बवासीर, पीलिया, मृगी, उन्माद, पागलपन, सूजन, कोढ़ और कृमि रोग को नष्ट करनेवाला होता है। किसी किसी आचार्य ने इसको श्लीपद, (फीलपांव) गुल्म और विषम ज्वर को नष्ट करनेवाला भी लिखा है। फिर भी यह खास तौर से मधुमेह की एक चमत्कारिक औषधि मानी गई है।

शिलाजीत और मधुमेह—

महर्षि वाग्भट्ट लिखते हैं कि—मधुमेहत्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः।
शिलाजतु तुलामद्यात् प्रमेहार्तः पुनर्नवः॥

वैद्यों के द्वारा त्यागा हुआ और असाध्य समझा हुआ मधुमेह का रोगी भी अगर उचित मात्रा में नियम पूर्वक ४०० तोले शिलाजीत (करीब ५ वर्ष में) खाले तो फिर उसका सारा चोला नया होजाय।

महर्षि चरक लिखते हैं कि इस पृथ्वी पर ऐसा कोई साध्य कहाने वाला रोग नहीं है जिसे शिलाजीत उस अवस्था के योग्य अनुपानों के साथ विधिपूर्वक प्रयोग करने पर बलात् नष्ट न करता हो। यह स्वस्थ पुरुषों को भी विपुल बल देता है।

शिलाजीत का प्रयोग ३ प्रकार का होता है।

(१) पर (२) मध्य और (३) अवर। ७ सप्ताह तक शिलाजीत का निरन्तर प्रयोग करना पर प्रयोग कहलाता है। ३ सप्ताह तक इसका निरन्तर प्रयोग करना मध्य प्रयोग कहलाता है और १ सप्ताह का लगातार प्रयोग अवर प्रयोग होता है। जो बलशाली और बहुदोष होते हैं उन्हें ७ सप्ताह तक, जो मध्यबल और मध्य दोष होते हैं उन्हें तीन सप्ताह तक और जो अल्पबल और अल्पदोष होते हैं उन्हें १ सप्ताह तक इसका प्रयोग करना चाहिये।

शिलाजीत की मात्रा—महर्षि चरक के मतानुसार शिलाजीत की मात्रा ३ प्रकार की होती है। इसकी अधिकतम मात्रा एक पल, मध्यम मात्रा आधा पल और कम से कम मात्रा एक कर्ष होती है। मगर यह प्राचीन युग की मात्रा है। आजकल के लोग इस मात्रा को बरदाश्त नहीं कर सकते। आजकल के युग में इसकी अधिकतम मात्रा १२ रत्ती और कम से कम मात्रा २ रत्ती की होती है।

शिलाजीत को शुद्ध करने की विधि—शिलाजीत को हमेशा शोधकर ही प्रयोग में लाना चाहिये। सबसे पहिले इसे जल के अन्दर शुद्ध करना चाहिये। अशुद्ध शिलाजीत में रेत, पत्थर, पत्ते इत्यादि बहुत सी मलिनताएँ रहती हैं। उन्हें स्वच्छ जल में घोल कर पृथक कर लेना चाहिये। जितनी अशुद्ध शिलाजीत हो उससे दुगुना गरम जल लें। उस गरम जल में अशुद्ध शिलाजीत के छोटे छोटे टुकड़े करके डाल दें। इससे जो असली शिलाजीत होगी वह जल में घुल जायगी और मैल नीचे बैठ जायगा। तब ऊपर के जल को नितार कर वस्त्र से छान लें और दूसरे लोह पात्र में डाल दें। ये पात्र घाम में ही रक्खे होना चाहिये। जब इसका घन भाग ऊपर आ जाय और मैल नीचे बैठ जाय तब ऊपर के घन भाग को तीसरे लोहपात्र में डाल दें। इस प्रकार जब पात्र के नीचे मैल बैठना बन्द हो जाय तब उसे घाम में सूखने देना चाहिये और फिर सब पात्रों के मैल को एकत्रित करके इसी पद्धति के अनुसार फिर उसको लोहपात्रों में गरम जल में घोल कर उस मैल में बची हुई शिलाजीत को भी निकाल लें। यह शिलाजीत को निर्मल करने का विधान है।

इस जल शोधित शिलाजीत को अगर वात रोगों को दूर करने के प्रयोग में लेना हो तो वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ की भावनाएँ देना चाहिये। अगर कफनाशक उपयोग में लेना हो तो कफनाशक द्रव्यों के

स्वाथ की भावनाएँ देना चाहिये और अगर पित्तरोगों को दूर करने के उपयोग में लेना हो तो पित्तनाशक द्रव्यों की भावनाएँ देना चाहिए। फिर भी साधारणतया गाय का दूध, त्रिफला का काढ़ा और भांगरे का स्वरस इन तीनों चीजों की भावनाएँ देने से शिलाजीत शुद्ध हो जाती है।

शिलाजीत के सेवन की विधि—शिलाजीत को सेवन करने के पूर्व वमन, विरेचन, इत्यादि क्रियाओं के द्वारा अगर शरीर को शुद्ध किया जाय तो वह विशेष लाभ पहुँचाती है। शिलाजीत को सवेरे ही सूर्य निकलने के बाद दूध अथवा शहद के साथ लेना चाहिये।

शिलाजीत और भिलावे को सेवन करने वालों को एक समान पथ्य, परहेज पालन करने पड़ते हैं। सवेरे का खाया हुआ शिलाजीत पच जाने पर भात, दूध, जौ की रोटी या जौ की बनी हुई कोई चीज खाना चाहिये।

शहद, पीपल और शिलाजीत के अन्दर १ रत्ती निश्चंद्र अभ्रक भस्म मिला कर सेवन करने से बीसों तरह के प्रमेह निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। शिलाजीत की मात्रा अपने बलाबल के अनुसार १ से लेकर २ माशे तक की लेना चाहिये।

१ या २ माशे शिलाजीत को मिश्री मिले हुए दूध के साथ लेने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। शुद्ध शिलाजीत, वंगभस्म, छोटी इलायची के दाने और नीली झांई का वंशलोचन, इन चारों चीजों को समान भाग लेकर शहद के साथ घोटकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से सवेरे शाम दो दो गोली दूध के साथ लेने से बहुमूत्र, प्रमेह, कमजोरी और धातु विकार आराम हो जाते हैं।

शिलाजीत का वर्णन करते हुए कर्नलचोपरा लिखते हैं कि—

"शिलाजीत यह एक पहाड़ों की चट्टानों से स्राव होनेवाला मद है। जो भारतवर्ष के कुछ पहाड़ों में मई और जून के महीने में जब कि वायुमण्डल बहुत गर्म होता है, पत्थर की चट्टानों से निकलता है। यह विशेषकर हिमालय के निचले हिस्से में हरिद्वार, शिमला और नेपाल के अन्दर निकलता है। यह बड़ी तादाद में काठमांडू से भारतवर्ष में आता है। शिलाजीत की एक सफेद जाति भी होती है और ऐसा कहा जाता है कि यह आबूपर्वत के अन्दर पाई जाती है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जो शिलाजीत नेपाल से कलकत्ते में आकर सफेद शिलाजीत के नाम से बिकती है वह एक भिन्न वस्तु है और जिसको हिन्दु चिकित्साशास्त्र में शिलाजीत बतलाया है उससे उसका कोई मेल नहीं है।

प्राचीन हिन्दू लेखकों ने शिलाजीत की ४ जातियाँ बतलाई हैं। (१) स्वर्ण शिलाजीत जो कि लाल होती है। (२) रजत शिलाजीत जो कि सफेद होती है। (३) ताम्र शिलाजीत जो कि नीली होती है और (४) लोह शिलाजीत जो कालापन लिये हुए भूरी होती है। इनमें से लाल और नीली शिलाजीत बहुत दुष्प्राप्य होती है। विशेष रूप से इसकी चौथी जाति ही अधिक प्राप्त होती है और वही चिकित्साशास्त्र में प्रधानरूप से काम में ली जाती है। कर्नल चोपरा ने इसी चौथी जाति के ऊपर अपने प्रयोग किये हैं।

शिलाजीत प्राचीन हिन्दू चिकित्साशास्त्र के अन्दर एक महत्वपूर्ण वस्तु मानी गई है और आर्य चिकित्सक भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों के ऊपर इसका प्रचुरता से उपयोग करते आये हैं। क्षय, पुरानी

खांसी, दमा, पाचन यंत्रों की खराबी, गुदा और मूत्राशय की पथरी, जलोदर, मज्जातंतुओं के रोग, गलितकुष्ठ, मधुप्रमेह और हड्डी टूटने के ऊपर यह एक बहुत उपयोगी वस्तु मानी गई है। चर्मरोगों के अन्दर, सूजन के अन्दर तथा कीटाणु और परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये भी इसका बहुत उपयोग होता आया है।

मुसलमान चिकित्सकों ने ३ शताब्दी पूर्व शिलाजीत को अपने मटेरियामेडिका में सम्मिलित किया और सब प्रकार के विषों के दर्प को नष्ट करने के लिये तथा दूसरी बीमारियों में इस वस्तु की उपयोगिता को स्वीकार किया। इसीके समकक्ष एक और पदार्थ जिसको वे मोमिया कहते हैं जो ईरान तथा अरबस्तान के पहाड़ों में पैदा होता है उसको भी सूजन, गठिया और जोड़ों की सूजन पर वे बाह्यप्रयोग के काम में लेते हैं।

रासायनिक संगठन—शिलाजीत को साधारण दृष्टि से देखने पर उसमें वानस्पतिक द्रव्य, गहरा लाल रंग का गोंद की तरह चिकना पदार्थ, वनस्पति के तंतु और रेशे, रेतो और पार्थिव द्रव्य रहते हैं। इसका गोंदीय पदार्थ पानी के अन्दर घुल जाता है और रेत, पत्ते, वानस्पतिक तंतु इत्यादि वस्तुएँ पानी के अन्दर जम जाती हैं। जिनको फलालेन के कपड़े में छानकर अलग कर दी जाती है। इस प्रकार शोधित किया हुआ शिलाजीत गाढ़े शहद की तरह हो जाता है।

शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार के शिलाजीत में गोमूत्र के समान गंध आती है। यह कुछ कड़वा, कुछ चरपरा, कुछ खारा और संकोचक स्वाद का होता है। शुद्ध किया हुआ शिलाजीत शत प्रतिशत पानी के अन्दर घुलनशील होता है।

सबसे पहिले हूपर ने शिलाजीत के रसायनिक तत्वों विश्लेषण किया। उसके जो परिणाम दृष्टिगोचर हुए वे इस प्रकार हैं:—

पानी	८·८५	नाइट्रोजन	१·०३
आर्गेनिक मैटर	५६·२०	चूना	७·८०
खनिज पदार्थ	३४·९५	पोटास	९·०७
		फास्फोरिक एसिड	·१६

हमने (कर्नल चोपरा) स्वयं भी साधारण शिलाजीत का सावधानी के साथ विश्लेषण किया। उसके परिणाम नीचे लिखे नक्शे से मालूम होते हैं।

आर्गेनिक तत्व	अशुद्ध शिलाजीत	शुद्ध शिलाजीत
आर्द्रता (Moisture)	१२·५४	२९·०३
बेंझाइक एसिड (लोभान के फूल)	६·८२	८·५८
हिप्यूरिक एसिड	५·५३	६·१३
फ़ेटी एसिडस्	२·०१	१·३६

रेज़िन एण्ड वेक्सि मैटर	३·२८	१·४४
गोंद	१५·५९	१७·३२
एल्यूमिनाइडस्	१९·६१	१६·१२
वानस्पतिक द्रव्य	२८·५२	२·१५

खनिज तत्व

आर्द्रता (Moisture)	१२·५४	२९·०३
जलाने पर कम हुआ तत्व (Loss on Ignition)	६४·५८	२२·६३
राख	२२·८८	१८·३४
सिलिका (Silica)	४·६०	२·६९
लोहा	·५१	·६४
एल्यूमिना	२·२६	२·६१
चूना	६·८३	४·८२
पोटास	४·६०	३·८१
सल्फ्यूरिक एसिड	·६४	·९७
क्लोराइड	·२६	·५७
फास्फोरिक एसिड	·२८	·२४
नाइट्रोजन	३·६४	३·३६

उपरोक्त नक्शों से शुद्ध और अशुद्ध शिलाजीत के तत्वों की तुलना करने से मालूम होता है कि इन दोनों के अन्दर पाये जानेवाले तत्वों में विशेष अन्तर नहीं है। अशुद्ध शिलाजीत में पत्ते, बालू इत्यादि चीजें करीब ३० प्रतिशत के होती है। जब कि शुद्ध शिलाजीत में यह सिर्फ ½ प्रतिशत पाई जाती है। शुद्ध और अशुद्ध शिलाजीत के अन्दर पाया जानेवाला महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ शुद्ध शिलाजीत के एक्स्ट्रेक्ट में बेंझाइक और हिप्यूरिक एसिड के रवे पाये जाते हैं वहाँ अशुद्ध शिलाजीत के तैयार किये हुए एक्स्ट्रेक्ट में ये तत्व नहीं पाये जाते। शुद्ध शिलाजीत के अन्दर बेंझाइक एसिड और हिप्यूरिक एसिड विशेषरूप से रहते हैं। सम्भवतः अशुद्ध शिलाजीत को पानी के अन्दर शुद्ध करते समय उनके अन्दर का बेंझाइक और हिप्यूरिक एसिड में रहनेवाला नमक पानी के साथ शिलाजीत में ही रह जाता है।

चिकित्सा विज्ञान में शिलाजीत की उपयोगिता:—

आर्य चिकित्सा शास्त्रियों ने मधु प्रमेह के सम्बन्ध में जितनी औषधियों का आविष्कार किया है उन सब में शिलाजीत एक प्रथम श्रेणी की वस्तु मानी गई है। यह कहा जाता है कि इसके प्रभाव से प्यास, अत्यधिक मूत्रश्राव, दाह और थकावट बहुत शीघ्रता से दूर होते हैं। शक्कर को पचाने की क्रिया में

भी यह बहुत-महत्त्वपूर्ण मदद करती है। आर्य चिकित्सक इस कार्य के लिये शिलाजीत को दूध अथवा अंगूर के रस के साथ दिया करते हैं। इस कार्य के लिये शुद्ध शिलाजीत को वे शालल, चिरोंजी, असन, बबूल, हरड़ और बला के क्वाथ की भावनाएँ भी देते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इन भावनाओं से शिलाजीत की शक्ति बढ़ती है।

हमनें (कर्नल चोपरा) शुद्ध शिलाजीत को मधु प्रमेह के कई रोगियों पर यह देखने के लिये प्रयोग किया कि इस औषधि के उनकी शरीर क्रिया और उनके रोग पर क्या-क्या प्रभाव होते हैं। उनका २४ घंटे में होने वाला कुल पेशाब सावधनी के साथ इकट्ठा करके रक्खा जाता था। प्रतिदिन उसका नाप किया जाता था और प्रतिदिन उसके अन्दर रहनेवाली शक्कर की भी परीक्षा की जाती थी। समय-समय पर उनके रक्त की भी परीक्षा की जाती थी और निश्चित टाइम पर उनका वजन भी लिया जाता था।

अस्पताल में प्रवेश करने के पश्चात् इन लोगों के खाने पर भी पूरी निगाह रक्खी जाती थी। इनको मधुमेह के रोगियों के अनुकूल भोजन दिया जाता था।

इन रोगियों को शिलाजीत की मात्रा गोलियों के रूप में धीरे-धीरे बढ़ाई गई जो कि अधिकतम रूप में २४ घंटे के अन्दर ३० ग्रेन तक कर दी गई। 'सावधानी पूर्वक इन मधु प्रमेह के रोगियों को निरीक्षण करने के पश्चात मालूम हुआ कि शिलाजीत को ५ ग्रेन से लेकर १० ग्रेन तक की मात्रा में दिन में तीन बार लगातार ८ से १२ दिन तक देने पर भी उनके पेशाब में जाने वाली शक्कर पर तथा उनके रक्त में रहनेवाली शक्कर पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उनकी पेशाब की तादाद भी बिलकुल कम न हुई और प्यास, थकावट इत्यादि दूसरे लक्षणों में भी कुछ सुधार नहीं हुआ। उनकी कारबोहाइड्रेड को पचाने की शक्ति में भी कुछ उन्नति नहीं हुई। इन बीमारों के अन्दर इन्स्यूलीन तत्व की—जो कि पेशाब से शक्कर जाने को बन्द करता है—कुछ भी वृद्धि नहीं हुई और न मधुमेह सम्बन्धी दूसरे लक्षणों की कोई कमी हुई।

शिलाजीत के बाह्य उपचार के सम्बन्ध में हिन्दू चिकित्सकों का यह विश्वास है कि इसका बाह्य प्रयोग कीटाणु नाशक, परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला और वेदना को शमन करने वाला होता है। शिलाजीत के अन्दर ये सब गुण उसके अन्दर रहनेवाले बेंझाइक एसिड पर निर्भर है और यह एक मानी हुई बात है कि बेंझाइक एसिड हलकी चर्मदाहक होती है और इस दृष्टि से मुड़े हुए और कुचले हुए शरीर के अङ्ग पर उसका लेप करने से लाभ होती है। इसी बेंझाइक एसिड की वजह से शिलाजीत में भूख बढ़ाने की और अजीर्ण तथा अम्लपित्त को दूर करने की शक्ति भी रहती है। यकृत के ऊपर इसकी उत्तम क्रिया होने से यह कामला रोग में भी लाभ पहुँचाती है। इसमें कुछ नशीला असर भी रहता है। सब प्रकार के कॉलिक उदरशूल में यह अपना आक्षेप निवारक असर बतलाती है और मांस पेशियों की मरोड़ में तथा दमे के अन्दर भी यह लाभ पहुँचाती है। शिलाजीत के ये सब गुण इसमें रहनेवाले बेंझाइक एसिड और उसके लवण तत्वों की वजह से होते हैं। हिन्दू चिकित्सक तीव्र और प्राचीन ब्रोंकाइटीज में शिलाजीत का व्यवहार करते हैं और इन्हीं बीमारियों में पाश्चात्य चिकित्सक बेंझाइक एसिड का उपयोग

करते हैं। खास करके बच्चों और वृद्ध तथा निर्बल व्यक्तियों के ऊपर जिनको कि पतला कफ अधिक मात्रा में निकलता है यह विशेष रूप से उपयोग में ली जाती है। यह एक निस्सन्देह बात है कि यह कफ निस्सारण की क्रिया को बढ़ाती है।

वैद्य लोग शिलाजीत को गठिया, संधिप्रदाह और फुफ्फुस सम्बन्धी क्षय रोग में दिया करते हैं। ३०-४० वर्ष पहिले पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अन्दर भी बेंझाइक एसिड और उसके लवण, उपरोक्त रोगों के अन्दर बहुत उपयोग में लिये जाते थे। लेकिन अब इन रोगों में बेंझाइक एसिड और उसके क्षारों का उपयोग नहीं किया जाता। देशी चिकित्सक शिलाजीत का उपयोग एक मूत्रल और पथरी को गलानेवाली औषधि की तरह भी करते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा में इन्हीं कामों के लिये बेंझाइक एसिड का उपयोग किया जाता है।

इन सब बातों से यह तथ्य निकलता है कि शिलाजीत की जो कुछ महत्ता है वह इसमें पाई जाने वाली बेंझाइक एसिड और बेंझोएट्स की वजह से है जो कि इसमें बड़ी मात्रा के अन्दर पाये जाते हैं और यही इसके प्रधान और क्रियाशील तत्व हैं।

सन् १९३० में रायने शिलाजीत का एक्स्ट्रेक्ट बना कर पशुओं के ऊपर उसका अनुभव किया। उससे मालूम हुआ कि इसका इंजेक्शन देने से खून का दबाव (Blood-Pressure) बढ़ता है और श्वासोच्छ्वास क्रिया को उत्तेजना मिलती है। उनका खयाल है कि बेंझाइक एसिड और बेंझोएटस नाड़ी और खून के दबाव के ऊपर कोई असर नहीं बतलाते। इससे मालूम होता है कि शिलाजीत में कोई और दूसरा ऐसा क्रियाशील तत्व जरूर रहता है जो अभी तक रासायनिक विश्लेषण के द्वारा हम लोगों की जानकारी में नहीं आया। उनके मतानुसार इसमें एक अज्ञात श्वास-क्रिया को उत्तेजित करनेवाला तरल पदार्थ (Pyridine) होना चाहिये।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि शिलाजीत का सम्पूर्ण और विधियुक्त रासायनिक विश्लेषण कर लिया गया। इसके अन्दर गोंदीय पदार्थ, एल्यूमिनाइड्स, राल, फेटीएसिड और बड़ी मात्रा में बेंझाइक एसिड और हिप्यूरिक एसिड तथा उनके क्षार पाये जाते हैं। चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से इसके अन्दर पाये जाने वाले सबसे अधिक क्रियाशील तत्व बेंझाइक एसिड और बेंझोएटस् हैं। हिन्दू चिकित्सक भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों में इस औषधि से जो लाभ उठाते हैं वे इन्हीं तत्वों पर मुनहसिर है। लेकिन मधुप्रमेह के अन्दर पेशाब में जानेवाली शक्कर पर तथा रक्त में रहने वाली शक्कर पर शिलाजीत का कोई प्रभाव नहीं होता और यह विश्वास कि शिलाजीत मधुप्रमेह की एक उत्तम औषधि है बिलकुल गलत है।

उपयोगः—

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात—एक मासे शिलाजीत को पीपल और इलायची के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात मिटता है।

वातगुल्म—क्षुद्र पंचमूल के क्वाथ में दूध डालकर उसमें शुद्ध शिलाजीत ८ रत्ती की मात्रा में मिला कर पीने से वातगुल्म मिटता है।

प्रमेह—शुद्ध शिलाजीत को त्रिफला और शहद के साथ चाटने से प्रमेह मिटता है।

कुम्भकामला—गौमूत्र में शुद्ध शिलाजीत मिला कर पीने से कुम्भकामला मिटता है।

वातरक्त—पंचकर्म से शुद्ध होकर अगर मनुष्य गिलोय के क्वाथ से शुद्ध किये हुए शिलाजीत का लंबे समय तक सेवन करे तो वातरक्त और कुष्ट नष्ट हो जाते हैं।

बनावटें—

चंद्रप्रभा वटी—कपूर, दूधिया बच, नागरमोथा, मीठा चिरायता, गिलोय, देवदारू, हलदी, दारूहल्दी अतीस, पीपलामूल, चित्रक, धनियाँ, त्रिफला, चव्य, बायबिडंग, गजपीपर, सोंठ, पीपर, मिर्च, सोनामक्खी की भस्म, जवाखार, सज्जी खार, सेंधा निमक, काला निमक और बीड़ नमक। ये सब औषधियाँ तीन-तीन माशे। निसोथ, दंती, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची के बीज, और वंशलोचन, ये सब दस दस माशे। कांतिसार २० माशे, मिश्री ढाई तोला, शुद्ध शिलाजीत ५ तोला, शुद्ध गूगल ५ तोला।

इनमें से एक नंबर से लेकर ३१ औषधियों को सोनामक्खी को छोड़ कर कूट पीस कर कपड़े में छान लें। इसके बाद उस पिसे छने चूर्ण में कान्तिसार, सोनामक्खी की भस्म, शिलाजीत और गूगल को मिला कर पानी दे दे कर खरल में घोटें। गूगल को छटांक भर जल में घोल कर जरा गरम करके लेई सी कर ली जाय तो अच्छी तरह मिल जायगी। जब सब दवाएँ एक दिल हो जायँ तब रत्ती २ या दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये।

यह चंद्रप्रभा वटी सब प्रकार के रोगों को नष्ट करनेवाली तथा बीसों प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पथरी को आराम करनेवाली होती है।

शिलाजीत वटी—शुद्ध शिलाजीत ४ माशे, लोह भस्म २ माशे, सोनामक्खी भस्म २ माशे। इन तीनों चीजों को खरल करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से एक एक गोली सबेरे शाम मक्खन या मलाई मिला कर खाने से प्रमेह और सफेद धातु का गिरना बन्द हो जाता है।

शीशम

नामः—

संस्कृत—शिंशपा, कृष्णसारा, पिपला, युगपत्रिका, कपिला, डलपत्री, तीव्रधूमका, श्वेतशिंशपा, कपिला-शिंशपा, पीता, इत्यादि। हिन्दी—शीशम, सफेद शीशम, पीलीशीशम। बंगाल—शीशू, सीसू। बम्बई—सीसू। गुजराती—सीसम तनच। मराठी—सीसू, सीसम। उर्दू—शीशम। पञ्जाब—शीशम, नेलकार, ताली, शेवा। अरबी—सशीम। तामील—सीसू, गेट्टा। तेलगू—सिंसुपा, सीसू। अंगरेजी—Sissoo लेटिन—Dalbergia Sissoo (डलबेर्गिया सीसू)।

वर्णन—शीशम के वृक्ष भारतवर्ष में प्रायः सत्र दूर पैदा होते हैं। इसका वृक्ष ६० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिंड की गोलाई ६ से १२ फुट तक होती है। इसकी छोटी शाखाएँ नीचे की तरफ लटकती हुईं और रुएँदार होती हैं। इसके पिंड की छाल एक इंच तक मोटी और कुछ पीलान लिये भूरे रङ्ग की होती है। इसके पत्ते गोल और नोकदार, वेर के पत्तों के समान होते हैं। नवीन हालत में ये अच्छे साफ हरे रंग के होते हैं मगर पुराने होने पर ये कुछ लाल और भूरे रंग के हो जाते हैं। इसके फूल बहुत छोटे छोटे सफेद या चंदनियां रंग के गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ बहुत चपटी और पतली होती हैं। हर एक फली में दो दो तीन तीन चपटे बीज निकलते हैं। शीशम की लकड़ी बहुत मजबूत, भारी और दृढ़ होती है।

शीशम की तीन जातियाँ होती हैं। काली, सफेद और पीली। पीली शीशम को संस्कृत में कपिल शिंशपा सफेद शीशम को श्वेतशिंशपा और काली शीशम को कृष्णसारा कहते हैं।

इस वृक्ष की लकड़ी और बीजों में से तेल निकाला जाता है जो औषधियों के काम आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सीसम कड़वा, तिक्त, कसेला, गरम, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक, कृमिनाशक, ज्वरनाशक, प्यास को बुझानेवाला, गर्भ को गिरानेवाला और वमन तथा दाह को शांत करनेवाला होता है। यह चर्मरोग, व्रण, रक्तरोग, श्वेतकुष्ट, अजीर्ण, अतिसार और गुदामार्ग की तकलीफों को दूर करनेवाला होता है। इसके पत्तों का रस नेत्ररोगों में लाभदायक होता है।

सफेद शीशम कड़वा, शीतल तथा पित्त और दाह को दूर करनेवाला होता है।

भूरे रंग का शीशम कड़वा, शीतवीर्य, श्रमनाशक तथा वात, पित्त, ज्वर, वमन और हिचकी को दूर करता है।

तीनों प्रकार के शीशम कांतिवर्धक, बलकारक, रुचिजनक तथा सूजन, विसर्प, पित्त और दाह को शान्त करते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से शीशम की लकड़ी कड़वी, खराब स्वादवाली, कृमिनाशक, रक्तशोधक और नेत्र तथा नाक की बीमारी में उपयोगी होती है। यह गीली खुजली, शरीर की जलन, उपदंश, पेट के रोग और पेशाब की जलन को शांत करनेवाली होती है।

इसकी जड़ संकोचक होती है और इसका तेल चर्म रोगों पर लगाने से लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों का लुआब मीठे तेल में मिलाकर फटी हुई त्वचा पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा सुजाक की तीव्र अवस्था में दिया जाता है। इसकी लकड़ी धातु परिवर्तक समझी जाती है और यह कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली और वमन को रोकने के लिये उपयोग में ली जाती है।

उपयोगः—

फोड़े फुन्सी—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से फोड़े फुन्सी मिटते हैं। कोढ़ में भी इसके पत्तों या बुरादे का क्वाथ पिलाया जाता है।

स्तनों की सूजन—इसके पत्तों को गरम करके स्तनों पर बाँधने से और इसके काढ़े से स्तनों को धोने से स्तनों की सूजन उतरती है।

कुष्ठ—शीशम के १० माशे बुरादे को आधापाव पानी में औटाकर आधा पानी रहने पर उसमें इसी शीशम का शरबत मिलाकर ४० दिन तक पीने से कुष्ठरोग में बहुत लाभ होता है।

रक्तविकार—शीशम के बुरादे का शरबत बनाकर पिलाने से रक्तविकार मिटता है।

वमन—इसके पत्ते या बुरादे का क्वाथ पिलाने से वमन बन्द होती है।

सुजाक—सुजाक की अत्यन्त तीव्र पीड़ा में इसका क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।

शीशम विलायती

नामः—

हिन्दी—विलायती शीशम। बंगाल—श्वेतसाल। बम्बई—शीशम, कालरुक। गुजराती—शीशम, सीसू। मराठी—सीसम, सिसुआ। सिंध—ताली। तामील—इट्टी। तेलगू—इरुगुडु। इंग्लिश—Malabar Blackwood। लेटिन–Dalbergia Latifolia (डलबेर्गिया लेटिफोलिया)।

वर्णन—यह बड़ी जाति का वृक्ष अवध, पूर्वी बंगाल, बिहार, बुन्देलखण्ड और मध्यभारत में पैदा होता है। इसकी डालियाँ फैली हुई और छत्रीनुमां होती हैं। इसके दूसरे सब अंग शीशम के समान ही होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कटुपौष्टिक और अग्निवर्द्धक होती है। इसका उपयोग कुष्ठ, मोटापन और कृमियों को नष्ट करने के लिये किया जाता है।

शूरीघास (लांपरिया घास)

नामः—

हिन्दी—शूरी घास, शुरुवाल, लांपरिया घास। मराठी—कांटेगवत। गुजराती—डाबसुलियूं। कच्छी—शूरियेघा, छुरो। अङ्गरेजी—Spear Grass (स्पीअर ग्रास)। लेटिन—Andropogon Contortus (एंड्रोपोगान कंटोर्टस)।

वर्णन—यह एक जाति का घास होता है। इसकी ऊँचाई २ से ३ हाथ तक होती है। इसके फूलों की मँवरी में काले २ बारीक २ कांटे जिन्हें लांपरिया बोलते हैं होते हैं। जब तक इस घास में ये कांटे

पैदा नहीं होते तब तक ढोर इस घास को बहुत खाते हैं मगर इन कांटों के पकने के बाद उनको यह घास खाने में बहुत तकलीफ होती है। इसके कांटे मनुष्य के कपड़ों में भी बहुत लगते हैं। इसलिये जहाँ पर यह घास होता है वहाँ के सब लोग इस घास को पहिचानते और इससे डरते रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ उत्तेजक और मूत्रल होती है।

हमको एक पुराने के वैद्य ने बतलाया था कि इसके बारीक २ काले कांटों (लांगरियों) को इकट्ठे करके उनका घन क्वाथ बनाया जाता है। यह घन क्वाथ पुराने जमाने में मम्माई के नाम से मशहूर था। यह एक बहुत ही प्रभावशाली वस्तु होती है, अनेक रोगों में काम करती है। खास करके दमे के अन्दर तो यह अपना विचक्षण प्रभाव दिखलाती है। हम नहीं कह सकते कि उपरोक्त वैद्य जी की बातों में कहाँ तक सचाई थी। क्योंकि हमने इसको कभी अनुभव में नहीं लिया।

शेरसा (शिराक़)

नाम:—

मराठी—शेरसा, सोंगारवी। बंगाल—अश्वल, गोढ़ा, होरीना। बम्बई—लोंगार विशीरस, शिराक़। आसाम—मोढ़िया। बरमा—तौआ। तेलगू—तुकी। लेटिन—Vitex Glabrata (विटेक्स ग्लैबरेटा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। जो दक्षिणी आसाम में विशेष रूप से पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ की छाल एक संकोचक द्रव्य की तरह काम में ली जाती है।

श्वेतहुली

नाम:—

बंगाल—श्वेतहुली। लेटिन—Zeuxine strateumatica (झेक्सइन स्ट्रेट मेटिका)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते २-५ से ५ सेंटिमीटर तक लम्बे और ४-६ मिलिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसकी जड़ के अन्दर छोटी-छोटी गठानें होती हैं। यह वनस्पति हिन्दुस्तान कई के हिस्सों में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का कन्द या इसकी गठानें पौष्टिक या वीर्य वर्द्धक द्रव्य की तरह उपयोग में ली जाती हैं।

शाल

नाम:—

बंगाल–शाल। लेटिन—Nauclea ovalifolia (नोकिलया ओव्हेलिफोलिया)।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति आँतों की शिकायत और ज्वर में उपयोगी होती है।

शेवाल (कांई)

नाम:—

हिन्दी—शेवाल, जल्लील। गुजराती–जलेसर, पोलाइन। तेलगू–पंचदूब। इंग्लिश—Eelgrass (एलग्रास)। लेटिन—Vallisneria Spiralis (व्हेलिसनेरिया स्पिरेलिस)।

वर्णन—यह वनस्पति पानी के अन्दर पैदा होती है। इसके वर्ग की थोड़े-थोड़े फरक से कई प्रकार की वनस्पतियाँ होती हैं। इस वनस्पति के फूल और पत्ते नहीं होते। जमीन पर होनेवाली शेवाल में और पानी में होनेवाली शेवाल में बहुत फरक होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति शीतल, कड़वी, मधुर, सारक, रूक्ष, सलोनी, पचने में हलकी और स्निग्ध होती है। यह तृषा, रक्त पित्त, ज्वर, शोष, दाह और व्रण को मिटाती है। यह वनस्पति अग्निवर्द्धक होती है और सुफेद प्रदर के अन्दर इसका उपयोग किया जाता है।

शेवाल के वर्ग की वनस्पतियाँ विषैली नहीं होतीं। इस वर्ग की कोई २ जाति बहुत पौष्टिक और कोई साधारण अन्न के समान होती है। किसी में शक्कर, किसी में गोंद के समान चिकना द्रव्य, पौष्टिक द्रव्य और किसी में बैंगनी रंग का आयोडिन रहता है। इस वनस्पति के धर्म अन्न के समान स्नेहन और रसायन होते हैं। इन वनस्पतियों को जलाने से उनकी राख में सज्जीखार और आयोडिन प्राप्त होता है।

कंठमाला की सूजन और जलन को मिटाने के लिये और उसको जल्दी पकाने के लिये समुद्र में होने

वाली खारे पानी की शेवाल को बाँधते हैं। बाँधी हुई शेवाल को बार-बार बदलकर हर वक्त ताजी शेवाल बाँधी जाती है। इससे जलन तुरन्त बन्द हो जाती है और गठानें पक कर शीघ्र पककर फूट जाती है।

उपयोग—

वीर्य का पतलापन—शेवाल या काई को एक मिट्टी के ठींकरे में भरकर चूल्हे पर चढ़ाकर उसकी भस्म बनाकर उसमें समान भाग मिश्री मिलाकर ४ माशे की मात्रा में प्रतिदिन लेने से वीर्य का पतलापन और प्रमेह मिटता है।

सुज़ाक—काई को निचोड़ कर उसका पानी निकालकर उस पानी को मूत्रेंद्रिय के छेद में टपकाने से वहाँ का घाव भर जाता है।

सकीना (अर्घवान)

नामः—

गढ़वाल—सकीना। उर्दू—अर्घवान। फारसी—अर्घवान। अरबी—अर्घवान। पंजाब—तरनी, तिल्रून, बनकेनटी, बुना, काठी इत्यादि। इंग्लिश—Himalayan Laburnum (हिमालयन लेबरनम)। लेटिन—Sophora mollis (सोफोरा मोलिस)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में कुमाऊँ और नेपाल के अन्दर चार हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसकी जली हुई जड़ रक्त स्राव को रोकने वाली और यकृत तथा गुर्दे की बीमारियों को दूर करने वाली होती है। इसके फूल मीठे और गुर्दे की शिकायतों, कटिवात और पुरातन प्रमेह में उपयोगी होते हैं। इसका काढ़ा वमन कारक होता है। इसके बीज नेत्र रोगों में लाभदायक होते हैं।

सकमूनियां

नामः—

हिंदी—सकमूनियाँ। पंजाब—सकमूनियाँ। फारसी—सकमूनियाँ। लेटिन—Convolvulus Scammonia (कनह्वोलव्हूलस स्केमोनिया)।

वर्णन—यह शखाहूली के वर्ग की एक वनस्पति होती है इसकी बेलें गुजरात के खेड़े परगने में होती

हैं। फिर भी इसकी गठानों से प्राप्त किया हुआ राल के समान द्रव्य सीरिया और एशिया मायनर से भारत वर्ष में आकर बंबई के औषधि विक्रेताओं के यहाँ बिकता है।

गुण दोष और प्रभाव--

यह वनस्पति पेट में से जल को निकालनेवाली और विरेचक होती है। जलोदर और सर्वांगीणशोथ के ऊपर इसका प्रचुरता से उपयोग होता है।

सकेना

नाम:—

हिन्दी—सकेना। कुमाऊँ—सकेना। देहरादून—सकीना। मराठी—बरोली। तामील—नरिंजी। लेटिन—Indigofera Pulchella (इंडिगोफेरा पुल्चेला)।

वर्णन—यह नील के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह भारतवर्ष के पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होती है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

संथाल जाति के लोग इसकी जड़ का काढ़ा खाँसी को दूर करने के लिये देते हैं और छाती के दर्द को दूर करने के लिये छाती के ऊपर इसकी जड़ों का लेप करते हैं।

संखिनी

नाम:—

संस्कृत—यवतिक्ता, महातिक्ता, दृढ़पादा, विसर्पिणी, नाकुली इत्यादि। हिन्दी—शंखिनी। बङ्गाल—श्वेतबोना, दनकुनी। कच्छ-शङ्खपुष्पी। मराठी—टिटवी, यवेची। लेटिन—Canscora Decussata (कॅंस्कोरा डेक्यूसेटा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी लता होती है। इसकी बेल शिवलिंगी की बेल के समान होती है। इसके फल भी शिवलिंगी के फल के समान होती है। मगर इसके फलों के ऊपर शिवलिंगी के फलों के समान सफेद छींटे नहीं होते हैं। इसके बीज शङ्ख के आकार के होते हैं। कुछ लोगों ने इसको कालमेघ माना है। मगर यह कालमेघ से भिन्न एक दूसरी वनस्पति होती है। कालमेघ को लेटिन में एण्ड्रोग्राफिस पेनिक्यूलेटा कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—राजनिघंटु के मत से संखिनी कड़वी, चरपरी, रुचिकारक, अग्निदीपक, मृदु-विरेचक, कृमिनाशक, मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली, खट्टी, तीक्ष्ण, स्निग्ध, गरम, त्रिदोषनाशक तथा कुष्ठ, आम, विषविकार, रक्तदोष, कृमि, सूजन और उदररोग को दूर करनेवाली होती है।

महर्षि आत्रेय के मतानुसार संखिनी जठराग्नि को दीपन करनेवाली, बलवर्द्धक, कड़वी, ज्वरातिसार नाशक और बालकों का कल्याण करनेवाली होती है।

हिन्दू चिकित्साशास्त्र के अन्दर यह वनस्पति मृदुविरेचक, धातुपरिवर्तक और पौष्टिक मानी गई है। मस्तिष्क की विकृति को दूर करने के लिये भी इसकी काफी प्रशंसा है। यह उन्माद, मृगी और स्नायुजाल की कमजोरी को दूर करने के लिये काम में ली जाती है। इसके पौधे का ताजा रस एक औंस की मात्रा में उन्माद के रोगियों को दिया जाता है।

संकासुरा

नामः—

मराठी—संकासुरा। बम्बई—वायनी। तामील—वाराही। तेलगू—सुंकेवरम्। इंग्लिश—Tiger bean (टायगर बीन)। लेटिन—Delonix Elata (डेलोनिक्स एलेटा)। Poinciana Elata (पोइनसिएना एलेटा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान अरब और अबीसीनिया है मगर भारतवर्ष के अन्दर भी यह पैदा होने लगा है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा संधिवात और वात को नष्ट करने के उपयोग में लिया जाता है। इसकी छाल एक उत्तम ज्वरनाशक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती है।

सगतरा

नामः—

संस्कृत—क्षुद्रशणा। मराठी—रानताग। गुजराती—सगतरा, शंगीतरा, खीप, खरसण। हिन्दी—शीस। पंजाब—शीस, खरसण। लेटिन—Crotolaria Burhia। (क्रोटोलेरिया बुरहिया)

वर्णन—यह एक सण के वर्ग की छोटी वनस्पति होती है। इसका पौधा १ से २ फीट तक या उससे भी कुछ ऊँचा होता है। यह पौधा उजाड़, कंकरीली या रेतीली जमीनों में पैदा होता है। इसके पौधे में

पिंड नहीं होता। जड़ से ही इसकी शाखाएँ सुतली के समान मोटी और एक दूसरी में उलझी हुई निकलती हैं। इन शाखाओं के ऊपर सफेद और भूरे रङ्ग के कोमल रुएँ होते हैं। इसके पत्ते दूर दूर पर आते हैं। ये लम्बगोल, बरछी आकार के, रुएँदार और आधे से लेकर डेढ़ इञ्च तक लम्बे होते हैं मगर ये पत्ते पौधे पर आते ही गिर जाते हैं। इसलिये अक्सर इस वनस्पति के पौधे बिना पत्तेवाले ही दिखलाई देते हैं। इसके फूल पीले रङ्ग के और फलियाँ सणकी फलियों की तरह होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का शास्त्रीय उपयोग कहीं देखने में नहीं आता। घरेलू औषधियों में इसको वमन, दमा और खाँसी के ऊपर उपयोग में ली जाती है। सूजन और संधिवात के ऊपर इसका लेप भी किया जाता है। मगर साधू, संत, योगी और यती इसको एक दिव्य औषधि मानते हैं। खासकर पागल कुत्ते के विष और बिच्छू के विष पर यह एक उपयोगी वस्तु सिद्ध हुई है।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि यह वनस्पति हमें एक महात्मा की कृपा से प्राप्त हुई और पागल कुत्ते के काटे हुए २०।२५ रोगियों पर हमने इसको अजमाई। लेकिन एक भी केस में यह वनस्पति असफल सिद्ध नहीं हुई। इसको उपयोग में लेने का तरीका इस प्रकार है।

जिसको पागल कुत्ते ने काटा हो उसको प्रतिदिन सबेरे सगतरे के पौधे की १ पैसे भर कोंपले २१ काली मिरचों के साथ पानी में भांग की तरह पीसकर फिर उसको ५ तोला पानी में बारीक कपड़े के अन्दर छानकर रोगी को पिलाना चाहिये। यह प्रयोग कुत्ता काटे उस दिन से लेकर ७ दिन तक लगातार करना चाहिये। ऐसा करने से जिंदगी भर तक हड़काव पैदा होने का भय नहीं रहता।

अगर इस प्रयोग को करने में विलम्ब हो जाय और रोगी में हड़काव पैदा होने के चिन्ह दिखलाई देने लगे तो तुरंत इस औषधि को पिलाकर उसके ऊपर अजीर्ण हो जाय इतना तिल का तेल पिलाना चाहिये, जिससे दस्तें होकर दस्त के रास्ते हड़काव के जन्तु बाहर निकल जाते हैं। अगर एक बार इस औषधि को पिलाने से तीन घण्टे में पूरा फायदा नहीं दिखलाई दे तो दूसरी वक्त इसी प्रयोग को फिर से करना चाहिये।

सगतरा और बिच्छू का विष—जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में बिच्छू के विष को नष्ट करने का अजब गुण भी रहता है। इसके रस का स्पर्शमात्र अगर बिच्छू कर ले तो उसको पक्षाघात हो जाता है और उसकी हिलने चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है। इसकी जड़ को पानी के साथ घिसकर बिच्छू के डंक पर लगाने से विष की वेदना तत्काल शान्त हो जाती है।

संखिया

नामः—

संस्कृत—मल्ल, गौरीपाषाण, फेनाश्म, शतमल्ल, मूषक पाषाण, आखु पाषाण इत्यादि। हिन्दी–संखिया, सोमल। मराठी–सोमल, संखिया, गुजराती—शोमल। शंखियो। बङ्गाल—शिमुल क्षार। पंजाबी—सिम्मल-क्षार। तैलगू—तैल पाषाणमु। अरबी—सम्मुल खार। फारसी—मर्गमूश। लेटिन—Arsenicum Album (आर्सेनिकम एलबम) अंग्रेजी—Oxide of Arsenic.

वर्णन—संखिया एक प्रकार का खनिज विष होता है। यह एक भयंकर और प्राणघातक विष है। यह रंग के भेद से सफेद, लाल, पीला और काला चार प्रकार का होता है। पर विशेष करके सफेद रंग का संखिया ही अधिक तादाद में मिलता है और यही औषधि प्रयोग में विशेष रूप से काम में आता है। यह देखने में सुहागे के समान दिखलाई देता है। इसका स्वाद फीका और किसी भी प्रकार के स्वाद से रहित होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से संखिया स्निग्ध, पारे को बाँधनेवाला, लोह भेदक, वीर्यवर्द्धक कान्तिवर्द्धक तथा त्रिदोष और सर्वव्याधिनाशक होता है।

अशुद्ध संखिया सप्त धातुनाशक, तथा दाह, पित्त, भ्रम, लाला स्राव, पीड़ा, दस्त, वमन, तृषा और अनेक प्रकार की व्याधियों को पैदा कर शीघ्रतापूर्वक प्राणों को नष्ट करता है। यह एक महा भयंकर विष होता है। इसलिए अनजान आदमियों के समीप अथवा घरगृहस्थी में इसको असावधानी से नहीं रखना चाहिये।

रसरतन समुच्चय नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—

'रस बन्धकरः स्निग्धो दोषघ्नो, रसवीर्य कृत्।'

अर्थात्—संखिया विष पारे को बांधने के काम में आता है। यह गुण में चिकना, वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को शान्त करने वाला तथा रस और वीर्य को पैदा करने वाला होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा के अन्दर संखिया का मारण संस्कार करने के पश्चात् ही इसको चिकित्सा के उपयोग में लेने का विधान है। संखिया को मारने की एक दो विधियाँ नीचे दी जाती हैं—

संखिया को मारने की पहली विधि—मूली की एक सेर राख लेकर, उसमें से आधी राख एक मिट्टी की हाण्डी के अन्दर दबा दबाकर भर देना चाहिये, फिर उस राख पर दो तोले संखिया की डली रख कर उस डली पर बाकी राख को दबा दबा कर भर देना चाहिए। फिर उस हाण्डी के मुँह पर ढकना रख कर उसकी संधियों को कपड़ मिट्टी से बन्द कर देना चाहिये। फिर एक चूल्हे में चिराग की लौ के बराबर आग जला कर उस चूल्हे पर इस हाण्डी को रख देना चाहिये और पूरे बारह घण्टे तक यह आंच जारी रखना चाहिये। इस क्रिया से संखिया का मारण हो जाता है।

संखिया मारने की दूसरी विधि—पापड़ खार चार तोले लेकर पीस कर मिट्टी के एक सराव सम्पुट में उसमें से आधा पापड़ खार बिछा कर उस पर एक तोला संखिया की डली रख देना चाहिए और उस डली पर बाकी का पापड़ खार बिछा कर, उस सरावले पर दूसरा सरावला ढक कर संन्धियों पर कपड़ मिट्टी कर देना चाहिये, सूखने पर उस सराव सम्पुट को बीस सेर कण्डे की आँच में रख कर फूँक देना चाहिये। इस क्रिया से संखिया का मारण हो जाता है।

मानव शरीर पर संखिया के प्रभाव—

आमाशय पर संखिया के प्रभाव—संखिया को छोटी मात्रा में (१/६० ग्रेन से १/५० ग्रेन तक) पेट में देने में यह आमाशय में रस बनाने की क्रिया को उत्तेजित करता है। आमाशय के लिए यह एक उत्तेजक और शक्तिदायक पदार्थ है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भूख बढ़ती है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से यह आमाशय में दाह पैदा करता है और आमाशय तथा पक्वाशय में दाह और सूजन उत्पन्न करता है। इसका इंजेक्शन देने से यह सारे शरीर में जज्ब होकर आमाशय में पहुँचता है। संखिया को बहुत छोटी मात्रा में भोजन के पहले लेने से यह दाहयुक्त अपचन, भोजन के पश्चात् दस्त और वमन का होना, स्नायविक उदर शूल और आदतन शराबियों की वमन को दूर करता है।

रक्तपर संखिया के प्रभाव—पाण्डु रोग (Anaemia) की अनेक प्रकार की अवस्थाओं में संखिया का प्रयोग किया जाता है। मगर इस बीमारी में इस औषधि की क्रिया किस प्रकार होती है यह अभी तक अनिश्चित है। कुछ लोगों का विश्वास है कि औसत दर्जे के स्वास्थ्य वाले आदमी के अन्दर यह रक्त के लाल जीवाणुओं की संख्या को कम करता है मगर रक्तरंजक कणों पर—जिनसे खून में ललाई दिखलाई देती है—(Haemoglobin) इसका कोई असर नहीं होता। किसी भी अङ्ग से रक्तस्राव होने के पश्चात् संखिया नये रक्त को बहुत शीघ्रता के साथ बनाता है। संखिया हड्डियों की मज्जा में (Bone marrow) में सफेद रक्त जीवाणुओं को तथा रक्त में सफेद रक्त जीवाणुओं को बढ़ाता है।

नवीन पाण्डु रोग में संखिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है। घातक पाण्डु रोग में यह रक्तरंजक कणों (Haemoglabin) को बढ़ाता है। ल्यूकेमिया (Leukaemia) नामक दुःसाध्य पाण्डु रोग में जिसमें रक्त के अन्दर श्वेत जीवाणुओं की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है तथा यकृत और तिल्ली में बहुत विकृति पैदा हो जाती है। संखिया अस्थायी रूप से लाभ बतलाता है। मलेरिया के पश्चात् होने वाले पाण्डु रोग में संखिया को देने से अच्छा लाभ होता है। नव यौवना स्त्रियों को होनेवाले ऐसे पाण्डु रोग में जिसमें त्वचा हलके हरे रंग की हो जाती है तथा मासिक धर्म की अनियमितता भी रहती है, संखिया को देने से लाभ होता है। इस रोग में संखिया को देने से शरीर की पोषण क्रिया को सहायता मिलती है, श्वास कष्ट कम हो जाता है और किसी हद तक शरीर को भी शक्ति मिलती है लेकिन प्रत्यक्ष रूप से अकेला संखिया इस बीमारी में कोई लाभ नहीं पहुँचाता, हाँ लोह के साथ इसका उपयोग करने से यह रक्त में लाल जीवाणुओं की संख्या बढ़ाकर लाभ पहुँचाता है।

हृदय पर संखिया के प्रभाव—बहुत छोटी मात्रा में संखिया को देने से यह हृदय के ठोकों की

त्वचा पर बाहर निकलते समय यह छोटी-छोटी फुन्सियाँ भी पैदा कर देता है। इसके गलत या अधिक प्रयोग से त्वचा का रङ्ग काला पड़ जाता है।

प्राचीन चर्मरोगों में प्रधानतया ऐसी खुजली (Scaoly) में जिसमें शरीर से खुजली चल चलकर पपड़ियाँ उतरती हैं और ऐसी खुजली जिसमें छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं (Papular) में यह आश्चर्य-जनक लाभ पहुँचाता है। विसर्पिका (Psoriasis) सिरकीगंज (Lichen) एक्जिमा, मुहांसे (Acne) और चमड़े पर होनेवाले फफोलों (Pemphigus) में भी इसके सेवन से लाभ होता है। त्वचा के दूसरे भागों की अपेक्षा उपत्वचा (Epidermis) पर प्रभाव करनेवाली बीमारियों पर इसका विशेष प्रभाव होता है।

बाह्यप्रयोग में त्वचा के ऊपर लगाने से संखिया एक चर्मदाहक पदार्थ की तरह काम करता है। यह धीरे धीरे चमड़े पर सूजन पैदा करता है। जो कि बढ़ते २ बहुत अधिक (Sloagh) हो जाती है। संखिया से तैयार किया हुआ लेप चर्म क्षयरोग (Lupus) उपदंश की वजह से होनेवाले त्वचा-न्तर्गत रोग (Condyloma) और एपिथिलोमा (Epithelioma) को नष्ट करने के काम में लिया जाता है। अगर बीमारी फैली हुई हो तो पहले थोड़े हिस्से पर इस लेप का प्रयोग करना चाहिए। उत्तरी आयरलैण्ड में केन्सर के चिकित्सक कैन्सर की चिकित्सा में संखिया को एक प्रधान द्रव्य की तरह उपयोग में लेते हैं।

छोटी मात्रा में संखिया को अधिक समय तक लेने से यह शरीर की वृद्धि और पोषण क्रिया को बढ़ाता है। शरीर के तन्तुओं (Tissus) पर इसका प्रभाव फास्फोरस के समान मगर उससे कुछ सौम्य होता है। इसका बहुत लम्बा उपयोग करने से यह यकृत की क्रिया शक्ति को कम करता है और ग्लायकोजेन (शरीर रचना में शक्कर उत्पन्न करनेवाला एक पदार्थ) के बनने की क्रिया को कम करता है तथा प्रोटीन को नष्ट करनेवाली क्रिया को बढ़ाता है। यद्यपि इससे पेशाब के नाइट्रोजन की तादाद में ज्यादा परिवर्तन नहीं होता है तथापि इससे पेशाब में यूरिया (Urea) एमोनिया, ल्यूसिन, ग्लायकोजेन और टायरोजिन (Tyrosin) की मात्रा बढ़ जाती है। यकृत, गुदा, क्षय और मांसपेशियों पर इसका हानिकारक प्रभाव (Fatty Degeneration) साफ २ मालूम होता है।

मलेरिया के अन्दर संखिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है। प्राचीन मलेरिया में जब कि पाण्डुरोग और दौर्बल्य पैदा हो जाता है वह एक बहुमूल्य औषधि का काम करता है। इस कार्य के लिए साधारणतयः लोह और कुनैन में मिलाकर इसका उपयोग किया जाता है। फीलपांव और अण्डकोषवृद्धि की बीमारी में इसको कुछ दिनों तक लगातार लेते रहने से इस बीमारी में बार बार आनेवाला ज्वर बन्द हो जाता है।

हाड्किन्स डिसीज—(प्लीहा और लसिका ग्रन्थियों की वृद्धि) इस बीमारीकी खोज अठारहवीं शताब्दी में थॉम्स हाडकिन्स नामक अंग्रेज डाक्टर ने की थी इसलिए इस रोग का नाम करण उक्त चिकित्सक के नाम पर हुआ। संखिया के सिवा दूसरी कोई भी औषधि आजतक इस बीमारी में उपयोगी नहीं मालूम

हुई है। इस प्रकार के अर्बुद संखिया को लगातार कुछ दिनों तक खाने से अथवा इसका इंजेक्शन लेने से मिट जाते हैं।

मतलब यह कि संखिया एक बहुत प्रभावशाली लेकिन भयंकर विष है। इसका सावधानी पूर्वक, शास्त्रीय विधि से किया हुआ प्रयोग जहाँ मनुष्य को भयङ्कर से भयङ्कर रोगों से मुक्त कर उसे स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है वहाँ इसके प्रयोग में की हुई छोटी से छोटी भूल भी मनुष्य को भयंकर यातना बतलाती हुई मृत्यु के मुँह में डाल सकती है। इसलिए साधारण लोगों को बिना उत्तम वैद्य की सलाह के इसका जरा भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रयोग करते समय इसकी मात्रा जरा भी अधिक न हो इस बात पर पूरा खयाल रखना चाहिए। दूसरी औषधियों के सम्बन्ध में की हुई छोटी बड़ी भूल फिर भी क्षम्य हो सकती है मगर इसके सम्बन्ध की भूल कभी क्षम्य नहीं हो सकती।

संखिया के विष की प्रतिक्रियाएं—

तीव्र विष के प्रभाव—संखिया खाने के पन्द्रह मिनिट बाद और एक घण्टे के अन्दर विष के विकार प्रकट होने लगते हैं। कहीं-कहीं छः मिनिट के बाद ही इसके विष के लक्षण उत्पन्न होते देखे गये हैं। घाव के ऊपर भी संखिया के चूर्ण का प्रयोग करने से विष के विकार उत्पन्न होने की पूरी सम्भावना रहती है। संखिया खाने के पश्चात् कॉलिक शूल, तेज वमन,तेज दस्त, तेज प्यास, भयङ्कर थकावट, टाँगों में बांयटे आना इत्यादि लक्षण भयंकरता के साथ उत्पन्न होते हैं। इसके खाने के बाद शरीर में अवसन्नता, मूर्च्छा, जी मिचलाना और उबाक पैदा होने लगती है। पाकाशय में अत्यन्त दाह होकर पीली वमन होती है। फिर रक्तमिश्रित कफ की वमन होती है, कहीं पित्त मिली हुई वमन होती है। पैर, जाँघ और हाथों की माँसपेशियों में अकड़न और बांयटे आते हैं, मुँह और गले में खुश्की आकर गला रुक जाता है। नाड़ी हलकी, नरम और अव्यवस्थित चलती है। पेट में दर्द, श्वास-प्रश्वास में दीर्घता, त्वचा ठण्डी, पसीना ज्यादा, इत्यादि लक्षण पैदा होकर दिल की धड़कन बन्द हो जाती है और रोगी मर जाता है। कहीं-कहीं धनुर्वात की तरह लक्षण पैदा होकर शरीर में आक्षेप पैदा हो जाता है और पेशाब बन्द हो जाता है।

संखिया का शरीर से बाहर निकलना—संखिया विशेष कर मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है। कुछ मात्रा में यह दस्त के द्वारा भी बाहर निकलता है। पित्त, पसीना, लार आँसू और दूध के द्वारा भी यह बहुत थोड़ी मात्रा में बाहर निकलता है। इसका सेवन बन्द करने के बाद भी यह दो तीन सप्ताह तक धीरे धीरे बाहर निकलता रहता है। पेट में जाने के पश्चात् दो से लेकर आठ घण्टों के बीच इसका शरीर से बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। मुँह के द्वारा खाने पर यह विशेष कर आँतों के द्वारा बाहर निकलता है और चमड़े के नीचे इसका इंजेक्शन देने पर यह विशेष कर गुर्दे के द्वारा बाहर निकलता है।

संखिया के विष के लक्षण हैजे के लक्षणों से इतने अधिक मिलते हुए होते हैं कि कई अच्छे डाक्टरों को भी कभी कभी इसके लक्षणों में भ्रम हो जाता है।

संखिया के मन्द विष की प्रतिक्रियाएं—संखिया का मन्द विष अक्सर उन लोगों में पाया जाता है जिनके नाक के द्वारा या श्वास के द्वारा संखिया की थोड़ी थोड़ी मात्रा पहुँचती रहती है,

अथवा जिन्हें मुँह के द्वारा भी छोटी मात्रा में किसी प्रकार संखिया का सेवन कराया जाता है। यूरोप में कागज के कारखानों तथा दूसरी शिल्पशालाओं में संखिया का व्यवहार होता है। कभी बहुत से बच्चों के खिलौने संखिया के संयोग से बने हुए मसाले के द्वारा बनाए जाते हैं। इन्हीं कारणों के द्वारा तथा और कारणों से संखिया के मन्द विष का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर होता है। इस मन्द विष के फल स्वरूप भूख कम हो जाती है, जी घबराया करता है, वमन होती है, पेट दुखता है, हलकी प्रवाहिका होती है, चेहरे पर आँखों के नीचे सूजन आ जाती है, आँखें दुखनी आ जाती हैं, जोड़ों में सूजन हो जाती है, इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव दिखलाई देने लगते हैं। यदि औषधि में संखिया कुछ अधिक मात्रा में लम्बे समय तक दिया जाय तो उँगलियों के स्नायुओं में सूजन आ जाती है। मांसपेशियों की पोषण क्रिया बन्द होकर वे कमजोर और दुर्बल हो जाती हैं। चाल में तिरछापन (Ataxic gait) हो जाता है। कई बीमारों के चमड़े का रंग बिगड़ जाता है, उसमें धब्बे पड़ जाते हैं और त्वचा में दर्द होता है।

दर्पनाशक—अगर किसी ने संखिया खा लिया हो और वह विष आमाशय में हो तो पहले रोगी को मैनफल, अरीठा अथवा और किसी उपाय से वमन कराना चाहिए। क्योंकि विष में वमन से बढ़ कर कोई दूसरी दवा नहीं है। सुश्रुत में लिखा है कि—

'पिप्पली मधुक क्षौद्रशर्करे क्षुर साम्बुभिः। छर्दयेद गुप्तहृदयो भक्षितं यदि वै विषम्।'

अर्थात्—जिसने विष खाया हो उसको हृदय की रक्षा करनेवाली पूर्व लिखित औषधियाँ देकर पीपल, मुलहठी, शहद, शक्कर और गन्ने का रस इनको जल में मिलाकर पिलावे। वमन होने के बाद विषनाशक औषधियों का प्रयोग कर विष को शान्त करे। पक्वाशय में चले जाने पर मनुष्य को विरेचक औषधियाँ देना चाहिये अथवा पिचकारी से मल के साथ विष को निकाल देना चाहिये।

पाश्चात्य चिकित्सा के मतानुसार संखिया के विष को नष्ट करने के लिये वमन कराना, बहुत सावधानी के साथ स्टमक पम्प को उपयोग करना, एपो मारफिया (अफीम के सत्व मारफिया से तैयार किया हुआ एक द्रव्य) का इञ्जेक्शन करना, सोडियम कार्बोनेट या एमोनियम कार्बोनेट के साथ तैयार किया हुआ आयर्न पैरेक्साइड (लोहे का बनाया हुआ द्रव) एक औंस की मात्रा में देना, इसके न मिलने पर मैग्नेशिया, प्राणिज कोयला, जैतून का तेल, चूने का पानी इत्यादि चीजों का प्रचुरता से उपयोग करना चाहिये। आँतों को साफ करने के लिये अरण्डेल तथा दूसरे स्निग्ध पदार्थों का उपयोग करना चाहिये। हृदय को उत्तेजना देने वाले पदार्थ ब्राण्डी, ईथर, एमोनिया इत्यादि भी देना चाहिये और गरम पानी की बोतलों से सेंक करना चाहिये।

देशी चिकित्सा पद्धति के मतानुसार वमन, विरेचन के पश्चात् निम्नवस्तुओं के प्रयोग से संखिया के विष की शान्ति होती है।

१—संखिया वाले को वमन विरेचन करवा कर लिसोड़े के पत्तों का स्वरस १ छटांक और मीठी इमली का रस दो तोले मिला कर पिला दें। इससे विष शान्त हो जाता है।

२—बिनौले की गिरी को गुनगुने दूध के साथ पिलाने से संखिया का विष उतर जाता है।

दिनों तक लेने से उपदंश मिट जाता है। इस औषधि को लेने पर अगर वमन होने लगे तो नागरबेल के पान खिलाना चाहिये और पूरा पथ्य रखना चाहिये।

ज्वर—संखिया की डली को बैंगन के भीतर रख कर उस बैंगन पर कपड़ मिट्टी करके भूमल में उस बैंगन का भुर्त्ता कर लें। इस प्रकार सात बैंगन में उस संखिया को पकाकर, पीस कर लोहे की कड़ाही में आधा सेर जल के साथ औटावें। जब पानी सूख जाय तब उस संखिया में समान भाग उत्तम गेरू मिला कर बारीक पीस कर उड़द के बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से एक से लेकर दो गोली तक रोगी को बलानुसार देने से और पथ्य में सिर्फ मूंग की दाल और चावलों का पथ्य देने से सब प्रकार के ज्वर छूटते हैं।

गठिया—संखिया से सिद्ध किये हुए तेल की मालिश करने से गठिया और स्नायु जाल की पीड़ा मिटती है।

वाईंठे—संखिया के तेल की मालिश करने से और इस तेल को सींक भर पान में रखकर खाने से बाईंठे मिटते हैं।

रुधिरविकार—आधा चावल भर संखिया की भस्म त्रिफला के क्वाथ और शहद के साथ देने से रुधिर विकार मिटता है।

आधा शीशी—एक रत्ती संखिया और एक तोले चावलों को पीस कर कागदार शीशी में भर कर रख छोड़ें। इसमें से एक रत्ती चूर्ण सुंघाने से आधाशीशी मिटती है।

विच्छू का विष—संखिया को घिस कर बिच्छू के विष पर लेप करने से विष उतर जाता है।

पुराना जुकाम—चौथाई चावल की मात्रा में संखिया को पान से रखकर खाने से पुराना जुकाम मिटता है।

वनावटें—

संखिया का घी—भैंस के दस सेर दूध को एक हाण्डी में भर कर, पाँच तोले संखिया के छोटे छोटे टुकड़े करके, उन्हें एक पोटली में बांध कर बीच में लटका देना चाहिए और उस हाण्डी पर कपड़ मिट्टी करके बहुत हलकी आँच से गरम करना चाहिये। यह खयाल रहे कि उसकी भाफ बाहर न निकलने पावे। इस प्रकार बारह घण्टे बहुत हलकी आँच पर पका कर उस दूध का दही जमा देना चाहिए और उस दही को बिलोकर उसका घी निकाल लेना चाहिए। यह संखिया का घी कहलाता है।

इस घी को गठिया, संधिवात इत्यादि पर मालिश करने से और एक सींक के बराबर पान में लगा कर खाने से लाभ होता है।

संखिया का तैल बनाने की विधि—लौंग, जायफल, जावित्री और संखिया सबको समान भाग लेकर पीसकर, चीनी के प्याले पर एक मलमल का कपड़ा बांधकर उस कपड़े पर बिछा देना

चाहिए और फिर प्याले के मुँह पर एक अभ्रक का पत्र ढककर कपड़मिट्टी करके ऊपर से कोयलों की आँच देना चाहिए, इस क्रिया से तैल टपक टपक कर नीचे के प्याले में इकट्ठा हो जाता है। इस तैल को एक सींक के बराबर नागरबेल के पान में अथवा दूसरे अनुपान के साथ खाने से वात और कफ के सब विकार नष्ट होते हैं।

संखिया के तैल की दूसरी विधि—साफ की हुई सज्जी चार तोले, संखिया का चूर्ण आठ तोले, तिल्ली का तैल १६ तोले और जल २४ तोले। इन सब चीजों को एक बरतन में भरकर हलकी-हलकी आँच पर पकावे जब पानी का अंश जल जाय या एकाध तोला बाकी रहे तब उसे उतार कर ठण्डा करें और पानी का अंश सूखने पर उस तैल को छानकर बोतल में भर लें जब जरूरत हो तब इसमें से एक तोला तैल लेकर पाँच तोले कड़ुवे तैल में मिलाकर, शरीर के जिस अङ्ग में दर्द हो उस पर मालिश करें और ऊपर अरण्डी के पत्ते गरम करके बाँध दें। कमर के दर्द में इस तैल को मालिश करके कोयलों की आँच से सेक देने से बड़ा लाभ होता है।

संखिया के तैल की तीसरी विधि—पाव भर संखिया को कूटकर लोहे की कड़ाही में रख दें और उस पर एक सेर कूटा हुआ कलमी शोरा बिछा दे। इस कड़ाही में तिल्ली का तैल इतना भर दें जिसमें सारी औषधि डूब जाय मगर कड़ाही का छः सात अंगुल भाग जरूर खाली रहे। उस कड़ाही के नीचे आँच लगाकर स्वयं को कड़ाही से दूर जाकर बैठ जाना चाहिए और उसकी ज्वाला और धुएँ से अपने को बचाना चाहिए।

जब तैल खूब तप्त हो जायगा तब उसमें से पाँच छः हाथ ऊँची ज्वाला उठेगी बाद में वह थोड़ी-थोड़ी उठती रहेगी। जब सम्पूर्ण तैल जलने में आवे और अग्नि की लपट शान्त होने लगे, लेकिन तैल की कुछ तरी कड़ाही में अवशेष रहे उस समय उस कड़ाही के दोनों कुन्दों में एक बाँस डालकर दो आदमी बांस के दोनों सिरों को पकड़ कर कड़ाही को नीचे उतार लें। जब कड़ाही ठण्डी हो जाय तब कड़ाही में जमी हुई सोरा और संखिया की कीचड़ को चाँदी या चीनी की थाली में निकालकर चन्द्रमा की चाँदनी के सामने उस थाली को तिरछी करके रख दें। जिससे तैल बहकर नीचे की तरफ इकट्ठा होता रहे ज्यों ज्यों चाँदनी का रुख बदलता जाय त्यों त्यों उस थाली का रुख भी बदल कर चाँदनी के सामने करते रहना चाहिए। सूर्योदय के पहले ही उस थाली में इकट्ठे हुए तैल को शीशी में भर लेना चाहिए और उस थाली को ऐसे स्थान में रख देना चाहिए जहां उसे हवा और प्रकाश न लगने पावे। फिर दूसरे दिन चन्द्रमा की चाँदनी में इस थाली को उसी प्रकार रखना चाहिए। इस प्रकार पाँच छः दिन में सब तैल इकट्ठा हो जाता है।

यह तैल बिलकुल साफ और निर्मल होता है। इस तैल को लिंगेन्द्रिय के ऊपर सुपारी और सीवन छोड़कर लेप करने से और ऊपर नागरबेल के पत्ते बाँध देने से लिंगेन्द्रिय की शिथिलता और नपुंसकता दूर होती है और मनुष्य की कामशक्ति जाग्रत हो जाती है। वात व्याधियों में भी इस तैल की मालिश से बहुत लाभ पहुँचता है।

इसके अतिरिक्त संखिया के योग से मल्ल चन्द्रोदय, मल्ल सिन्दूर, कायाकल्प लोह इत्यादि कई प्रकार के योग बनते हैं जिनका वर्णन पारद और लोह के प्रकरण में तथा और भी स्थान स्थान पर किया गया है।

संगकुप्पी

नामः—

संस्कृत—कुण्डली, समुद्र यूथिका, वनजाई, वनयूथिका। हिन्दी—संगकुप्पी, लानजाई। बङ्गाल—बनजोई, वनजूमत, बटराज। गुजराती—तीवर। मराठी—वनजाई। दक्षिण—इसनघरी, संगकुपी। तामील—अञ्जलि। अङ्गरेजी—Petit fever Leaves (पेटिट फीवर लीव्हज्)। लेटिन—Clerodendron Inerme (क्लेरोडेण्ड्रोन इनर्म)।

वर्णन—यह औषधि सूरत से लेकर सीलोन तक समुद्र के किनारे किनारे पैदा होती है। इसके पौधे तीन से लेकर सात फीट तक ऊँचे होते हैं। ये बाँकी टेढ़ी शाखाओंवाले तथा झाड़ीनुमा होते हैं। इसके पत्ते आमने सामने लगते हैं। कहीं कहीं ये तीन तीन के गुच्छों में लगते हैं। ये ३/४ इञ्च से लेकर १॥ इञ्च तक लम्बे होते हैं। ये कोमल हालत में राख के समान रङ्ग के होते हैं। इनके डंठल लम्बे होते हैं। इसके फूल जूही के फूलों की तरह सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसके फल कीड़ामारी की फलियों की तरह होते हैं। चिकित्सा में इसके पत्ते और जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

संगकुप्पी कटुपौष्टिक, क्षारस्वभावी, ज्वरनाशक, शोथघ्न, अवसादक और विषनाशक होती है। इसका ज्वरनाशक धर्म बहुत उत्तम होता है। इस कार्य के लिए सारे एशिया खण्ड में इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है। इस वनस्पति के गुणधर्म चिरायते के गुणधर्मों से मिलते जुलते होते हैं मगर इसका ज्वरनाशक धर्म चिरायते के ज्वरनाशक धर्म से अधिक जोरदार होता है। मलेरिया ज्वर या पारी से आनेवाले बुखार में यह विशेष लाभ बतलाती है।

संगकुप्पी और मलेरिया ज्वर—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में यद्यपि इसका विशेष वर्णन देखने को नहीं मिलता लेकिन बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ सर दीनशा माणिकजी पेटिट सी० आई० ई० को इसके ज्वरनाशक धर्म का पता पहले पहल लगा और इसी कारण इस औषधि के पत्ते बम्बई में पेटिट फीवर लीव्हज् के नाम से पहचाने जाते हैं। इस औषधि का वर्णन करते हुए सर पेटिट लिखते हैं कि—

ये पत्ते सूरत जिले में तीवर के नाम से और बम्बई में पेटिट फीवर लीव्हज् के नाम से पहचाने जाते हैं। प्रत्येक प्रकार के ज्वर में इकांतरा, तिजारी, चौथिया, सतत ज्वर, लू लगने से आनेवाला ज्वर तथा जङ्गल की सूखी हवा से पैदा होनेवाले ज्वर में ये बहुत अकसीर प्रभाव बतलाते हैं। कई ऐसे केसों में जिनमें कुनैन असफल सिद्ध हो चुकी थी इस वनस्पति के पत्तों ने लाभ पहुँचाया है। जिन लोगों ने इन

पत्तों का उपयोग किया है उनमें से किसीने भी इससे किसी प्रकार का उपद्रव, हानि या प्रतिक्रिया होने की कोई शिकायत मेरे पास नहीं की है। इस बनस्पति में रक्तशोधक गुण होने से यह खाज खुजली इत्यादि चर्मरोगों में भी लाभ पहुँचाती है।

डायमॉक का कथन है कि मलेरिया ज्वर के जिन रोगियों पर कुनैन असफल सिद्ध हुई है, उनमें भी इस वनस्पति ने विजय प्राप्त की है।

एन्सली का कथन है कि इसके पत्तों और जड़ का रस कण्ठमाला की बीमारी में एक रक्तशोधक द्रव्य की तरह काम करता है। इस कार्य्य के लिए इसको एक बड़े चम्मच (टेबिल स्पून) की मात्रा में पानी के साथ मिलाकर दिया जाता है।

रीड का कथन है कि इसके पत्तों का पुलटिस बनाकर बाँधने से गठान बैठ जाती है और इसके क्वाथ से स्नान करने से पागलपन मिटता है तथा इसकी जड़ को तेल में औटाकर उस तेल की मालिश करने से संधिवात मिटता है।

बम्बई में इसके पौधे की एक ज्वरनाशक पदार्थ की तरह बहुत ख्याति है। इसके लिए इसके पत्तों का रस आधे औंस की मात्रा में दिया जाता है। इसके रासायनिक तत्व चिरायते के रासायनिक तत्वों से बहुत मिलते हुए हैं। इसके सूखे पत्ते भी इसके ताजा पत्तों ही को तरह गुण कारी होते हैं। लेकिन इनको हमेशा छाया में सुखाना चाहिए जिससे इनकी गन्ध सुरक्षित रहे। इन सूखे पत्तों का दूसरे सुगन्धित द्रव्यों (लौंग, सोंठ आदि) के साथ काढ़ा बनाकर देना चाहिए। इनका चूर्ण या गोली बनाकर भी उपयोग किया जा सकता है।

उपयोग के तरीके—

ज्वर के ऊपर इस वनस्पति के हरे या सूखे पत्तों का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। इसके सात से लेकर पन्द्रह तक पत्ते वैसे ही चबा लिये जायँ अथवा नागरवेल के पान में रखकर खा लिये जायँ तो भी लाभ पहुँचाते हैं। अगर इन पत्तों की चाय बनाकर पी जाय तो वह ज्वर में बहुत लाभ पहुँचाती है। इस कार्य के लिए इसके बीस पच्चीस पत्ते लेकर उनके छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको एक ढकनदार चायदानी में डालकर उसमें पाव डेढ़ पाव खौलता हुआ पानी और दस पन्द्रह दाने कालीमिरच के पीसकर डाल देना चाहिए। जब पानी ठण्डा होने लगे तब चायदानी को अच्छी तरह हिलाकर उस पानी को कपड़े में छान लेना चाहिए और उसके तीन हिस्से करके दिन में तीन बार पी लेना चाहिए। अगर आवश्यकता मालूम हो तो इसमें कुछ शक्कर भी मिला सकते हैं।

अगर इसका एक्स्ट्रेक्ट या टिंक्चर बनाना हो तो इसके पत्तों को छाया में सुखाना चाहिए। जब वे मुरझा जांय तब उनमें से २० तोला पत्ते लेकर एक बोतल रेक्टी फाइड स्प्रिट में डालकर मजबूत काग लगाकर पाँच सात दिन तक पड़े रखना चाहिये। प्रतिदिन दो तीन दफे उस बोतल को खूब हिला देना चाहिए। उसके पश्चात् उसको ब्लाटिंग पेपर में अथवा कपड़े में छानकर दूसरी बोतल में भर लेना चाहिए। इस

औषधि की मात्रा छोटे बच्चों के लिए ६ से २० बून्द तक और बड़े आदमियों के लिए ३ से ६ माशे तक है। इसको चौगुने पानी में मिलाकर लेना चाहिए।

इसी प्रकार इसके पत्तों का शरबत भी बनाकर दिया जाता है। अगर इनकी गोलियाँ बनाना हो तो पींपर, चिरायता, कटकरंज के बीज इत्यादि औषधियों के साथ इसके पत्तों को पीसकर उनकी चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिए। इनकी मात्रा एक से लेकर तीन गोली तक रहती है।

उपरोक्त बनावटों में से ज्वर के रोगी को इसकी कोई भी बनावट देने से लाभ होता है। अगर इसके सेवन से ज्वर एकदम उतर कर शरीर ठण्डा पड़ता हुआ दिखलाई दे तो गरमी लाने के लिए दो चम्मच उत्तम ब्रांडी पिलाना चाहिए।

आमवात के रोग में इसकी जड़ के छः माशे चूर्ण को अरण्डी के तेल में औटाकर उस तेल की मालिश करने से लाभ होता है। बद गांठ और दूसरी सूजन पर इसके पत्तों का लेप गरम करके बाँधने से सूजन और बदगांठ बिखर जाती है। कण्ठमाला पर इसके पत्तों का लेप करने से और उनको पेट में पिलाने से लाभ होता है। नवीन जखम और व्रण पर इसके पत्तों का लेप गरम करके उसमें ताजा खोपरे का तेल मिलाकर लगाया जाता है। उन्माद रोग में इसके पत्तों के काढ़े में रोगी को बिठाया जाता है। खुजली के ऊपर इसके हरे और सूखे पत्तों को पीसकर उसमें तिल का तेल मिलाकर उसको रोग ग्रस्त भाग के ऊपर लगाना चाहिए और कुछ घण्टों के पश्चात् उसे गरम जल से धो डालना चाहिए। इसी प्रकार कुछ दिनों तक करना चाहिए। अगर खुजली सारे शरीर में हो तो गरम जल में इसका काढ़ा मिला कर उससे स्नान करना चाहिए।

संग खापुली

नाम—

संस्कृत—संग खापुली, संगरवी। मलयालम—कपाविला। लैटिन—Lochnera Pusilla (लोचनेरा पुसिला) Vinca Pusilla (विन्का पुसिला)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी क्षुप होता है। इसके पौधे की उँचाई ६ से लेकर ८ इञ्च तक होती है। इसके पत्ते १॥ से लेकर ३ इञ्च तक लम्बे और आधे से एक इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय, गंगा के ऊपरी मैदान, सिन्ध, गुजरात और कोकण में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

एन्सली के मतानुसार इसके सूखे पौधे के काढ़े में तैल को सिद्ध करके उस तैल की मालिश करने से कटिवात में लाभ होता है।

सज्जीखार

नामः—

संस्कृत—सर्जिका, स्वर्जिक्षार, कपोत, योगवाही, सुखवर्च्चक इत्यादि । हिन्दी—सज्जी, सज्जीखार । बंगला—साजिखार । गुजराती—साजीखार । मराठी—सज्जीखार । तैलगू—सज्जिकारमु । फ़ारसी—संजार-कलीया, अजगारशखार । अरबी—कलीवग्रब्बुल असफ़र । अङ्गरेजी—Soda corbonas Impura लेटिन—Caroxylon Foetidum (केरोक्झीलोन फोटिडम) ।

वर्णन—सज्जीक्षार दो प्रकार से बनता है । पहला खारी जमीन की मिट्टी में से प्राप्त किया जाता है और दूसरा वृक्षों के पंचांग के टुकड़े करके उनको एक बड़ी खाई में भरकर आग लगा देते हैं और उनकी राख में से सज्जी निकाली जाती है । जिस सज्जी में बहुत हलकी गुलाबी रंग की धारियाँ रहती हैं वह उत्तम मानी जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सज्जी चरपरी, गरम, तीक्ष्ण, गुल्मनाशक तथा शूल, वात, कफ, कृमि, आध्मान और पेट की वायु को नष्ट करनेवाली होती है ।

सज्जीक्षार और जौखार को समान भाग लेकर, पानी में पीस कर पीपवाले फोड़े पर लेप करने से उसका मुँह खुल जाता है । सज्जी को महीन पीसकर शहद में मिलाकर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है । सफेद दागों पर सज्जी और कली के चूने को पानी के साथ पीसकर लगावें और सूखने पर गाढ़े वस्त्र से उसे जोर से पोंछकर फिर उसकी जगह नया लगावें, ऐसा कई बार करने पर वहाँ एक दाग पैदा हो जाता है । फिर उस पर कुछ दिनों तक मीठा तेल मलने से वह दाग भी मिट जाता है और चमड़ी अपने असली रंग की हो जाती है ।

कर्नल चोपरा के मत से सज्जी कोष्ठ वायु को नष्ट करनेवाली, धातुपरिवर्तक और मूत्रल होती है ।

सदाफूल (बारहमासी)

नामः—

हिन्दी—बारहमासी, सदाफूल । मराठी—सदाफूल । पंजाब—रतनजोत । अङ्गरेजी—Redperiwinkle (रेडपेरी विन्कल) । लेटिन—Lochnera Rosea (लोचनेरा रोजीया) Vinca Rosea (विन्कारोजीया) ।

वर्णन—यह एक बहुत सुन्दर फूलदार पौधा होता है । इसके बिलकुल सफेद रङ्ग के और गहरे

गुलाबी रंग के सुन्दर फूल लगते हैं। इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। मगर आजकल भारतवर्ष के प्रायः सभी बगीचों में यह बोई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस उड़ीसा में बर्रे और ततइया के विष को नष्ट करने के लिए, दंश स्थान की जगह पर लगाया जाता है।

लारी यूनियन में इसकी मुलायम जड़ें पौष्टिक और अग्निवर्द्धक द्रव्य की तरह दी जाती है।

नेटाल, क्वीन्सलैण्ड और दक्षिणी अफ्रिका के दूसरे हिस्सों में यह वनस्पति मधुप्रमेह अथवा डायबिटीज को दूर करने के लिए उपयोग में ली जाती है। अत्यधिक रजःश्राव को रोकने के लिए भी इसके पत्तों का शीत निर्यास काम में लिया जाता है।

सगेरी

नामः—

मराठी—सगेरी, हरकिंजल। कनाड़ी—सगेरी। बम्बई—अण्डी। लैटिन–Sageraea Laurifolia (सगेरिया लौरीफोलिया)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का चमकदार पत्तियोंवाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते एक के पश्चात् एक लगते हैं। ये ऊपर की तरफ से बहुत चमकदार होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी कोकण में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते तीक्ष्ण, कड़वे और संकोचक होते है। कोकण में इनका उपयोग सेंक करने के काम में लिया जाता है।

सज्जी बूटी

नामः—

पंजाब—सज्जी बूटी। मराठी–कांजल। लेटिन–Salsola Kali (सालसोला काली)।

वर्णन—इस वर्ग की वनस्पतियाँ समुद्र के तटवर्ती खारी जमीनों में तथा सिंध और पञ्जाब की खारी जमीनों में पैदा होती है। अरबी में इस वर्ग की वनस्पतियों को "उसनान" कहते हैं। इस वर्ग की

वनस्पतियों में सज्जी बूटी (Salsola Kali) रेवकंद (Salsola Nudiflora) एलकुर (Salsola India) और इषल्न् (Anabasis Erispoda) ये चार वनस्पतियां विशेष उल्लेखनीय हैं। समुद्र के किनारे पैदा होने की वजह से इन वनस्पतियों में क्षारतत्व बहुत अधिक मात्रा में रहता है और इससे यह वनस्पतिवर्ग वैद्य लोगों के लिये बहुत उपयोगी होता है। भारतवर्ष में इन वनस्पतियों से बड़े प्रमाण में सज्जीक्षार तैयार किया जाता है। इन वृक्षों को काटकर, सुखाकर जाड़े के दिनों में बड़े बड़े गड्ढों में भर देते हैं और रात्रि के समय उनमें आग लगा देते हैं। इनसे तैयार हुई राख को अङ्गरेजी में "बरिला" संस्कृत में "कालिक" और अरबी में "एलकालि" कहते हैं। इस राख को ठण्डे पानी में मिलाकर, फिर उसे नितार कर गर्मी के दिनो में धूप में सुखा लेते हैं। इससे जो क्षार प्राप्त होता है उसीको सजीखार कहते हैं। इस प्रकार से तैयार किये हुए सजीक्षार में भिन्न २ प्रकार के और भिन्न २ प्रकार की क्रिया करनेवाले कई प्रकार के क्षार सम्मिलित रहते हैं। 'सज्जीलोटा' के नाम से पञ्जाब में जो सज्जीक्षार बिकता है वह सबसे उत्तम होता है। सज्जी बनाने का धन्दा प्रायः पंजाब और सिन्ध में अधिक होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

सज्जी बूटी में ३० प्रतिशत सज्जी क्षार रहता है। इस वनस्पति का पौधा कृमियों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

सदमण्डी (हिरनखुरी)

नामः—

बम्बई—सदमण्डी। बंगाल—सदीमोडी। कानपुर—हिरनखुरी। मध्यभारत—हिरनखुरी। लेटिन—Emilia Sonchifolia (इमिलिया सोन्चिफोलिया)।

वर्णन—यह छोटी जाति की रुएँदार वनस्पति बगीचों में अथवा तैयार की हुई जमीन में पैदा होती है। इसकी ऊँचाई १२ इंच से लेकर १६ इंच तक होती है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति पसीना लाने वाली होती है। यकृत के रोगों में इसको देने से बहुत लाभ होता है। इसीलिए इसको 'यकृत दोषघ्नी' भी कहते हैं। इसके पत्तों की फांट बनाकर ज्वर में देने से लाभ होता है। रतौंधी और नेत्राभिष्यन्द में इसके पत्तों का रस टपकाने से लाभ होता है।

मलाबार में इसके पौधे का काढ़ा ज्वरनाशक माना जाता है। आँतों की शिकायतों में इस काढ़े में मिश्री मिला कर देते हैं।

त्रावणकोर में इसके पत्तों का ताजा रस रतौंधी को दूर करने के लिए आँखों में बून्द बून्द करके टपकाया जाता है। आँखों के दुखने में भी यह गुलाबजल की तरह ठण्डक पहुँचाने के लिये टपकाया जाता है।

इण्डोचायना में इसके पत्तों का काढ़ा पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाला माना जाता है।

लारि यूनियन में इसका पौधा एक सङ्कोचक, दमे को दूर करने वाला और घाव को अच्छा करने वाला माना जाता है।

सन

नामः—

संस्कृत—शण, माल्यपुष्प, वामक, कटुतिक्त, दीर्घपल्लव, घनाहरी इत्यादि। हिन्दी—सन, शनाहुली, पटसन, घागही इत्यादि। बंगला—सन, शोन। बम्बई—सनताग। मराठी—सण, घागरू, ताग। गुजराती—शण। अंग्रेजी—Indian Hemp (इण्डियन हेम्प) लेटिन—Crotalria Juncea (क्रोटोलेरिया जुन्सीया)।

वर्णन—सन की खेती भारतवर्ष में प्रायः सब दूर होती है। इसका पौधा एक से चार फुट तक ऊँचा घास की तरह होता है। इसके पत्ते लम्बे अधिक और चौड़े कम होते हैं। इनकी लम्बाई १॥ इंच से ४ इंच तक होती है। इसकी शाखाओं के सिरे पर पीले रंग के पतंग की तरह फूल आते हैं। इसकी फली १ से लकर १। इंच तक लम्बी, लम्बगोल और नोकदार होती है। हर एक फली में आठ, दस बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सन के पत्ते गर्म, तीक्ष्ण, खट्टे, कड़ुवे, कसैले, वमन लाने वाले, मृदुविरेचक, गर्भघातक, पीड़ा को दूर करने वाले और वात तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं। इसके फूल श्वेत प्रदर और रक्त रोगों में लाभदायक होते हैं। इसके बीज ठण्डे, ग्राही, पचने में भारी, ऋतुश्राव नियामक और चर्म रोगों में लाभदायक होते हैं।

चरक संहिता में सन की जड़ को वमन लाने वाली कहा गया है। इसके पत्तों का रस तेल में मिला कर त्वचा के रोगों पर लगाने के उपयोग में लिया जाता है। इसके फूलों को दूध में पीस कर नारू इत्यादि दुष्ट व्रणों की सूजन पर बांधते हैं। इसके बीज रुधिर को साफ करने के लिए दिये जाते हैं।

डा० देसाई के मतानुसार सन के पत्ते शीतल, स्निग्ध और चर्मरोग नाशक होते हैं। इसके बीज पाचक, मृदुविरेचक और आर्तवजनन होते हैं। शरीर में गर्मी बढ़ जाने से त्वचा के ऊपर जो चर्म रोग हो जाते हैं उनमें सन के पत्तों की फांट बना कर देने से रक्त की गरमी शान्त होकर रक्त साफ हो जाता है। इसके पत्तों का लेप भी त्वचा के ऊपर किया जाता है। खतमी के पत्तों के बदले इन पत्तों को देने से

काम चल जाता है। शरीर में बढ़ी हुई चर्बी को कम करने और जीवन विनिमय क्रिया को सुधारने के लिए इसके बीजों का चूर्ण भोजन में मिला कर दिया जाता है।

स्थूल शरीर वाली स्त्रियों के अनार्त्तव रोग में भी इसके बीजों का चूर्ण उपयोगी होता है।

उपयोगः—

नारू—सन के बीज और गेहूँ के आटे को समान भाग लेकर, समान भाग घी में पका कर गुड़ के साथ तीन दिन तक खिलाने से नारू मिटता है।

हिचकी—सन का तागा, उड़द और हल्दी के चूर्ण को चिलम में रख कर उनका धूम्र पान करने से हिचकी मिटती है।

कांच निकलना—सन के बीजों को पीस कर भुरभुराने से कांच निकलना बन्द हो जाता है।

श्वेत प्रदर—सन के फूलों का सेवन करने से श्वेत प्रदर और रक्तविकार मिटता है।

रुधिर का जमाव—जमे हुए रुधिर पर इसके पत्तों का लेप करने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है।

मात्रा—इसके बीजों की मात्रा तीन माशे से छः माशे तक है।

सनपर्णी

नामः—

संस्कृत—सनपर्णी। कच्छी-झीपटी वेल। गुजराती—चीपकणो वेलो। तैलगू—नयाकुपोचा, लेटिन—Pseudarthria Viscida (स्यूडेरथरिया विसिडा)।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वनस्पति होती है। इसके पत्तों पर सफेद रंग का रुँआ होता है। इसके फूल बहुत छोटे, हलके गुलाबी या बैंगनी होते हैं। इसके बीज कुछ भूरापन लिये हुए काले रंग के होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होती है। यह सारा पौधा इतना चिकना होता है कि इसका कोई भी हिस्सा कपड़े में लग जाने से वह चिपक जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा पित्तविकार, संधिवात, ज्वर, हृदय रोग, बवासीर और कृमिरोगों में उपयोगी समझा जाता है। इसकी जड़ें जहरी जानवरों के डंक पर लगायी जाती है।

सफ़ेदा

नामः—

पंजाब—सफेदा, वेद, खतुनी, फ्रास, जंगली फ्रास्ट, माल, रिक्रन, सन्नान। क्वेटा—स्पेदार। पश्चिमी हिमालय—चित्ता बागुन, सफ़ेदा। काश्मीर—फ्रास। अंग्रेजी—White poplar, (ह्वाइट पोपलार) लेटिन—Populas Alba (पापुलस एल्बा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल कुछ सफेदी लिये हुए भूरे रङ्ग की होती है। नवीन डालियों की छाल मुलायम और पुरानी डालियों की छाल बहुत उबड़ खाबड़ होती है। इसके पत्ते पाँच से लेकर दस सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसका फल ६ मिलिमीटर लम्बा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल पौष्टिक होती है इसका उपयोग रक्त को शुद्ध करने और चर्म रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र रोग में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

सफ़ेद बबूल

नामः—

संस्कृत—श्वेत वर्बूर, विप्रलोमी, किङ्किरित, पीतभद्र। हिन्दी—सफेद बबूल, सफेद कीकर, एरिञ्ज, झिन्द। गुजराती—हरी बावल, पीलो बावल। कच्छी—हरमुं बावर। बंगाल—सफेद बबूल। मराठी—देव बावूल, पांढरी बवूल, निम्बर। पंजाब-रेरु, सफेद कीकर। राजपूताना-एरिञ्ज। अंग्रेजी-White Babul ह्वाइट बबूल। लेटिन—Acacia Leucophloea (एकेसिया ल्यूकोफोलिया)।

वर्णन—यह बबूल की एक सफेद जाति होती है। इसके वृक्ष मध्यम कद के होते हैं। इस वृक्ष के छोटी-छोटी अनेक शाखाएँ लगती हैं। कई स्थानों पर इसकी शाखाओं में गठानें रहती हैं, जिन्हें हेमर गाँठ कहते हैं। इसके पत्ते बबूल के पत्तों की तरह और काँटे बबूल के काँटों से कुछ छोटे होते हैं। इसकी डालियों के सिरों पर करीब आधे हाथ से एक हाथ लम्बे फूलों के तुर्रे निकलते हैं। इन तुर्रों पर भी छोटी छोटी शाखाएँ होती हैं और उन शाखाओं पर बहुत सुन्दर पीले रङ्ग के सुगन्धित फूल आते हैं। इसकी फलियाँ चपटी, संकड़ी और चार से छः इंच तक लम्बी होती हैं। हरएक फली में आठ से लेकर बीस तक बीज होते हैं।

यह वनस्पति पंजाब, राजपूताना, मध्य भारत, कर्नाटक, गुजरात और काठियावाड़ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से इसकी छाल कड़वी, कसैली, शीतल, कृमिनाशक, ज्वर को दूर करनेवाली, सूजन

को बिखेरने वाली और खाँसी, कुष्ठ, प्यास, वमन, दाह, रुधिर, विकार और पित्तविकार को दूर करनेवाली होती है।

इसकी छाल संकोचक होती है। इसकी ताजा जड़ें चार तोले की मात्रा में ठण्डे पानी में पीस छान कर, पागल कुत्ते के विष को दूर करने के लिए सात दिन तक पिलाई जाती है। जब तक विप का वेग प्रकट न हुआ हो तब तक उस वेग को रोकने के लिए इनका उपयोग होता है, वेग प्रकट होने के पश्चात् इनको देने से कोई लाभ नहीं होता।

इसकी छाल में बबूल की छाल के समान ही रासायनिक तत्व रहते हैं मगर बबूल की छाल से इसकी छाल में उनकी तादाद कुछ कम होती है।

सफ़ेद बहमन

नामः—

हिन्दी—सफ़ेद बहमन। लेटिन—Centaurea Behen (सेंचुरिया बेहन)।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में पैदा नहीं होती इरान, अफगानिस्तान की तरफ से इसकी जड़ें भारतवर्ष में बिकने के लिए आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक होती है। पीलिया रोग और पथरी के रोग में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें बेहमिन नामक एक प्रकार का रवेदार उपक्षार पाया जाता है।

सफ़ेद सेमर

नामः—

संस्कृत—श्वेत शाल्मलि, कूट शाल्मलि। हिन्दी—सफेद सेमर। बङ्गला—श्वेत शिमूल। बम्बई—सफेद सवारा। मराठी—पांढरी सॉंवर। लेटिन—Eriodendron Anfractuosum (इरिओडेण्ड्रोन एन्फ्रेक्च्यूओसम)।

वर्णन—यह सेमर की एक सफेद जति होती है। इसका वृक्ष सीधे पिण्ड का और ऊँचा होता है। जब यह छोटा होता है तब इसके काँटे लगे रहते हैं। इसके फूल कुछ मैलापन लिये हुए सफेद होते हैं। ये लाल फूलवाले सेमर के फूलों से बहुत छोटे होते हैं। इसका फल सेमर के फल से कुछ बड़ा, धुँधले रङ्ग का और गोल होता है। इस वृक्ष के धुँधले लाल रङ्ग का गोन्द लगता है। इसके एक वर्ष से लेकर दो

वर्ष तक के पौधे की जड़ें सेमर मूसली के नाम से बिकती हैं। इतने ही बड़े पौधे की जड़ें औषधि के काम में आती हैं। अधिक बड़े पौधे की जड़ें बेकाम हो जाती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके छोटे पौधे की जड़ें मूत्रल, बलवर्द्धक और वाजिकरण होती हैं। इसका गोन्द ग्राही, मूत्र संकोचक और बलवर्द्धक होता है। इसके कोमल पत्ते स्निग्ध और ग्राही होते हैं। सफेद सेमर की जड़ें अथवा सेमर मूसली की पेज बनाकर अति मैथुन व अधिक वीर्य्यपात की वजह से होनेवाली थकावट को दूर करने के लिए दी जाती है। सूजन तथा जलोदर में इसकी कोमल जड़ों को देने से पेशाब को मात्रा बढ जाती है। सुजाक में इसके कोमल पत्तों को पीस कर देते हैं। छोटे बच्चे रात को नीन्द में पेशाब करने लगते हैं उसको बन्द करने के लिए सफेद सेमर का गोन्द दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मत से सफेद सेमर का गोन्द बलवर्द्धक, धातु परिवर्तक और संकोचक होता है। इसकी जड़ें वमन कारक और बिच्छू के विष में लाभदायक होती हैं और इसके कच्चे फल शान्तिदायक होते हैं।

उपयोग—

मूत्रकृच्छ्र—इसके एक तोले कोमल पत्तों को जल के साथ पीसकर उसको पीकर ऊपर से मक्खन निकाला हुआ दूध तीन चार दिन तक पीने से नवीन मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

जलोदर—इसकी कोमल जड़ों का क्वाथ पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर जलोदर और सर्वांग जलमय शोथ मिटता है।

पुराना अतिसार—इसके छोटे वृक्ष की जड़ का क्वाथ पिलाने से पुराना अतिसार और आमातिसार मिटता है।

सन्निपात

नामः—

संस्कृत—नेपाल निम्ब। हिन्दी—सन्निपात। बंगाल—नेपालनिम। सिंध—सोनपात। लेटिन—Schweinfurthi Sphoerocarpa (स्विनफरथि स्फोरोकार्पा)।

वर्णन—यह क्षुद्र जाति की वनस्पति सिंध, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और नेपाल में पैदा होती है। इसके पत्ते एक इंच लम्बे चमड़े के समान, लम्बगोल और रुएँदार होते हैं। इसके पत्तों के मध्य भाग की अपेक्षा उसके किनारे फीके रंग के होते हैं। इसकी छाल कत्थई रंग की और फल गोल होते हैं। इसका स्वाद कुछ कड़ुवा और चाय के समान होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से नेपाल नीम किंचित् गरम, योगवाही, हलका, कडुवा तथा पित्त, कफ, सूजन, रुधिर रोग और ज्वर को नष्ट करता है। सन्निपात, ज्वर और निद्रा को यह दूर करता है। इसके शेष गुण चिरायते के समान होते हैं।

यह वनस्पति ज्वर के अन्दर त्रिदोष या सन्निपात के चिह्न दिखलाई देने पर उपयोग में ली जाती है। यह पौष्टिक मूत्रल, ज्वरनाशक और मोती ज्वर (Typhoid) के अन्दर लाभदायक होती है।

स्टॉक्स के मतानुसार इसके फल और डालियों तथा पत्तों के चूर्ण को मिलाकर एक औषधि तैयार की जाती है। जो टाइफ़ाइड ज्वर के लक्षणवाले रोगियों को खिलाने के उपयोग में ली जाती है। इसके चूर्ण को सुंघाने से नाक से गिरनेवाला खून बन्द हो जाता है।

डा० देसाई के मतानुसार सन्निपात पसीना लानेवाला, ज्वरनाशक, मूत्रल और उत्तेजक होता है। ज्वर के अन्दर सन्निपात के लक्षण प्रकट होने पर इस वनस्पति की फ्राण्ट बनाकर देते हैं।

डिजीटेलिस के अन्दर जो रासायनिक तत्व पाये जाते हैं उन्हींसे मिलते-जुलते रसायनिक तत्व सन्निपात में भी पाये जाते हैं। इसमें १८½ प्रतिशत खनिजद्रव्य रहते हैं।

सनाय

नामः—

संस्कृत—स्वर्णपत्री, कल्याणी, स्वर्णमुखी। हिन्दी—सनाय। गुजराती—मींढी आंवल। मराठी—सोनामुखी। बंगला—सोनामुखी। अरबी—सना। फारसी—सना। अङ्गरेजी–Senna। लेटिन–Cassia Elongata (केसिया इलोंगेटा)।

वर्णन—सनाय के वृक्ष सिन्ध, गुजरात, पञ्जाब, दक्षिण भारत और संयुक्तप्रदेश में बोये जाते हैं। इसके पत्तों का आकार इमली के पत्तों के समान मगर उनसे लम्बाई चौड़ाई में बड़ा होता है। इसकी फलियाँ लम्बी, थोड़ी चौड़ी, कुछ मुड़ी हुई और दोनों ओर गोल किनारों की होती है। इसके पत्ते साबित, साफ, कुछ चमकदार, पीलापन लिये हुए और सुगन्धित होते हैं।

सनाय दो प्रकार की होती है। एक अरबी अलेग्ज़ेण्ड्रियन और दूसरी तिनवेली (देशी)। अरबी सनाय के पत्ते करीब डेढ़ इञ्च लम्बे और दोनों तरफ से नोकदार होते हैं। देशी सनाय के पत्ते लम्बगोल और बोथरे होते हैं। देशी सनाय में बहुत सी दूसरी जाति के झाड़ों के पत्ते भी मिलाये हुए रहते हैं। देशी सनाय से अरबी सनाय विशेष प्रभावशाली और गुणकारी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सनाय कब्जियत, मंदाग्नि, यकृत, उदररोग, प्लीहोदर, अजीर्ण, विषमज्वर, कामला पांडुरोग का नाश करती है।

सनाय एक प्रधान विरेचक वस्तु होती है। इसको छोटी मात्रा में लेने से पाचनक्रिया सुधर कर दस्त साफ होता है। बड़ी मात्रा में इसको लेने से मरोड़ी चलकर, पानी के समान दस्त होते हैं। इसकी प्रधान क्रिया छोटी आंत पर होती है। यकृत को यह थोड़ी उत्तेजना देती है। कुपचन और कब्जियत के रोगों में जब शरीर के अन्दर मल जम जाता है, सनाय को देने से बहुत लाभ होता है। बच्चों के लिए भी इसका जुलाब एक उत्तम वस्तु है। पेट में मरोड़ी न होने देने के लिए इसमें सोंठ, सौंफ इत्यादि सुगन्धित द्रव्य मिलाना चाहिए और इसके बदजायके को दूर करने के लिये कालीदाख, मुलहठी इत्यादि चीजों का मिश्रण करना चाहिए।

पित्तज्वर में सनाय अथवा अमलतास का जुलाब देना शास्त्र सम्मत है। इस जुलाब को देने से शरीर में संचित पित्त बाहर निकल जाता है और उस पित्त के साथ में ज्वर का विष भी बाहर निकल जाता है। दूषित पित्त निकल जाने के पश्चात् नवीन और शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है और तब ज्वरनाशक औषधियाँ शरीर में क्रिया करने योग्य हो जाती हैं। दूषित पित्त निकल जाने से शरीर की दाह और मस्तकशूल इत्यादि उपद्रव कम हो जाते हैं।

मात्रा—सनाय के चूर्ण की मात्रा १॥ माशे से २ माशे तक है।

उपयोगः—

विरेचन—सनाय के पत्ते २॥ तोला, जौकुट सोंठ ३॥। माशे, जौकुट लौंग ३॥। माशे इनको २५ तोले खौलते हुए पानी में एक घण्टे तक भिगोकर मलकर छान लेना चाहिए। इस निर्यास में से ५ तोले निर्यास पिलाने से निरुपद्रव और उत्तम विरेचन होता है। बच्चों को इसकी चौथाई मात्रा देनी चाहिए।

कब्जियत—सनाय को कच्ची इमली के रस के साथ लेने से कब्जियत मिटती है।

वादी—इसको शक्कर और सोंठ के साथ लेने से वादी की पीड़ा मिटती हैं।

दाह—सनाय को अनार के रस के साथ लेने से दाह मिटती है।

भूख की कमी—इसको बिजौरे के रस और शक्कर को साथ लेने से भूख बढ़ती है।

वायु गोला—वच के साथ सनाय को लेने से वायुगोला मिटता है।

चित्तभ्रम—सनाय को निर्गुण्डी के साथ लेने से चित्तभ्रम मिटता है।

उर्ध्वश्वास—जंगली आंवलों के रस के साथ सनाय को लेने से उर्ध्वश्वास मिटता है।

मूढ़गर्भ—इसको पीपल की छाल के साथ लेने से मूढ़गर्भ या छोड़ गिर जाता है।

अजीर्ण—सनाय को अदरक के रस के साथ लेने से अजीर्ण मिटता है।

जलोदर—सनाय को आंवलों के रस के साथ लेने से कुष्ठ और जलोदर में लाभ होता है।

छाती की रुकावट—इसको अनारदाने के रस के साथ लेने से छाती में आया हुआ ढूंजा मिटता है।

विष विकार—सनाय को काली बकरी के दही के साथ लेने से विषविकार मिटता है।

पेट की सूजन—सनाय को बकरी के मूत्र के साथ लेने से पेट की शोथ उतरती है।

बालों की सफ़ेदी—इसको जल भांगरे के रस के साथ लेने से बाल काले होते हैं।

शीतांग—इसको पीपल अथवा इमली के पत्तों के रस के साथ लेने से शीतांग मिटता है।

मस्तक की वायु पीड़ा—सनाय को ऊँटनी के दूध के साथ लेने से मस्तक की वायुपीड़ा मिटती है।

पित्तविकार—इसको शक्कर के साथ लेने से पित्तविकार मिटता है।

बनावटें—

पंच सकार चूर्ण—सनाय, सोंठ, सौंफ, सैंधा नमक और काली जौहरड़ इन पाँचों चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिए। यह आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध पंच सकार चूर्ण है। इसको तीन माशे से लेकर छः माशे तक की मात्रा में गरम जल के साथ लेने से बिलकुल निरुपद्रव और उत्तम विरेचन हो जाता है तथा पेट में संचित मल और दूषित पित्त निकल जाता है। विरेचन के लिए यह बहुत उत्तम योग है।

समुद्र फल

नाम:—

संस्कृत—समुद्र-फल, अग्निफल, अम्बुज, हिज्जल, निचूला, इत्यादि। हिन्दी—समुद्रफल, हिज्जल, पनियारी, निओरा, जुजर इत्यादि। बङ्गाल—हिज्जल, कुमिया, समुन्दर। गुजराती—समुन्दर फल। कोकण—निवार। मराठी—समुद्र-फल, दाते फल, इङ्गली, नेवार, सठफल, तिवार। उर्दू—समुन्दर फल। तामील—सेंगाडम्बु, समुद्र पुल्लानि। तैलगू—कनपुचेट्टु। इंग्लिश—Indian Oak (इण्डियन ओक)। लेटिन—Barringtonia Acutangula (बेरिंग टोनिया एक्युटेंगुला)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल और बदाम के पत्तों से कुछ कुछ मिलते जुलते होते हैं। इसके फूल कलंगीनुमा लाल रंग के होते हैं। इसके फल में चार कोने रहते हैं। इसके फल काबुली हरड के समान, भूरे रङ्ग के और खड़ी धारियों वाले होते हैं। इनको पानी में डालने से वे मुलायम हो जाते हैं। इनकी छाल पतली और बीज मोटे होते हैं। इसके बीज छोटे जायफल के समान होते हैं। इसके फलों का स्वाद कडुवा और वामक होता है। यह वनस्पति विशेष कर कोकण और बङ्गाल में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से समुद्र फल चरपरा, गरम, वात-विनाशक, भूतबाधा को दूर करने वाला और कफ रोग, भ्रान्ति, तथा दावानल दोष को हरने वाला होता है।

निघण्टु रत्नाकर के मत से समुद्र फल गरम, कड़वा, त्रिदोषनाशक तथा वात, भूत बाधा, कफ, भ्रान्ति, शिरो रोग और दावानल दोषों को दूर करने वाला होता है। इसको जल में घिस कर पीने से कृमि रोग दूर होते हैं।

इसके पत्तों का रस आमातिसार में दिया जाता है। इसका फल कड़ुवा, कसैला, आँतों को संकुचित करने वाला, कृमिनाशक, वातकारक, पित्त को दूर करने वाला तथा रक्त रोग, खांसी, आँख के व्रण, मस्तक-शूल और त्रिदोष को दूर करने वाला होता है।

यूनानी मत से इसका फल कड़ुवा, संकोचक, दुग्धवर्द्धक और पुरातन प्रमेह तथा कॉलिक उदर शूल, उपदंश, कमर का दर्द और जुकाम को दूर करने वाला होता है।

समुद्र फल की जड़ कड़वी होती है और ऐसा खयाल किया जाता है कि इसमें सिनकोना की छाल में पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों के समान ही रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। यह भी समझा जाता है कि इसकी जड़ मृदुविरेचक और शीतल होती हैं। इसके बीज बहुत गरम और खुश्क होते हैं। ये एक सुगन्धित द्रव्य की तरह कॉलिक शूल, प्रसव वेदना और नेत्र शुक्ल रोग में दिये जाते हैं।

बम्बई में इसकी जड़ गर्म, उत्तेजक और वामक मानी जाती है। उत्तरी भारत में जिन रोगों में मैनफल का व्यवहार किया जाता है उन्हीं रोगों पर दक्षिणी भारत में समुद्र फल काम में लिया जाता है। मैनफल प्रौढ़ मनुष्यों के लिए और समुद्र फल बालकों के लिए विशेष हितकर माना जाता है। दोनों ही वस्तुएँ वामक और विरेचक होती हैं। बच्चों के कफरोगों में समुद्र फल विशेष उपयोगी होता है। लेकिन कभी कभी जब उलटी नहीं होती है, तब यह कुछ त्रासदायक हो जाता है। ऐसी स्थिति में थोड़ा सा नमक गरम पानी में मिला कर देने से वमन होकर कफ निकल जाता है। अगर इससे बच्चों को दस्त उलटी अधिक होने लगे तो चावलों की पेज में घी मिला कर देने से शान्ति हो जाती है। बच्चों की छाती में कफ जमा होने से अगर उनकी पसली में दर्द हो और पेट फूल रहा हो तो ऐसे समय में समुद्र फल को पीस कर पेट और छाती पर लेप करना चाहिये। दमे के अन्दर समुद्र फल ६ माशा और सफेद अपराजिता की जड़ ६ माशा दूध में औटाकर दी जाती है। इससे दस्त और उल्टी होकर दमा शान्त हो जाता है।

कम्बोडिया में इसकी छाल अतिसार और सुजाक में एक संकोचक द्रव्य की तरह दी जाती है। मलेरिया ज्वर में इसे एक ज्वरनाशक द्रव्य की भांति दिया जाता है। जहरीले जानवरों के डंक पर इसका लेप किया जाता है। गर्भाशय से अनियमित रक्तस्राव (Metrorrhayia) होने की बीमारी में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इसका फल मसूड़ों की सूजन में एक संकोचक और पौष्टिक पदार्थ की तरह दिया जाता है।

समुद्र फल के अन्दर एक प्रकार का साबुन की तरह फेनयुक्त द्रव्य रहता है। इसके चूर्ण को पानी में डाल कर हिलाने से फेन पैदा हो जाता है और वह बहुत देर तक टिकता है।

मात्रा—समुद्रफल की मात्रा एक से लेकर दो रत्ती तक होती है।

डायमाक का कथन है कि, समुद्रफल बालकों को होनेवाले अनेक प्रकार के रोगों पर बहुत लाभ पहुँचाता है इसीके इसको "नर्सफुट" भी कहते हैं। बच्चों के लिए निरन्तर उपयोग में आनेवाली घरेलू औषधियों में यह भी एक है। जब बालक को सरदी लग जाती है और कफ की वजह से तकलीफ होने लगती है तब समुद्र फल को घिसकर उसकी छाती के मध्य में तथा गले के ऊपर लगाते हैं। अगर कफ बहुत अधिक जम गया हो और उसकी वजह से बालक को श्वास लेने में बहुत कष्ट हो रहा हो तो दो तीन रत्ती समुद्रफल को पानी में पीसकर अदरक के रस के साथ या वैसे ही पिला देने से वमन होकर सब कफ बाहर निकल जाता है और उसकी श्वासोच्छ्वास की पीड़ा दूर हो जाती है।

डा० आर० एन० खोरी का कथन है कि अगर बालक के पेट में शूल चल रही हो और उसकी आँतों में वायु भरकर उसे आफरा हो गया हो अथवा छाती में कफ का जमाव हो गया हो तो समुद्रफल को पानी के साथ घिसकर पेट अथवा छाती के ऊपर जहाँ तकलीफ हो लेप करना चाहिए और दो से चार रत्ती की मात्रा में इसको अदरक के रस में मिलाकर पिलाना चाहिये।

वङ्गसेन लिखते हैं कि जिनकी आँखों में से रात दिन पानी झरता हो उनकी आँखों में समुद्रफल को चावलों के पानी के साथ पीसकर आँजने से पानी का गिरना बन्द हो जाता है। इस कार्य के लिए यह एक महौषधि है।

उपयोगः—

चमड़े का दाग—समुद्र फल को मालकांगनी के साथ पीस कर लेप करने से चमड़ी के दाग मिट कर साफ हो जाते हैं।

बद्ध कोष्ठ—समुद्र फल को मुनक्का के साथ लेने से बद्धकोष्ठ मिटता है।

उदरशूल—इसके फल की फक्की लेने से अजीर्ण तथा आमाजीर्ण से पैदा हुई पेट की शूल मिटती है।

नेत्र पीड़ा—इसके बीजों को पीस कर गर्म करके लेप करने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

सर्दी का जमाव—बच्चों की छाती में जो सर्दी का जमाव हो जाता है उसको वमन के द्वारा निकालने के लिये इसके थोड़े से बीज पीस कर पिलाना चाहिये।

नेत्र रोग—इसके फल की मींगी को बकरी के मूत्र में घिस कर आँख में आँजने से नेत्र रोग मिटते हैं।

बहिरा पन—समुद्र फल के चूर्ण को गंगेरन के रस में मिला कर कान में टपकाने से बहिरापन मिटता है।

श्वेत कुष्ठ—समुद्र फल को भांगरे के रस के साथ कई दिनों तक सेवन करने से श्वेत कुष्ठ मिटता है।

आंख की फूली—समुद्र फल को बकरी के मूत्र में घिस कर आंजने से आँख का फूली कट है।

आधाशीशी–समुद्र फल को बकरी के मूत्र मे पीस कर सूंघने से आधाशीशी मिटता है ।

इकान्तरा—समुद्र फल को अजवायन के साथ खाने से इकान्तरा ज्वर और उदरशूल मिटता है ।

रक्तपित्त—समुद्र फल को खुरासानी अजवायन के साथ देने से रक्तपित्त में लाभ होता है ।

मूर्च्छा—समुद्र फल को बकरी के मूत्र में पीस कर सुंघाने से मूर्च्छा मिटती है ।

मासिक धर्म की खराबी—समुद्र फल को गुड़ के साथ तीन दिन तक खाने से मासिकधर्म शुद्ध होने लगता है ।

बालों की सफेदी—समुद्र फल को पानी में पीस कर बालों पर लेप करने से ८४ दिन में बाल काले हो जाते है ।

उन्माद–समुद्र फल और आक की जड़ को मिलाकर सुंघाने से उन्माद में लाभ होता है ।

कामेन्द्रिय की कमजोरी—समुद्रफल को तूम्बी के गूदा के रस के साथ पीसकर लिंग पर लेप करने से लिंग मोटा हो जाता है और कामशक्ति बढ़ती है ।

दमा—इसको शहद के साथ लेने से दमे में लाभ होता है ।

पसीना—इसको घी के साथ मिलाकर मालिश करने से पसीना आना बन्द हो जाता है ।

पित्त विकार—समुद्र फल को हलदी के साथ खाने से पित्तविकार मिटते हैं ।

कांख बलाई (बगल का फोड़ा)—समुद्र फल को हिंगोट के रस के साथ पीसकर लगाने से काँख बलाई या बगल में होनेवाली विद्रधि मिटती है ।

तलवार का घाव—इसको शहद में मिलाकर लगाने से तलवार का घाव मिट जाता है ।

कामला—समुद्र फल को जलभांगरे के रस के साथ लेने से कामला रोग मिटता है ।

नाभि का टलना—इसको दही के साथ लेने से टली हुई नाभि मुकाम पर आ जाती है ।

बिच्छू का विष—इसको पानी में पीसकर डंक पर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है ।

साँप का विष—इसको महीन पीसकर दोनों आँखों में अञ्जन करने से साँप के विष में लाभ होता है ।

वंध्यत्व—समुद्र फल को कुछ दिनों तक दही के साथ खिलाने से वन्ध्या स्त्री गर्भधारण के योग्य हो जाती है ।

दमा—एक भाग समुद्र फल और दो भाग पीपल को जलाकर एक मासे की मात्रा में पान में रखकर खाने से दमे में बहुत लाभ होता है ।

रतौन्धी—समुद्र फल को बकरी के मूत्र के साथ पीसकर आँख में आँजने से रतौंधी मिटती है ।

पेट के कीड़े—इसको गुड और शक्कर के साथ देने से पेट के कीड़े मर जाते हैं ।

नपुंसकता—इसको अगस्त्य के रस के साथ देने से नपुन्सकता मिटती है ।

आवेश रोग—समुद्र फल को गधे के मूत्र के साथ पीस कर अञ्जन करने से भूत प्रेत का आवेश मिटता है।

कमर की पीड़ा—इसको आक की जड़ के साथ पीस कर लेप करने से कमर की पीड़ा मिटती है।

सन्निपात—आक की जड़ और समुद्र फल को घिस कर नस्य देने से सन्निपात में लाभ होता है।

रक्त प्रदर—इसको भैंस के गोबर के रस के साथ देने से रक्त प्रदर मिटता है।

वायुगोला—समुद्र फल को भांगरे के रस के साथ देने से वायुगोला मिटता है।

बवासीर—इसको मिरच और काले धतूरे के साथ देने से बवासीर में लाभ होता है।

कंठमाला—समुद्र फल को गाय के घी के साथ मिलाकर लेप करने से कंठमाला मिटती है।

दाद—समुद्र फल को हरड़ के साथ पीस कर लगाने से दाद मिटता है।

बहिरापन—इसको शहद में मिलाकर कान में डालने से कान का बहिरापन मिटता है।

आँख का फूला—समुद्र फल को निर्गुण्डी के रस में घिस कर अञ्जन करने से आँख का फूला कटता है।

आँख का जाला—चार माशे दाख, घोड़े के नख और समुद्र फल को खरल करके अञ्जन करने से आँख का पटल और जाला दूर होता है।

वन्ध्यत्व—पलाश की जड़ की छाल चार माशे, नागर मोथा चार माशे, गज पीपल छः माशे और समुद्र फल चार माशे इन सबको पीसकर गाय के दूध के साथ तीन दिन में लेने से वन्ध्यापन मिटता है।

समुद्र फल २ (इज्जुल)

नामः—

संस्कृत–निया। हिन्दी–इज्जुल, समुद्र फल। बङ्गला–कुण्डा, समुद्र फल। कोकण–निवार। मराठी–निवार तामील—समुत्तर पालम। तेलगू—समुद्र पाण्डु। अंग्रेजी—Indian Oak (इण्डियन ओक) लेटिन–Barringtonia Racemosa (बेरिंग टोनिया रेसीमोसा)।

वर्णन–यह समुद्र फल की एक दूसरी जाति होती है। जो भारतवर्ष के पूर्वीय और पश्चिमी समुद्र प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ में पाये जानेवाले औषधि तत्व सिनकोना की छाल में पाये जानेवाले तत्वों से मिलते जुलते होते हैं। इसका फल खाँसी, दमा और अतिसार में लाभदायक होता है। इसके बीज कॉलिक शूल

और नेत्र रोग में लाभदायक माने जाते हैं। इसके फल का गूदा दूध के साथ पीलिया और दूसरे पित्त रोगों में दिया जाता है। इसके बीज सुगन्धित द्रव्य की तरह स्त्रियों को प्रसव के समय दिये जाते हैं। इसके चूर्ण का सूँघनी की तरह भी उपयोग किया जाता है। इस चूर्ण को कुछ दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लेप बनाकर चर्मरोगों पर लगाने के काम में लेते हैं।

इण्डो चायना में इसकी जड़ें कटु पौष्टिक और ज्वर नाशक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती हैं। इसके फल खाँसी और दमा में लाभदायक माने जाते हैं। इसके गूदा को कुचल कर उसे आटे और तेल में मिलाकर अतिसार में खिलाते हैं और इसके सुगन्धित बीज कालिक शूल और नेत्र रोगों में काम में लिये जाते हैं।

समुद्र शोष

नामः—

संस्कृत–वृद्ध दारुक, आवेगी, अजांत्री, दीर्घवल्लरी, समुद्र पत्र, समुद्र शोष, रिक्षगन्धा इत्यादि। हिंदी–समुद्र का पात, समुद्र शोष, विधायरा। बंगाल–बिचतारक, गुगुली। बम्बई–गुगुली, समुन्दर शोष। गुजराती–समुद्र शोष वरधारो। तेलगू–चन्द्रपोडा। उर्दू–समुन्दर सोख। अंग्रेजी–Elephant Creeper, (एलीफण्ट क्रीपर) लेटिन—Argyreia Speciossa (अगेरिया स्पेसिओसा)।

वर्णन—यह एक बहुत बड़ी जाति की बेल होती है। इसके पत्ते गोल, बालिश्त भर लम्बे, ऊपर से मुलायम और सुहावने तथा नीचे से सफेद रंग के होते हैं। इसका तना काष्टपूर्ण, ऊबड़ खाबड़ और चौठा होता है। इसके फूल बैंगनी, मोटे और घण्टाकृति होते हैं। इसके पत्ते और नवीन बेल की जड़ें औषधि के काम में आती हैं। वैद्यों का एक बड़ा समुदाय समुद्र शोष की जड़ों को ही विधायरा मानता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से समुद्र शोष की जड़ें कड़वी, कामोद्दीपक, मूत्रल और प्रमेह, सुजाक, पथरी और पुराने व्रणों को अच्छा करनेवाली होती हैं।

हिन्दू चिकित्साशास्त्र में इसकी जड़ें धातुपरिवर्त्तक और पौष्टिक मानी जाती हैं। संधिवात और मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों में इनका विशेष उपयोग किया जाता है।

इसके पत्ते फोड़ों को पकाकर सुखानेवाले होते हैं और इनका उपयोग एक स्निग्धताकारक पुलटिस की तरह जखमों पर बाँधने के लिए किया जाता है। दूध के साथ इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से घुटने की झिल्ली की सूजन और पीड़ा मिट जाती है। इसको सिरके में मिलाकर शरीर पर मर्दन करने से शरीर का बेडौल मुटापा मिट जाता है।

इसके पत्ते त्वचा पर लगाने से उत्तेजक और चर्मदाहक पदार्थ का काम करते हैं।

उपयोग—

गाँठ और फोड़े—गाँठ और फोड़ों को पकाने के लिए इसके पत्तों को रुएँ की ओर से बाँधना चाहिए। अगर फोड़ों को पकाना नहीं हो और बिखेरना हो तो इसके पत्तों को रुएँ के उल्टी तरफ से बाँधना चाहिए।

रक्तरोग—इसकी जड़ को औटाकर छानकर उसमें शहद मिलाकर पीने से रक्त साफ होता है।

गठिया—समुद्रशोष की जड़ को औटाकर पीने से गठिया में लाभ होता है।

दाद—इसके रस का लेप करने से बच्चों के पुराने दाद की जाति के फोड़े मिटते हैं।

सूजन—इसके पत्तों का पुलटिस बांधने से सूजन बिखर जाती है।

नारू—नारू पर इसके पत्तों का पुलटिस बाँधने से लाभ होता है।

खुजली—समुद्र शोष का अर्क, तिल्ली का तेल और सोया के बीजों को मिलाकर पीस कर लेप करने से खुजली और और त्वचा के रोग मिटते हैं।

नासूर—बिगड़े हुए फोड़े, नासूर और लम्बे घावों पर इसके पत्तों को रुएँ की ओर से बाँधने से वे साफ हो जाते हैं और उनसे साफ पीव निकलने लगता है। उसके पश्चात् उन पर इसके पत्तों को उल्टी तरफ से बाँध देने से वे सूख जाते हैं।

समुद्र फेन

नामः—

संस्कृत—समुद्र फेन, हिण्डीरः, अब्धिकफः, सुफेनम्। हिन्दी—समुद्र फेन। गुजराती—समुद्रफीण, मराठी—समुद्र फेण। बंगला—समुद्र फ़ेन। मारवाड़ी—समन्दर का झाग। अंग्रेजी—Cutel Fishbone (क्यूटेल फिश बोन) लेटिन Sepia officinalis (सेपिया ऑफिसिनेलिस) Os Sepia (ओस सेपिया)।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से समुद्र फेन शीतल, कसैला, रुचिकारक, लेखन तथा नेत्र रोग, कफ, कण्ठ रोग और कर्ण रोग का नाश करता है।

निघण्टु रत्नाकर के मत से समुद्र फेन रुचिकारक, लेखन, कसैला, हलका, नेत्रों को हितकारी, शीतल, सारक, विषनाशक तथा कर्णशूल, कफ, कण्ठ रोग और पित्त को दूर करता है।

फेन शीतल, कसैला और अत्यन्त वान्ति कारक होता है।

कर्नल चोपरा के मत से समुद्र फेन संकोचक और उपशामक होता है। इसमें केलशियम कार्वोनेट, फास्फेट और सल्फेट विथ सिलीसिया इतने द्रव्य पाये जाते हैं।

मात्रा—इसकी मात्रा २ माशे की होती है।

उपयोगः—

आंख का जाला—समुद्र फेन को बिनौले के तेल में पीस कर लगाने से आँख का जाला कट जाता है।

नासूर—शहद को औटा कर उसको गाढा करके उसमें समुद्र फेन मिला कर, उसमें बत्ती तर करके उस बत्ती को नासूर में भरने से नासूर भर जाता है।

मुंहकी झांई—समुद्र फेन को गुलाब के तेल में मिला कर चेहरे पर मलने से मुँह की झाँइ दूर होती है।

योनि का ढीलापन—समुद्र फेन को हरड़ की मगज के साथ पीसकर योनि में रखने से योनि का ढीलापन मिटकर वह तङ्ग हो जाती है।

कान का वहना—समुद्र फेन के चूर्ण को कान में डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है।

अर्जुन रोग--समुद्र फेन को शक्कर के साथ पीस कर नेत्रों में आँजने से अर्जुन रोग मिटता है।

मुंहासे--समुद्र फेन और नर कचूर को जल में पीस कर उबटन करने से मुँहासे मिट जाते हैं।

सतबालोन

नामः—

पंजाब–सतबालोन। लेटिन–Polygonum Alatum (पोलीगोनम एलेटम)।

वर्णन–यह एक वहुत कोमल और अस्थिर पौधा होता है। यह कश्मीर से लेकर सिकिम तक सारे हिमालय में पैदा होता है। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति संकोचक होती है। इसके पत्ते सूजन के ऊपर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

सन्दवार

नामः—

हिन्दी—सन्दवार। पंजाब—गण्डेरा, वेना। फारसी—इस वर्ग। क्वेटा—हेशवर्ग। सिन्ध—इशवर्ग, सेन वार, सेवार। लेटिन—Rzhya Stricta (रिझया स्ट्रिक्टा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा क्षुप होता है। इसकी ऊँचाई ९ मीटर के करीब होती है। इसके पत्ते सूखने पर पीले रंग के हो जाते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति सिंध, बलूचिस्तान और पंजाब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस दूध के साथ बच्चों को देने से उनके फोड़े फुंसी मिट जाते हैं। इन पत्तों का शीत निर्यास गले के जखम, हलके ज्वर और कमजोरी को दूर करने में बहुत उपयोगी होता है। इसके पत्ते जो कि बहुत कडुवे होते हैं सिन्ध प्रान्त के बाजारों में बिकते हैं और इनका उपयोग कटु पौष्टिक क्वाथ और निर्यास बनाने में किया जाता है। इसके फल और पत्ते विस्फोटक तथा फोड़े फुन्सियों के लिये उपयोगी माने जाते हैं।

अफगानिस्तान में इसकी जड़ें, पत्ते और फूल सुखा कर, इनका निर्यास बनाकर उपदंश की हर एक स्टेज की चिकित्सा में देते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन सन्धिवात, प्राचीन जोड़ों की सूजन और हर प्रकार की वात वेदना में भी इनका उपयोग किया जाता है।

ओरमेरा में यह वनस्पति नेत्र रोग और कृमि चिकित्सा में काम में ली जाती है। लासबेला में यह बच्चों के रोग, सर्प दंश और दंत रोग तथा नेत्र रोगों की चिकित्सा में उपयोग में ली जाती है। इसका पानी के साथ बनाया हुआ काढ़ा ज्वरनाशक औषधि की तरह काम में लिया जाता है।

संगजराहत

नामः—

संस्कृत—कम्बुजीर, शंखजीरकं। हिन्दी—संगजराहत। मराठी—शंखजीरें। गुजराती—शंखजीरुं। अंग्रेजी—Soap stone—(सोप-स्टोन) फारसी—सगेजराहत। अरबी—हजरुल दरावी। लेटिन—Silicate of magnesia (सिलिकेट ऑफ मेग्नेशिया।

वर्णन—यह एक जाति का सफेद रंग का, चमकदार मुलायम और चिकना पत्थर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

संगजराहत संकोचक, घाव को सुखानेवाला और रक्तस्राव रोधक होता है। इसका भीतरी प्रयोग

अतिसार, प्रवाहिका, श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर में किया जाता है। इसका लेप करने से शोथ, विसर्प और रक्त-रोग तथा चर्मरोग मिटते हैं।

संगजराहत व्रण और दाह रोग को दूर करता है। इसका लेप करने से सूजन, विसर्प, कक्षा और रक्त-विकार दूर होते हैं।

सत्यानाशी

इस वनस्पति का विस्तृत वर्णन 'धतूरा पीला' के नाम से इस ग्रन्थ के पाँचवें भाग में देखना चाहिये।

स्वर्णक्षीर

नामः—

संस्कृत—स्वर्णक्षीर। मलयालम—अरा विल्ला लेटिन–Cleome Felina (क्लेओमी फेलिना)।

वर्णन—यह 'हुरहुर' या सूरजमुखी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा बहुशाखी और तीस से लेकर साठ सेण्टिमीटर तक ऊँचा होता है। इसके फूल कुछ गुलाबी रंग के होते हैं। इसके बीज बड़े बड़े चमकदार और ग्रन्थियुक्त होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा शीतादि रोग प्रतिशोधक होता है। इसके बीज फफोला पैदा करने वाले होते हैं, इनका भीतरी प्रयोग एक कृमिनाशक पदार्थ की तरह किया जाता है। इसके पौधे को दूध के साथ पीस कर फफोला उठाने के लिए त्वचा पर लगाया जाता है।

सरकंडा

नामः—

संस्कृत—गुन्द्र, गुंज, सर, तेजनका। पंजाब–सरकण्डा। हिन्दी–सरकण्डा। बंगाल–सर। तामील–मुञ्जि, तैलगू–मुञ्जगढ़ि। अँग्रेजी—Devil sugar cane (डेविल शुगरकेन) लेटिन–Saccharum Arnudinaceum (सेकेरम एरण्डीनेसियम)।

वर्णन —यह गन्ने के वर्ग की एक वनस्पति होती है, इसका पौधा गन्ने के पौधे की तरह होता है। यह वनस्पति बंगाल, आसाम और बरमा में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ें मूत्रल और शान्तिदायक होती हैं। प्रसूतिकाल के समय प्रसूता के कमरे में इनकी धूनी दी जाती है।

सर्वजय

नामः—

संस्कृत–देवकेलि, कामाक्षी, कृष्णतामड़ा, सर्वजया, शीलरम्भा, वनकदली। हिन्दी–सर्वजय, सभाजय। गुजराती—अकलबेर। बङ्गाल—कामाक्षी, सर्वजय। पंजाब—हकीक। तामील—कालवलाई। तैलगू—गुरुगिझा। अंग्रेजी—Indian Shot (इण्डियन शॉट)। लेटिन—Canna Indica (केन्ना-इण्डिका)। उर्दू—गुलेतसवी।

वर्णन—सर्वजय भारतवर्ष और सीलोन में प्रायः सब दूर बगीचों में लगाया जाता है। इसका पौधा आधे गज से लेकर दो गज तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बड़े और कठोर, केले के पत्तो की तरह होते हैं। इसके फूल लाल रङ्ग के होते हैं। इसके बीज काले चमकदार, सख्त और मटर की तरह गोल होते हैं। मुसलमान फकीर इसके बीजों की माला बनाते हैं।

इसका पौधा केले के छोटे पौधे की तरह होता है। उस पौधे के बीच में से एक डण्डी निकल कर उस पर लाल रङ्ग का बड़ा फूल आता है। कोई कोई फूल सफेद और पीले रंग का भी आता है। ये फूल बारहो महीने आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ ज्वर और जलोदर में पसीना और पेशाब लाने के लिए दी जाती है। यह शान्तिदायक और उत्तेजक होती है।

पशुओं के द्वारा किसी विषैली घास खा लेने पर जब उनका पेट फूल जाता है तब उनको इस वनस्पति की जड़ के छोटे टुकड़ों को काली मिर्चों के साथ चावलों की धोवन के पानी में औटाकर पिलाया जाता है। इसके बीज अग्निदीपक और घाव को अच्छा करनेवाले होते हैं।

गायना में इसकी जड़ मूत्रल मानी जाती है। इसके कन्द का काढ़ा पसीना और मूत्र लाने के लिए दिया जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके फूल नेत्र रोगों में लाभदायक माने जाते हैं।

कम्बोडिया में इसकी जड़ एक प्रकार के चर्मरोग में (Yaws) जिसमें फफोले पड़ जाते हैं, शोधक वस्तु की तरह दी जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह बनस्पति गरम और खुश्क होती है। इससे नकसीर का खून बन्द हो जाता है। इसके पीने से कफ के साथ खून का जाना बन्द हो जाता है। प्रमेह और श्वेत प्रदर में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसका लेप करने से सूजन बिखर जाती है। इसका लेप करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं। इसका काढ़ा पिलाने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। इसकी जड़ को ठण्डाई की तरह पीसकर पिलाने से पेशाब अधिक होकर जलोदर में लाभ पहुँचता है। इसके बीजों का इस्तेमाल करने से दिल की कमजोरी मिटती है।

सरपंखा

नामः—

संस्कृत—सरपंखा, सरपुच्छल, प्लीहा शत्रु, प्लीहारि, कालशाक इत्यादि। हिन्दी—सरपंखा, सरफोंका। गुजराती—सरपंखो, घोड़ाकान, झिळ। बंगला—सरफोंका, बनिलगाछ। मराठी—उन्हाली, शरपुंखा। पंजाब—सरफोंका, बानसु, झोझरू। उर्दू—सरभुका। अंग्रेजी—Purple Goat's rue (पर्पल गोट्सरू)। लेटिन—Tephrosia Purpwrea (टेफ्रोसिया पर्प्यूरिया)।

वर्णन—सरपंखे का क्षुप बिलकुल नील के क्षुप से मिलता जुलता होता है। इसके पत्तों और नील के पत्तों में इतना ही अन्तर रहता है कि जहाँ नील के पत्तों में सीधे तन्तु रहते हैं वहाँ इसके पत्तों में तिरछे तन्तु रहते हैं। नील का पत्ता तोड़ने से सीधा टूट सकता है मगर सरपंखे का पत्ता हमेशा तीर के फल की तरह तिरछा टूटेगा। इसके फूल किरमची रंग के और फलियाँ चपटी होती हैं। औषधि में इसका पंचांग काम में आता है। इसकी लाल और सफेद दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सरपंखा चरपरा, कड़वा, गरम, कसैला, हलका तथा यकृत, कृमि, प्लीहा, गुल्म, व्रण, खाँसी, विष, श्वास, बवासीर, रुधिर विकार, हृदयरोग, कफ, ज्वर, वात, कफोदर, व्यङ्ग और गलित कुष्ठ को नष्ट करता है, लाल सरपंखे से सफेद सरपंखा अधिक गुणकारी होता है।

इसकी जड़ एक विषनाशक पदार्थ की तरह सांप के काटे हुए को पिलाई जाती है। व्रण और जखम में भी यह लाभ पहुँचाती है, बढ़ी हुई तिल्ली को दुरुस्त करने में यह बहुत उपयोगी है। इसके बीज जहरीले चूहे के विष को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, खराब स्वादवाली, मूत्रल, प्यास को बुझानेवाली, रक्तशोधक, अतिसार को दूर करनेवाली तथा खांसी, दमा, यकृत और तिल्ली के रोग, सूजन, विस्फोटक और फोड़े फुन्सियों को दूर करनेवाली होती है। यह भूख बढ़ाती है और फेफड़े तथा छाती की बीमारियों में उपयोगी होती है। बवासीर, उपदंश और सुजाक में भी यह लाभ पहुँचाती है।

इसकी जड़ कड़वी होती है। यह कान की सूजन, अग्निमांद्य और पुराने अतिसार में दी जाती है। इसकी जड़ की ताजी छाल को पीसकर उसकी गोली बनाकर कालीमिर्च के साथ देने से हठीला और दुःसाध्य कॉलिक उदरशूल मिटता है। इसका पौधा रक्त को शुद्ध करके रक्त रोगों को दूर करने में बहुत उपयोगी है। हृदय के लिए भी यह एक पौष्टिक वस्तु है।

सीलोन में इसका पौधा पौष्टिक, आनुलोमिक और बच्चों के पेट में पड़नेवाले कृमियों को नष्ट करने-वाला माना जाता है।

कोमान का कथन है कि यह वनस्पति खांसी और गुर्दे की खराबी में उपयोगी मानी जाती है। हमने इसका काढ़ा दसगुने पानी में तैयार कर एक औंस की मात्रा में जलोदरयुक्त ब्राइट्स डिसीज (गुर्दे का रोग) के मरीजों को दिया। परिणाम में मालूम हुआ कि यह औषधि बहुत साधारण मात्रा में मूत्र की तादाद को बढ़ाती है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार सरपंखा कडुवा, आनुलोमिक, पित्त निस्सारक, मूत्रल, कफनाशक और विष प्रतिरोधक होता है। सांप के विष में इसकी जड़ें लाभदायक होती हैं। पित्त प्रकोप में इसकी जड़ों का काढ़ा दिया जाता है। सुजाक में इसके दो भाग पत्ते एक भाग काली मिर्चोंके साथ पीसकर दिये जाते हैं। बवासीर के अन्दर इनको दही में मिलाकर देते हैं। कफ ज्वर में इसकी जड़ का काढ़ा दिया जाता है। उदरशूल में इसकी ताजा जड़ की छाल को काली मिरच के साथ पीसकर गोली बनाकर देने से चमत्कारिक लाभ होता है। यकृत और तिल्ली की वृद्धि में इसकी जड़ें बहुत लाभ पहुँचाती हैं। इन रोगों में इनको हरड़ के साथ देते हैं। गण्डमाला में इसकी जड़ों का लेप किया जाता है। प्लीहोदर में इसकी जड़ों का मट्ठे में पीसकर देते हैं। गुल्मरोग में सरपखे के पंचांग का क्षार ४ माशे हरड़ के साथ मिलाकर देते हैं। खुजली में इसके बीजों को पीसकर लगाते हैं, अथवा इन बीजों के तेल की मालिश करते हैं।

सरपंखे के बीजों का तेल पलाश के बीजों के तेल की तरह पाताल यंत्र से निकाला जाता है और इसके पंचांग के पौधे की राख से क्षार-विधि से क्षार भी प्राप्त किया जाता है।

तिल्ली की वृद्धि, ज्वर, वायुगोला, खाँसी, दमा, उपदंश की दूसरी और तीसरी अवस्था, पुरातन प्रमेह, प्रदर, चूहे का विष इत्यादि रोगों पर सरपंखे की जड़ें रामबाण की तरह काम करती हैं। इन सब रोगों में सरपंखे की जड़ें और कसौंदी की जड़ों को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सवेरे शाम डेढ़ माशे से लेकर तीन माशे तक की मात्रा में पानी के साथ देना चाहिए।

इस औषधि का उपयोग करते समय कभी २ जी मिचलाता है और मुँह में पानी छूटने लगता है। कभी २ एकाध वमन भी हो जाती है मगर उससे घबराना नहीं चाहिए। कुछ दिनों तक दवा लेने पर ये

उपद्रव अपने आप बन्द हो जाते हैं। इस औषधि से शरीर में रहने वाले अनेक प्रकार के रोगों के सूक्ष्म जन्तु नष्ट होकर, रुधिर के अन्दर का मैल, मल, मूत्र और पसीने के द्वारा बाहर निकाल जाता है। जिससे ऊपर कहे हुए तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस औषधि के उपयोग से गर्भाशय और रज तथा वीर्य्य के दोषों की शुद्धि होकर प्रमेह, उपदश इत्यदि कारणों से बन्ध्यत्व भोगनेवाली स्त्रियाँ गर्भधारण करने के योग्य हो जाती हैं।

उपयोगः—

मन्दाग्नि—सरपंखे की कड़वी जड़ को औटाकर पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

अफ़ारा—इसकी जड़ के क्वाथ में भुनी हुई हींग पीसकर मिलाकर पिलाने से पेट का आफरा मिटता है।

अतिसार—सर पंखे के क्वाथ में सोंठ डालकर पीने से संग्रहणी और लौंग डालकर पीने से अतिसार मिटता है।

पेट के कीड़े—सरपंखे के क्वाथ में बायबिडंग का चूर्ण मिला कर पिलाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

फोड़े फुन्सी—सरपंखे के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से रुधिर शुद्ध होता है और शरीर के फोड़े फुन्सी मिट जाते हैं।

खूनी बवासीर—सरपंखे और भंग के पत्तों को पीसकर उनकी लुग्दी बनाकर गुदा पर बाँधने से खूनी बवासीर मिटते हैं।

दाह—सरफोंके के बीजों को ठण्डे पानी में भिगोंकर मल छानकर पिलाने से शरीर की दाह और ऊष्मा मिट जाती है।

उदरशूल—इसकी ताजा जड़ की छाल को काली मिरच के साथ पीसकर गोली बनाकर देने से हठीला और दुःसाध्य उदर शूल मिटता है।

प्रसूति कष्ट—सरपंखे की जड़ को कमर पर बाँधने से स्त्री को प्रसूति के समय होने वाला कष्ट दूर हो जाता है।

हैजा—इसकी दो माशे जड़ को पीसकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

कुष्ठ—इसके पत्तों का रस पीने से कुष्ठ में लाभ होता है।

गुल्म रोग—इसके क्षार में समान भाग हरड़ का चूर्ण मिलाकर चार माशे की मात्रा में देने से गुल्म रोग मिटता है।

तिल्ली की वृद्धि—इसकी जड़ की लुग्दी को मठठे के साथ छान कर पिलाने से बढ़ी हुई तिल्ली कम हो जाती है।

दुष्ट व्रण–मधु के साथ सरपंखे का लेप करने से दुष्ट व्रण मिटता है।

बनावटें—

कुष्ठनाशक तेल–सरपंखे के बीज, देवदारु, दारू हलदी, पँवार के बीज, कड़वी तुम्बी के बीज, धतूरे के बीज, कनेर की जड़, नारियल-की नरेटी, कवौंदी के बीज, चित्रक की जड़ ये सब चीजें चौंसठ-चौंसठ तोला और शीशम की लकड़ी का सार पाँच सौ बारह तोला लेकर इन सब चीजों को १२८ तोले तिल्ली के तेल में भिगोकर पाताल यंत्र की विधि से इनका तेल टपका लेना चाहिए। इस तेल की मालिश करने से दाद, खुजली, चित्रा कुष्ठ इत्यादि रोग दूर होते हैं। (जंगलनी जड़ी बूटी)

संधिनी (मालेबन्ध)

नाम—

संस्कृत—संधिनी। मराठी—मालेबन्ध, धाकटा मालेबन्ध।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसका पौधा एक बालिश्त से लेकर एक हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते तीन चार अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौड़े होते हैं। इस वनस्पति की खास पहचान यह है कि झाड़ पर से इसके पत्ते को बीच में से आधा तोड़कर उसको फिर पीछा लगा दिया जावे तो वह पत्ता फिर से जुड जाता है। यह वनस्पति सिर्फ दक्षिणी कोंकण में ही पैदा होती है। इसकी छोटी और बड़ी दो जातियाँ होती हैं छोटी जाति के पत्ते और बड़ी जाति की छाल विशेष उपयोगी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

जङ्गलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि मेघनाद की शक्ति लगने पर लक्ष्मणजी को भयंकर मूर्च्छा हो गई थी उस समय हृदय के जखम को भरने के लिए सुषेण वैद्य ने हनुमानकी के द्वारा जिस "संधिनी" नामक वनस्पति को मँगवाया था वह वनस्पति शायद यही थी। क्योंकि किसी भी प्रकार के जखम और हड्डी के टूटने पर इसके पीसे हुए पत्तों की लुग्दी रखकर उस पर पट्टा चढ़ा दिया जाय तो चाहे जैसा भयंकर जखम में से बहता हुआ रुधिर तत्काल बन्द हो जाता है और तीन दिन तक लगातार पट्टा चढ़ाने से वह जखम भर जाता है। यदि इसके ताजा पत्ते न मिलें तो इसके सूखे पत्ते भी ताजा पत्तों की तरह ही काम देते हैं।

सरहटी

नामः—

संस्कृत—सर्पाक्षी, भुजंगाक्षी, फणिहंत्री, नकुलेण्ठा। हिन्दी–सरहटी। बङ्गाल—गन्धनाकुली। गुजराती–नकुलकन्द। पंजाब-सरहटी। मराठी–मुंगुस वेल, मुंगुस कांदा। तामील–कीरिप्पुण्डु। तैलगू–सर्पाक्षी। अंग्रेजी–Indian Snake root (इण्डियन स्नेक रूट)। लेटिन–Ophiorrhiza Mungos (ओफिरोहीझा मुंगस)।

वर्णन—यह बहु वर्षजीवी झाड़ीनुमा छोटी बेल होती है। इसकी ऊँचाई एक फीट से डेढ़ फीट तक होती है। बरसात के दिनों में यह वनस्पति बहुत पैदा होती है। इसकी लकड़ी कठिन, छाल फीके भूरे रंग की, पत्ते आमने सामने लगने वाले और लम्बगोल होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और डंखल रहित होते हैं। इसकी जड़ें कठोर, बाँकी टेढ़ी और करीब छः इंच लम्बी होती हैं। जड़ की छाल पतली, भूरे रंग की और बहुत कड़वी होती है। इसके बीजकोष में दो खाने वाले होते हैं, जिनमें बीज बहुत रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, चरपरी, गरम, कृमिनाशक, और बिच्छू, चूहे, तथा साँप के विष को दूर करने वाली होती है। सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ साँप और बिच्छू के विष में फ़ायदा पहुँचाती है।

इसकी जड़ बहुत अधिक कड़वी होती है और एक कटु पौष्टिक द्रव्य की तरह इसका उपयोग किया जाता है यह विश्वास किया जाता है कि यह साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता इत्यादि जहरीले जानवरों के विष करती है।

राबर्ट्स का कथन है कि इसकी ताजी जड़ों, डालियों और पत्तों को दबा कर निकाला हुआ रस मनुष्य के पेशाब में मिला कर आधे चाय के चम्मच की मात्रा में नाक के हर एक छिद्र में टपकाने से साँप के विष से पैदा हुई मूर्च्छा और बेहोशी दूर होती है। और इसी की ताजी जड़ें, छाल और पत्तों का काढ़ा पिलाने से जहर का असर कम हो जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति साँप और बिच्छू के विष में बिलकुल निरुपयोगी है।

कोमान का कथन है कि, इस वनस्पति की जड़ की छाल के सम्बन्ध में एक चिकित्सक ने हमें बतलाया कि "इसमें मृदुविरेचक और उपशामक तत्व रहते हैं। इसकी जड़ की छाल को पीसकर उसकी लुग्दी बनाकर उसकी नींबू के बराबर बड़ी गोली बनाकर तीन दिन तक एक २ गोली सबेरे दूध के साथ देने से उन्मादग्रस्त रोगी का उन्माद दूर हो जाता है और उसकी आँतें साफ और गतिशील हो जाती हैं। हमने इस औषधि को मद्रास पागलखाने के सुपरिटेण्डेण्ट के पास परीक्षा के लिए भेजा। वहाँ से जो रिपोर्ट आई उससे मालूम हुआ कि दो बीमारों पर वहाँ इसका प्रयोग किया गया, मगर इसका परिणाम असन्तोषजनक रहा और इस वनस्पति में इस प्रकार के कोई तत्व दिखलाई नहीं दिये।

उपयोग—

सर्पविप—इसके पंचाग का क्वाथ सवा तोले की मात्रा में बार बार पिलाने से सर्पविष उतरता है।

एकान्तरा—श्मशान में पैदा हुई सरहटी को जड़ को रविवार के दिन लाकर घी में घिसकर उसका ललाट पर तिलक लगाने से एकान्तरा ज्वर छूट जाता है।

तिजारी—सरहटी की जड़ को चन्द्रग्रहण में निमन्त्रण देकर दूसरे दिन लाकर काले सूत से बाँधकर दाहिने कान में बाँधने से तिजारी ज्वर छूट जाता है।

पागल कुत्ते का विप—पागल कुत्ते के विष को दूर करने के लिए सरहटी का क्वाथ पिलाना चाहिए।

सरू (जोजेस्सरू)

नामः—

हिन्दी यूनानी—सरू।

वर्णन—सरू के वृक्ष बाग बगीचों में शोभा के लिए लगाये जाते हैं। इसके वृक्ष मध्यम कद के होते हैं और इसके पत्ते, डालियाँ तथा वृक्ष का दिखाव बहुत सुन्दर होता है। इसका फल सनोवर की तरह होता है। यह कच्चा रहने पर हरा और पकने पर थोड़ा पीला होकर कठोर हो जाता है। इसका स्वाद कषा, कुछ कडुवा और थोड़ी सी तेजी और चरपरापन लिये हुए होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से सरू का फल पहले दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। किसी किसीके मतसे पहले दर्जे में गरम और खुश्क होता है।

सरू के पत्तों से इसका फल विशेष प्रभावशाली होता है। यह रूक्षता पैदा करता है। इसका मलरोधक और रक्तरोधक धर्मविशेष प्रभावशाली होता है। शरीर के अन्दर संचित विजातीय तरल तत्वों का शोषण करने में यह अद्वितीय होता है। ताजा जख्मों पर इसका लेप करने से वे जल्दी भरकर सूख जाते हैं। यकृत, तिल्ली, आंते और आमाशय की बीमारियों में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसको शहद में घिसकर ललाट पर लगाने से सर्दी से होनेवाला सिर दर्द मिट जाता है। इसको पीसकर शहद के साथ चाटने से यह दिमाग को शक्ति देता है और भूलने की बीमारी को दूर करता है। इसके सेवन से साँस और मुँह में खुशबू पैदा होती है और साँस का रुक २ कर आना बन्द हो जाता है। यह छाती में जमे हुए कफ को बिखेर कर पुरानी खाँसी को दूर करता है। अण्डकोष की वृद्धि में इसको सरेस के साथ लेप करने से फायदा होता है।

मुजिर—इसको अकेले अधिक मात्रा में लेने से खाँसी पैदा होती है और चेहरे पर पीलापन और रूक्षता आती है।

दर्दनाशक—शहद और बादाम का तेल।

मात्रा—डेढ़ माशे से दो माशे तक।

सरसों

नामः—

संस्कृत—सर्षप, गौर सर्षप, तीक्ष्णक, कुष्ठनाशक, सिद्ध प्रयोजन, भूतनाशन, कण्डुघ्न इत्यादि। हिन्दी—सरसों, सफेद सरसों। बंगाल—सरिषा। गुजराती—सरसव। मराठी—सरसो, शिरष। पंजाबी—सरों। फारसी—सिपन्दान मुफीद। तामील—करुप्पुकेडुग्गु। अंग्रेजी—Wild Turnip (वाइल्ड टरनिप)। लेटिन—Brassica Campestris (ब्रेसिया कम्पेस्ट्रिस)।

वर्णन—सरसों का पौधा राई के पौधे की तरह होता है। इसके बीज कुछ ललाई लिये हुए पीले रङ्ग के होते हैं। एक जाति की सरसों के बीज सफेद होते हैं। इसके एक मन बीजों में करीब बारह तेरह सेर तेल निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सरसों, चरपरी, कड़वी, तीक्ष्ण अग्निदीपक, किञ्चित रूखी, पित्त कारक, रक्त-पित्त जनक, रुक्ष तथा वात, कफ, कण्डू, कुष्ठ, शूल, कृमि और ग्रहपीड़ा को दूर करनेवाली होती है।

सफेद सरसों, चरपरी, कड़वी, रुचिकारक, गरम, वात रक्त कारक तथा ग्रहपीड़ा, बवासीर, त्वचा के दोष, सूजन, व्रण और विष को नष्ट करती है।

सरसों के पत्तों का शाक सारक, अम्ल, पित्त कारक, कसैला, भारी, स्वादिष्ट, गरम, खारी और कफ-नाशक होता है।

भाव प्रकाश के मतानुसार सरसों रस और पाक में चरपरी, स्निग्ध, कड़वी, तीक्ष्ण, गरम, कफ वात नाशक, रक्त पित्तजनक, अग्निवर्द्धक तथा राक्षस बाधा, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और ग्रह की बाधा को दूर करती है। लाल और सफेद सरसों समान ही गुण वाली होती है किंतु तो भी सफेद सरसों लाल की उपेक्षा उत्तम होती है।

इसके बीजों को गरम पानी में मिलाकर उनका पुलटिस बनाकर प्रत्युत्तेजना (Counter-Irritant) देनेवाले पुलटिस की तरह बाँधा जाता है। इसके तेल में कपूर मिलाकर संधिवात और गर्दन की अड़कन

पर मालिश करने से लाभ होता है। इसका उपयोग हड्डी तोड़ बुखार (Dengu Fever) में भी बहुत लाभ पहुँचाता है। ब्रोङ्काइटीज में इसका छाती पर मालिश करने से लाभ होता है।

इण्डोचायना में इसकी जड़ और इसके पत्ते अग्निवर्द्धक माने जाते हैं। इसके ताजे पत्तों को कुचल कर फोड़ों के ऊपर बाँधा जाता है और इसके बीज कॉलिक शूल में दिये जाते हैं।

उपयोग—

गठिया—सरसों के तेल में कपूर मिलाकर मालिश करने से मांस पेशियों की गठिया मिटती है।

कर्णशूल—सरसों के तेल को कान में टपकाने से बादी का कर्णशूल मिटता है।

श्लीपद—सरसों को गौमूत्र के साथ पीसकर गर्म करके लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

सूजन—सरसों और वच को पीसकर लेप करने से सूजन मिट जाती है।

तिल्ली की बढ़ती—सरसों के तेल को पेट पर मालिश करने से तिल्ली की बढ़ती ठीक हो जाती है।

पामा खुजली—सरसों के तेल में आक के पत्तों का रस और हल्दी की लुग्दी डाल कर औटावें जब तेल सिद्ध हो जावे तब उसको उतार कर छान लें। इस तेल को लगाने से पामा और विसर्पिका मिटती है।

नासूर—आक के दूध में रुई को भिगोकर छाया में सुखालें। सूखने पर उसकी बत्ती बनाकर उसे सरसों के तेल में डुबोकर उसको जलावें और उसका काजल पाड़ लें। इस काजल को नासूर में भरने से नासूर मिट जाता है।

उबटन—सरसों को दूध में डालकर औटावें, जब सब दूध जल जाय तब सरसों को सुखाकर उसको पीसकर शरीर पर उबटन करने से शरीर का रंग निखर जाता है।

वन्ध्यत्व—सरसों को पीसकर उसका शाफा बनाकर मासिक धर्म के स्नान के पश्चात् तीन दिन तक योनि में रखने से गर्भधारण होता है।

कफ की खाँसी—सरसों को पीसकर शहद के साथ चाटने से कफ की खाँसी मिटती है।

सरमूल

नामः—

पंजाब—सरमूल, कण्डियारा, कतरकन्दा, पिसार। अफगानी—दीदानी। लेटिन—Astragalus Multiceps (एस्ट्रागेलस मुल्टीकेप्स)।

वर्णन—यह वनस्पति गढ़वाल, कुमाऊँ तथा पश्चिमी हिमालय में दस हजार से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज कॉलिक शूल और गलित कुष्ठ को दूर करने के उपयोग में लिये जाते हैं।

स्वर्णवल्ली

नाम:—

संस्कृत—स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायु, काकवल्लरी। हिन्दी—सोनवेल।

वर्णन—स्वर्णवल्ली या सोनवेल प्रायः पर्वत, बाग और उपवनों में अधिक होती है। इसके पत्ते गोल और अणीदार होते हैं। इसके फल लाल रंग के होते हैं। इस सारी लता का रङ्ग पीला होता है इससे इसे स्वर्णवल्ली कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से स्वर्णवल्ली शिरपीड़ा और त्रिदोष को नष्ट करनेवाली तथा स्तनों में दूध बढ़ानेवाली होती है।

समरा कोकड़ी

नाम:—

गुजराती—समरा कोकड़ी, फुटियम। काठियावाड़—कारी कोकड़ी, कंढेरी कोकड़ी। लेटिन—Bidens Pilosa (बिडेन्स पिलोसा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा डेढ़ फीट से ढाई फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बकायन नीम के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और इसके बीज कोष-काली सलाई के समान और खड़े होते हैं। ये चौकोर होते हैं और इनके सिरे पर तीन से पाँच तक कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रङ्ग के महीन कांटे होते हैं, इस वनस्पति के पौधे बरसात के दिनों में सब दूर पैदा होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति संकोचक होती है। इसके पत्तों के काढ़े से नहीं भरनेवाले घाव धोये जाते हैं। फोड़े फुन्सियों पर इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से फायदा होता है। बच्चा होने के पश्चात् अगर गाय, भैंस इत्यादि पशुओं की आंवल गिरने में देर हो जाय तो गुवाल लोग इसके पौधे का काढ़ा बनाकर उसमें गुड़ मिलाकर बीमार ढोर को पिलाते हैं।

गोल्डकॉस्ट में इसके पत्तों का रस आमतौर से आँखों और कानों में इन दोनों स्थानों की शिकायतों को दूर करने के लिए टपकाया जाता है। झूलू जाति के लोग गठिया रोग को दूर करने के लिए इसके कोमल पत्तों को चबाते हैं। वे लोग इसके पत्तों का चूर्ण पानी में मिलाकर उस पानी को एनिमा के द्वारा पेट में चढ़ाते हैं जिससे पेट का दर्द और शिकायत दूर होती है। इसके फूल अतिसार में उपयोगी समझे जाते हैं और इसके पत्तों और जड़ों का काढ़ा कॉलिक शूल को दूर करनेवाला माना जाता है।

इण्डोचायना में इसके सूखे फूलों की फलियाँ पीसकर अलकोहल में मिलाकर उससे दंतशूल को दूर करने के लिए, कुल्ले करते हैं। नेत्रों के व्रण में इसके कुचले हुए पत्तों का पुलटिस आँखों की पलकों पर बाँधते हैं। ब्राझील में इसके पत्ते रक्तश्रावरोधक औषधि की तरह बहते हुए खून के प्रवाह को रोकने के लिए उपयोग में लेते हैं। इसके पत्ते अशुद्ध और सड़े हुए घावों को शुद्ध करने के लिए तथा सूजी हुई गठानों की सूजन उतारने के लिए भी लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

सरमल

नामः—

मराठी–सरमल। गुजराती–चमेढ़ियुं। काठियावाड़–चोंणीयों, नीढेचोलजोझाड़। तेलगू–नेल्लाजीलुगा। लेटिन–Cassia Pumila (केसिया पुमिला)।

वर्णन—इस वनस्पति के पौधे बहुत बारीक होते हैं। ये बरसात के दिनों में पैदा होते हैं। इनकी शाखाएँ बहुत करके जमीन पर फैली हुई होती हैं। इसके पत्ते छोटे, आंवली के पत्तों की तरह सलाई पर लगे हुए होते हैं। इसके फूल छोटे और पीले रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ चाकसू की फलियों के समान मगर कुछ छोटी होती हैं। हर एक फली में ६ से लेकर १२ तक बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज विरेचक होते हैं। इसके पत्तों को दूध में पीसकर फिर आग पर खदबदा कर दुखती हुई आँखों पर बाँधते हैं। इसके पत्तों और बीजों का पुलटिस फोड़े फुन्सियों पर बाँधा जाता है।

सलवियास फेकुस

नामः—

हिन्दी—सलवियास फेकुस। अंग्रेजी—Garden Sage (गार्डन सेज)। लेटिन—Salvia officinalis (सेलविया आफिसिनेलिस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की सफेद रुएँदार छत्तानुमा वनस्पति होती है। इसका पौधा १५ से लेकर ३० सेण्टीमीटर तक लम्बा होता है। यह वनस्पति भूमध्यसागर के तटवर्ती प्रदेश में पैदा होती है। मगर आजकल भारतवर्ष के बगीचों में भी खूबसूरती के लिए यह लगाई जाने लगी है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति पौष्टिक, संकोचक और सुगन्धित होती है। इसके पत्तों का काढ़ा मुँह के क्षत, छाले और गले के रोगों के लिए एक आश्चर्यजनक कुल्ला करने की औषधि है। इन कामों के लिए सारे यूरोप में इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है। इस वनस्पति से तैयार किया हुआ लोशन व्रण और घावों को धोने के लिए एक बहुत उत्तम वस्तु है।

सहदेवी

नामः—

संस्कृत—सहदेवी, सहदेवा, डंडोत्पला, गोवन्दनी, विषमज्वरनाशनी, विश्वदेवा। हिन्दी—सहदेवी सदोई, सदोड़ी। बङ्गाल—कुक्षिम, काला जीरा। गुजराती—सेदर्डी, सहदेवी, काली सदेड़ी। मराठी—सादोड़ी, सहदेवी। पञ्जाब–सहदेवी। तामील–सहदेवी। इङ्गलिश—Ash—coloured Fleabane (एश कलर्ड फ्लीबेन) लेटिन–Vernonia cinera (वरनोनिया सिनेरा)।

वर्णन–इस बनास्पति के पौधे १ से लेकर ३ फीटतक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते बड़े २ रुएँदार होते हैं और दूर २ पर लगते हैं। इसके फूल बैंगनी रङ्ग के और बीज कालीजीरीके समान मगर कुछ छोटे होते हैं। यह वनस्पति बरसात के दिनों में सब दूर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा मीठा, शीतल, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक, संकोचक, तथा त्रिदोष, क्षय, दमा और खाँसी में लाभ पहुँचाने वाला होता है। इसके फूल ज्वरनाशक होते हैं।

ज्वर में पसीना लानेके लिए इसका काढ़ा दिया जाता है। इसकी टोपी बना कर सिर पर पहनने से ज्वर उतर जाता है। किसी को नींद न आती हो तो सहदेवी को सिरपर बाँधने से नींद आ जाती है।

रतलाम के महन्त सुखराम दासजी बूटी प्रचार वैद्यक में लिखते हैं कि:–सहदेवी के पत्ते १॥ माशा और काली मिरच ७ इन दोनों को पीस कर रविवार या मंगलवार को रोगी को पिलावे तो मलेरिया ज्वर या ठण्ड देकर आनेवाला बुखार दूर होता है।

सहदेवी अंग्रेजी औषधि की फेनासीटीन की तरह पीड़ा शामक, स्वेदल और ज्वरनाशक वस्तु का काम करती है।

सहदेवी के बीज पटना में कृमिनाशक और विषनाशक वस्तु की तरह काम में लिये जाते हैं। छोटे नागपूर में यह बनस्पति पथरी और मूत्राशय की ऐंठन में काम में ली जाती है। इसके फूल आँख की भीतरी झिल्ली की सूजन में उपयोगी माने जाते हैं और इसकी जड़ जलोदर रोग में दी जाती है।

कोमान का कथन है कि यह बनस्पति एक उत्तम पसीना लानेवाली मानी जाती है और वैद्य लोगों के द्वारा आम तौर से ज्वर के अन्दर यह पसीना लाने के लिए दी जाती है। यद्यपि इस वनस्पति में स्वतन्त्र रूप से पसीना लानेका गुण नहीं है पर इसको कुनैन की छोटी मात्रा के साथ मिला कर देने से यह मलेरिया ज्वर को नष्ट करने में सहायता पहुँचाती है। कनानूर में एक वैद्य जो कि मलेरिया ज्वर की चिकित्सा करता था, ५ ग्रेन कुनैन और नींबू के रस के साथ सहदेवी को मिला कर उसकी बड़ी गोली बना कर प्रतिदिन सवेरे मलेरिया के रोगियों को देता था। हमने (कोमान) स्वयं भी इस पद्धति का अनेक रोगियों पर उपयोग किया और उसमें काफी सफलता हुई।

डा० देसाई के मतानुसार सहदेवी का स्वरस ज्वर में पिलाया और शरीरपर लगाया जाता है। यह एक अत्यन्त सौम्य-स्वभावी वस्तु है, इसको देने से पसीना होता है और पेशाब की जलन कम हो जाती है। बवासीरमें भी इसका स्वरस लाभ पहुँचाता है इसके फूल नेत्र रोगों में उपयोगी होते हैं।

सहदेवी बड़ी

नामः

हिन्दी–सहदेवी बड़ी, सेढी। पजाब–भांगरा, काला भांगरा। सन्थाल–बीरबरङ्गान। तेलगू–नल्लाटापटा, बङ्गाल–बनपलंग। इङ्गलिश–Dindle (डिण्डल) लेटिन–Sonchus Arvensis (सोनकस अरवेन्सिस)।

वर्णन—यह एक ऊँची जाति की बारहमासी वनस्पति होती है। इसके पत्ते हरे, चमकदार और १५ सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल चमकदार पीले रङ्ग के होते हैं। यह बनस्पति सहदेवी के वर्ग से भिन्न वर्ग की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह बनस्पति कुछ कड़वी, मूत्रल और जीर्ण ज्वर में लाभदायक होती है। संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को पीलिया रोग में देते हैं।

सहजना

नामः—

संस्कृत—शोभाञ्जन, शिग्रु, शुभाञ्जना, कृष्ण बीज, गर्भपातक, रक्तक, विद्रधिनाशन, अक्षीव, श्वेत मरिच, स्त्री चित्तहारी इत्यादि। हिन्दी–सहजना, सैंजना, मुङ्गना। बङ्गला—सेजना, सजिना। गुजराती—सरगवो, मीठो सरगवो, सेगटो। मराठी–शेवगा, वडा डिंशिग, मुंगाचे झाड़। पंजाब–सेजना। बम्बई–सुजना, शेगवा, सरागू, सेकटो। तामील–मुरङ्गाई। तैलगू–साजना। उर्दू—सहजना। अंग्रेजी–Indian Horse radish (इण्डियन हार्स रेडिश) लेटिन–Moringa Oleifera (मोरिङ्ग ओलिफ़ेरा) M. Pterygosperma) मोरिङ्गा टेरिगोस्पर्मा)।

वर्णन—सहजने के वृक्ष बाग, बन और जङ्गल में पैदा होते हैं। इसका वृक्ष २० फीट ऊँचा होता है। इसके पिण्ड की गोलाई चार पाँच फीट की होती है। इसकी छाल कोमल और भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते आकार में इमली के पत्तों तरह परन्तु लम्बाई चौड़ाई में उनसे कुछ बड़े होते हैं। ये सींक के दोनों ओर आमने सामने लगते हैं। इसके फूल सफेद, नीले और लाल आते हैं। इन फूलों के भेद से ही इसकी लाल, सफेद और नीली तीन जातियाँ होती हैं। इसके फूलों में मधु के समान गन्ध आती है। इसकी फलियाँ नौ से दस इंच तक लम्बी और लटकती हुई लगती हैं। इसके बीजों को उत्तरी भारत में सफेद मिरच कहते हैं। इसके १०० तोले बीजों में से ३६ तोले स्वच्छ, निर्मल सफेद रंग का तेल निकलता है। इस तेल में कोई गन्ध और स्वाद नहीं होता।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से सहजना चरपरा, पचने में चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, मधुर, हलका, अग्निदीपक, रुचिकारक, रूखा, कड़वा, दाह पैदा करनेवाला, मलरोधक, शुक्रवर्द्धक, हृदय को हितकारी, पित्त को कुपित करने वाला, रुधिर को दूषित करने वाला, नेत्रों को हितकारी तथा कफ, वात, विद्रधि, सूजन, कृमि, मेद रोग, अग्निमांद्य विष, प्लीहा, गुल्म, गण्डमाला और व्रण को दूर करने वाला होता है।

इसकी जड़ की छाल, तीक्ष्ण, गर्म, मधुर, कुछ कड़वी, पाचक, आँतों के लिये संकोचक, कामोद्दीपक, विषनाशक, कृमिनाशक, वेदनाशामक, दाह और पित्त को पैदा करने वाली, रक्त को दूषित करने वाली और भूख बढ़ाने वाली होती है। यह हृदय रोग, नेत्र रोग, कफ, वात, त्रिदोषजन्य ज्वर, सूजन, अग्निमांद्य, तिल्ली की बढ़ती, क्षयजनित कण्ठमाला, अर्बुद, व्रण, कर्णशूल और जबान की हकलाहट में लाभ पहुँचाती है। इसके पत्ते स्वादिष्ट, शीतल, नेत्रों को हितकारी, वेदना को दूर करने वाले, कामोद्दीपक और कृमिनाशक होते हैं। ये नेत्र रोग, वात और पित्त विकार में लाभ पहुँचाते हैं। नशा, मतिभ्रम, हिचकी, दमा को ये दूर करते हैं। इसके फूल चरपरे, तीक्ष्ण, गरम, सूजन को नष्ट करने वाले तथा तिल्ली की बढ़ती, स्नायु रोग, मांसपेशियों के रोग, विद्रधि और कफ, वात सम्बन्धी रोगों के दूर करने वाले होते हैं। सहजने की फली मीठी, कसैली, कफ पित्तनाशक, तथा शूल, कोढ़, श्वास और वायुगोले को दूर करने वाली

२२

और अग्निदीपक होती है। सहजने के बीज तीक्ष्ण, गरम, नेत्रों को हितकारी, विषनाशक और मस्तक शूल को दूर करने वाले होते हैं। इनका तेल अनेक प्रकार की खुजली और व्रणों में लाभ पहुँचाता है। सहजने की छाल और पत्तों का स्वरस तीव्र वेदना को दूर करता है।

लाल सहजना—अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, मधुर, रसायन, तथा सूजन, वात, पित्त, आफरा और कफ को हरने वाला होता है।

सफेद सहजना—चरपरा, तीक्ष्ण, शोथनाशक, वातनाशक, वेदनानाशक, रुचिकारक, अग्निदीपक और मुँह की जड़ता को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, शरीर और फेफड़ों के लिए पौष्टिक, ऋतुस्राव-नियामक, मृदुविरेचक, कफनिस्सारक, मूत्रल, रक्त को बढ़ानेवाली, सूजन को बिखेरने वाली तथा गले के रोग, छाती के रोग और जखम, खाँसी, बवासीर, भूख बन्द होना, मुखशोथ, पुराने प्रमेह, अनैच्छिक वीर्यस्राव, दुःसाध्य दमा और कटिवात में लाभ पहुँचाती है। यह पित्त को बढ़ाती है। इसके फूल कृमिनाशक, कफनिस्सारक और पित्तविकार तथा खाँसी को दूर करने वाले होते हैं।

यूनानी हकीम इसकी फली को तिल्ली और यकृत की वृद्धि में, जोड़ों की सूजन और वेदना में, धनुर्वात में और लकवे के उपयोग में लेते हैं। इसकी जड़ को ये लोग मुँह और गले के क्षत में लाभदायक मानते हैं। इसके गोन्द को ये दाँतों की सड़ान में उपयोगी समझते हैं।

डाक्टर देसाई के मतानुसार इसकी जड़ की ताजी छाल कड़वी, तीक्ष्ण, गर्म, रुचिकारक, दीपन, पाचक, उत्तेजक, कोष्ठवायु को नष्ट करने वाली, वातनाशक, स्वेदल, मूत्रल, कफनाशक और व्रणदोष को दूर करने वाली होती है। यह एक उत्तम अग्निदीपक वस्तु है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया यूरोप में पैदा होने वाली हार्सरेडिश नामक औषधि की क्रिया के समान होती है। इसकी पाचक क्रिया अनन्नास, तथा अरण्ड ककड़ी (पपैया) के समान प्रत्यक्ष रूप से नहीं होती, बल्कि यह अप्रत्यक्ष रूप से आमाशय की रक्त संचालन क्रिया को बढ़ा कर अधिक पाचन-रस को उत्पन्न करती है। जिससे अन्न शीघ्रता से हजम हो जाता है। अन्न पचने के पश्चात् उससे आंतों को उत्तेजना देने वाला मल बनता है। जिससे आँतों को उत्तेजना मिलकर दस्त साफ होती है। इसकी पसीना लानेवाली स्वेदन क्रिया मज्जा-तंतुओं के द्वारा, रक्तवाहिनियों के द्वारा और खास स्वेदपिण्ड पर भी होती है। इससे शरीर में दाह भी पैदा होती है। अडूसे से जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से कफ छूटता है वैसा इससे नहीं छूटता। परन्तु मज्जा-तन्तु और हृदय को उत्तेजन मिलने की वजह से रोगी की खाँसने की शक्ति बढ़ जाती है। सहजना मज्जातन्तु और हृदय को उत्तेजना देनेवाला होता है। मूत्रपिण्ड के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया बिलकुल स्पष्ट होती है। इससे मूत्र का परिमाण और उसमें रहनेवाले क्षारों का परिमाण तत्काल बढ़ जाता है। इसकी छाल को कुचलकर त्वचा पर बाँधने से त्वचा लाल हो जाती है और बाँधे हुए हिस्से में रक्त-वाहिनियों का विकास होकर वहां के रक्त में सफेद कण जम जाते हैं। इस वजह से व्रण पर इसको बांधने से व्रण की सूजन उतर जाती है। इसके साथ ही इसका अन्तः प्रयोग करने से पसीना और पेशाब होकर व्रण का विष निकल जाता है।

अग्निमांद्य, अपचन, आफरा, उदरशूल और आनाह रोग में इसकी छाल दी जाती है। हृदयोदर, प्लीहोदर और यकृतोदर में इसकी फांट बनाकर उसमें दूसरे विरेचक और मूत्रल द्रव्य मिलाकर देते हैं। उदर रोगों में प्रारम्भ में सहजने की फांट बनाकर उसमें पुनर्नवा, चिरायता और सोंठ मिलाकर देना चाहिए। अगर इससे भी पेशाब की तादाद न बढ़े तो उपरोक्त योग में यवक्षार और अपामार्ग क्षार और मिला देना चाहिए। इतने पर भी यदि पेशाब की तादाद न बढ़े तो निसोत या इन्द्रायण के समान तीव्र विरेचन देना चाहिए। शास्त्रीय दृष्टि से उदररोगों में रोगी को नमक और पानी नहीं देना चाहिए। आंतों के ऊपर शीघ्र असर डालने के लिए इसका अर्क देना चाहिए। मूत्रपिण्ड की खराबी और सूजन से अगर सारे शरीर में सूजन आई हो तो उसमें सहजना कदापि नहीं देना चाहिए। क्योंकि इससे मूत्रपिण्ड में दाह पैदा होती है।

ज्वर के अन्दर सहजना का प्रयोग उत्तम होता है। इससे रोगी को सर्वाङ्गीण लाभ होता है। पसीना होता है, पेशाब होता है और मज्जातन्तु तथा हृदय को उत्तेजना मिलती है। कफ ज्वर में इसकी छाल का रस दिया जाता है।

व्रणशोथ में इसकी छाल को पीसकर उसका लेप किया जाता है और साथ ही इसको पेट में भी देते हैं। विद्रधि के अन्दर इसकी फाँट हींग और सेंधा नमक के साथ दी जाती है। गले की शिथिलता में इसकी फांट से कुल्ले किये जाते है, संधियों की सूजन और मांस पेशियों की वेदना में इसकी छाल का लेप किया जाता है। मगर इस लेप को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे बहुत जलन होती है और फुन्सियाँ हो जाती हैं। मनुष्य की मूर्च्छा तथा बेहोशी को दूर करने के लिए इसके बीजों का चूर्ण नाक में सुंघाया जाता है। इसके बीजों का चूर्ण कड़वा, तीक्ष्ण, उत्तेजक और दाह जनक होता है। इसके बीजों का तेल आमवात और वातरक्त के अन्दर मालिश किया जाता है।

मज्जातंतु सम्बन्धी रोग जैसे गठिया, लकवा अर्दित, संधिवात इत्यादि रोगों में इसकी छाल का स्वरस बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों की तरकारी से दस्त साफ होता है।

इसकी जड़ की छाल का क्वाथ हींग और नमक के साथ सूजन, मूत्रकृच्छ्र और पीबदार घावों को दूर करने के लिए दिया जाता है। इसके वृक्ष का गोन्द तिल के तेल के साथ मिलाकर कान के दर्द को दूर करने के लिए कान में डाला जाता है।

देशी चिकित्सक इसकी जड़ को लकवा अथवा अर्द्धांग वायु और पार्यायिक ज्वर में एक उत्तेजक वस्तु की तरह देते हैं। मृगी और हिस्टीरिया में भी वे इसका उपयोग करते हैं। वे लोग पक्षाघात और प्राचीन संधिवात में इसको एक मूल्यवान् चर्मदाहक पदार्थ की तरह काम में लेते हैं।

बम्बई में इसकी जड़ का काढ़ा चोट और मोच पर सेंक करने के काम में लिया जाता है। कोकण में इसके जंगली वृक्ष की छाल को पीसकर चित्रक की जड़, कबूतर की विष्ठा और मुर्गी की विष्ठा के साथ मिलाकर नारू के ऊपर बाँधते हैं। इसके बाग में लगे हुए झाड़ के पत्तों का चार तोला रस वमन लाने के लिए पिलाया जाता है और इसका गोन्द गर्भघातक माना जाता है।

इसकी ताजा जड़ उत्तेजक, शान्तिदायक, अग्निवर्द्धक और मूत्रल होती है। इसके फूलों में भी उत्तेजक तत्व रहते हैं।

रावर्ट्स के मतानुसार सीलोन में यह वनस्पति सर्प विष के लिए एक लोकप्रिय वस्तु समझी जाती है। सर्प विष की चिकित्सा में इसके पत्तों को कुचल कर दंशस्थान पर लेप करते हैं और इसकी ताजा जड़, छाल और पत्तों का दबाकर निकाला हुआ रस मूर्च्छा और बेहोशी को दूर करने के लिए रोगी के नाक में टपकाते हैं। इसके बीजों को पीसकर पानी में मिलाकर आँखों में आँजते हैं और इसकी ताजा जड़ और छाल का काढ़ा विष को दूर करने के लिए पेट में पिलाते हैं। बन्दर और दूसरे प्राणियों के काटने पर भी इसके ताजा पत्तों को पीस कर काटे हुए स्थान पर लेप करते हैं।

फ्रेंच गायना में इसकी जड़ की छाल स्वर भंग और गले की वेदना तथा स्कर्वी रोग के अन्दर काम में ली जाती है। यह चर्मदाहक समझी जाती है और इसकी डालियों की छाल रक्तातिसार नाशक मानी जाती है। इसके पत्तों को कुचल कर और उनको गर्म करके उनका लेप अर्बुद के ऊपर किया जाता है। इसके ताजे बीज कड़वे, कसैले, विरेचक और ज्वरनाशक माने जाते हैं।

डा० मुहीन शरीफ का कथन है कि मैंने इसकी जड़ का स्प्रिट में एक्स ट्रेक्ट (.Compound sprit) बनाकर उसका उपयोग किया। मैं यह कह सकता हूँ कि मूर्च्छा, भ्रम, मज्जातंतुओं की कमजोरी, आँतों का आक्षेप, हिस्टीरिया और कोष्ठवायु इत्यादि रोगों में यह बहुत ही उपयोगी है। दक्षिण भारत के देशी चिकित्सक सहजने के फूलों को एक कामोद्दीपक वस्तु की तरह बहुत उपयोग में लेते हैं। मगर मेरे अनुभव में इस कार्य के लिये ये फूल एकदम असफल हुए हैं हालां कि मैंने इनको बहुत बड़ी मात्रा में सेवन करवाया था। ये फूल कुछ हलके उत्तेजक जरूर होते हैं लकिन इनमें इतनी शक्ति नहीं है कि इस सम्बन्ध की बीमारियों पर ये अपना प्रभाव डाल सकें। इसकी ताजी जड़ की छाल लेप के रूप में त्वचा पर लगाने से एक उत्तम चर्मदाहक, फफोला पैदा करने वाली वस्तु है।

कर्नल चोपरा और देने सन् १९३० में इसकी जड़ की छाल में से मोरिङ्गिन (Moringine) और मोरिङ्गिनाइन (Moriginine) नामक दो उपक्षारों का पता लगाया। ये उपक्षार शरीर के अन्दर जाकर 'एफीड्रीन* के समान क्रिया करते हैं। ये हृदय को उत्तेजना देते हैं और दमे की बीमारी में भी लाभ पहुँचाते हैं।

इन दोनों उपक्षारों में से पहला मोरिङ्गिन अपेक्षाकृत कम प्रभाव वाला और गतिहीन होता है। दूसरा उपक्षार मोरिङ्गिनाइन विशेष क्रियाशील होता है। इसके प्रभाव इस प्रकार होते हैं—

(१) यह स्नेहिक ज्ञान तंतुओं (Sympathetic Nerve-ending) पर अनुकूल प्रभाव डालता है तथा हृदय और सारे शरीर की कोमल मांसपेशियों में रहनेवाले सूक्ष्म ज्ञान तंतुपर भी यह अपना उत्तम प्रभाव डालता है। यह रक्त के दबाव। (Blood Pressure) को बढ़ाता है, हृदय को उत्तेजना देता है और रक्तवाहिनियों का संकोचन करता है इसी प्रकार यह वायु नलियों में शिथिलता पैदा करता है

* एफीड्रीन का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'असगानिया' के प्रकरण में देखें।

यह छोटी वायु नलियों में भी शिथिलता पैदा करता है तथा आन्तों की क्रिया, शक्ति और गति को कम करता है, खरगोश को खिलाया जाने पर यह उसके गर्भाशय को संकुचित करता है।

(२) यह पेशाब की तादाद को थोड़ी बढ़ाता है।

(३) यह स्नेहिक गतिशील तन्तुओं (Sympathetic moter fibres) पर अवसादक असर डालता है।

(४) रासायनिक और चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से एफ्रिड्रीन के साथ इन उपक्षारों तुलना नहीं है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ और बीज सर्प विष की चिकित्सा में काम आते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्प विष में यह बनस्पति बिलकुल निरुपयोगी है।

उपयोगः—

जलोदर—सहजने की जड़ की छालका स्वरस अथवा क्वाथ बना कर पिलाने से जलोदर, तिल्ली, यकृत, भीतर की सूजन, पथरी इत्यादि रोगों में फायदा होता है।

कान की पीड़ा—इसकी छाल के ताजा रस को कान में डालने से कान की पीड़ा मिटती है और इसके गोंद का चूर्ण कान में भुरभुराने से कान से पीब का बहना बन्द हो जाता है।

मूत्रवृद्धि—इसके फूलों को पीसकर मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है।

शर्कराश्मरी—इसकी जड़ के रस को दूध में मिलाकर पिलाने से शर्कराश्मरी मिटती है और मूत्रवृद्धि होती है।

दमा—अदरक के रस में सहजने की जड़ का रस मिलाकर पीने से दमें में बहुत लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को पीसकर उसका पुलटिस बाधने से सूजन उतर जाती है, मगर इससे त्वचा में बहुत दाह और वेदना होती है, यहां तक कि फुन्सियां भी हो जाती हैं, इसलिये इसका प्रयोग समझ बूझकर करना चाहिए।

आँतों के कीड़े—सहजने की फली का शाक खाने से आँतों के कीड़े मर जाते हैं।

गठिया—इसके छोटे पौधे की जड़ का क्वाथ पिलाने से पुरानी गठिया, अर्द्धांग और जलोदर मिटता है। इसके बीजों के यन्त्र में दबाकर निकाले हुए तेल की मालिश करने से छोटे जोड़ों की सूजन और गठिया की तीव्र पीड़ा मिटती है। इसकी ताजी जड़, सरसों और अदरक को पीसकर लेप करने से गठिया मिटती है।

ज्वर—इसकी सवा मासे ताजी जड़ को औटाकर पिलाने से ठहर ठहर कर आनेवाला ज्वर छूट जाता है।

आवेश रोग—इसकी सवा मासे ताजी जड़ को औटाकर पिलाने से अपस्मार और स्त्रियों का आवेश रोग मिटता है।

मुँह के छाले—इसकी जड़ के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह और गले के छाले मिटते हैं।

दाँतों का सड़ना—इसका गोंद मुँह में रखने से दाँतों का सड़ना बन्द हो जाता है।

बाईंठे—इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से बाईंठे मिटते हैं।

नारू—जंगली सहजने की छाल, चित्रक की जड़ और कबूतर तथा मुर्गे की विष्ठा को मिलाकर नारू पर लेप करने से नारू का कीड़ा मर जाता है। सहजने के बीज, जड़ और सेंधे नमक को कांजी के साथ पीसकर लेप करने से नारू मिटता है।

गर्भाशय का छोड़—सहजने की सवा तोले छाल अथवा जड़ का क्वाथ पिलाने से गर्भाशय का छोड़ बाहर निकल जाता है।

यकृत रोग—बच्चों का लीवर या यकृत बढ़ जाने पर सहजने की जड़ का लेप करने से लाभ होता है।

स्वर भङ्ग—इसकी ताजा जड़ के क्वाथ से कुल्ले करने से गले का पड़ना या स्वरभंग मिट जाता है।

गठान—गठान की सूजन बिखेरने के लिए इसके गोंद का लेप किया जाता है।

पागल कुत्ते का विष—सहजने के पत्ते, लहसन, हल्दी, नमक और थोड़ी कालीमिरच पीसकर पिलाने से बावले कुत्ते के विष में लाभ होता है और इन सब चीजों को पीसकर काटे हुए स्थान पर लेप करने से उसका घाव भर जाता है।

उदरशूल—इसकी छाल, हींग और सोंठ इन तीनों चीजों को जल के साथ पीसकर गोलियाँ बना लेना चाहिए। इन गोलियों को दिन में दो तीन बार देने से पेट की बादी की पीड़ा, शूल और आफरा मिटता है।

जलोदर—सहजने की जड़ का हिम या फांट बना कर पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर जलोदर मिटता है।

मस्तकशूल—सहजने के पत्तों के रस में काली मिरच पीस कर सिर पर लेप करने से मस्तक शूल मिटता है।

पेट के कृमि—सहजने के बीज और पोहकर मूल को मिला कर देने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

रतौंधी—सहजने की कोमल डालियों के रस में शहद मिला कर नेत्रों में टपकाने से रतौंधी मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—सहजने के एक तोले गोंद को नित्य दही के साथ ७ दिन तक खाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

सन्तान निग्रह—सहजने के बीजों को बारीक पीस कर गाय के घी और शहद में मिला कर, बत्ती बना कर मासिक धर्म से शुद्ध होने के पश्चात् योनि में रखने से गर्भधारण की शक्ति नष्ट हो जाती है।

घुटनों की पीड़ा—सहजने के बीजों को पानी में पीस कर कुनकुना करके लेप करने से घुटनों की पुरानी पीड़ा मिटती है।

कान की सूजन—सहजने की छाल और राई को पीस कर लेप करने से कान के नीचे की सूजन मिटती है।

बवासीर—सहजने की जड़ की छाल और आक के पत्तों को पीस कर लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

हिचकी—सहजने के पत्ते और कासमर्द के पत्तों का यूष बना कर पिलाने से हिचकी मिटती है।

खुजली—सहजने की जड़ को पीस कर उसकी लुगदी को सरसों के तेल में सिद्ध करके उस तेल की मालिश करने से खुजली मिटती है।

दमा—सहजने के पत्तों का यूष बनाकर पिलाने से दमा मिटता है।

श्लीपद—सहजने की जड़ को पीस कर गर्म करके लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

विद्रधि—सहजने के क्वाथ में हींग और सेंधा निमक मिला कर प्रातःकाल नित्य पीने से विद्रधि मिटती है। साथ में इसकी जड़ की छाल में थोड़ा सा वच्छनाग मिला कर उसका लेप भी करना चाहिये।

खाज खुजली—महर्षि चरक का कथन है कि सहजने को तेल में घोटकर मालिश करने से खाज, खुजली, कुष्ठ और सूजन मिटती है।

कर्णशूल—इसके गोन्द को तिलों के तेल में मिलाकर गर्म करके कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है। इसकी जड़ का रस, सेंधा नमक, शहद और तेल को गर्म करके कान में टपकाने से भी कर्णशूल मिटता है।

नेत्र रोग—इसके पत्तों के रस से नेत्रों को तपाने से नेत्र रोग मिटते हैं।

पथरी—सहजने की जड़ का कुनकुना क्वाथ पिलाने से कुछ दिनों में पथरी गल जाती है।

अपचन—सहजना, देवदारु और काँजी को साथ पीसकर गुनगुना लेप करने से दुःसाध्य अपचन मिटती है।

अन्तर्विद्रधि—सहजने की जड़ के रस में शहद मिलाकर पिलाने से अन्तर्विद्रधि मिट जाती है।

दाढ़ का दुखना—सहजने का गोन्द मुँह में रखने से दाढ़ दुखना फौरन बन्द होता है।

मात्रा—इसकी ताजा जड़ की छाल की मात्रा चार माशे से आठ माशे तक होती है। की मात्रा दो से चार ड्राम तक और इसकी फ्रांट की मात्रा एक औंस से दो औंस तक होती है।

बनावटें—

सहजने का अर्क—सहजने की जड़ की ताजी छाल ५० तोला, संतरे की सूखी छाल ५० तो जायफल का चूर्ण १॥ तोला, शराब (९० प्रतिशत) १ गैलन और पानी २ पिण्ट इन सब चीजों का भफके से हलकी आँच पर अर्क निकाल लेना चाहिए। इस अर्क की मात्रा दो से चार ड्राम तक यह अर्क उत्तेजक होता है।

सहजने की फांट—सहजने की ताजा कुटी हुई छाल १ औंस, कुटी हुई राई १ औंस, खौ हुआ पानी १ पाइंट, इन सबको दो घण्टे तक बन्द बरतन में रखकर छान लेना चाहिए और इसमें रोक्त अर्क भी १ औंस मिला देना चाहिए। इस फाण्ट की मात्रा १ औंस से २ औंस तक होती है। फाण्ट भी एक मूल्यवान् उत्तेजक वस्तु है।

सहजने का पाक—सहजने का गोंद पाव भर लेकर उसे घी में तल लेना चाहिये। फिर गेहूँ का आधा सेर लेकर आधा सेर घी में भून लेना चाहिए। फिर गुड़ आधा सेर और सूंठ चार तोला पीस सब को मिला कर लड्डू बाँध लेना चाहिए। इन लड्डुओं का सेवन करने से गरम वायु, सर्दवायु, फूल वायु, उरू स्तम्भ, गृध्रसी इत्यादि रोग मिटते हैं।